स्वजनों की दृष्टि में

बालकृष्ण

— सुदर्शन सिंह 'चक्र'

स्वजनोंकी दृष्टिमें—

बालकृष्ण

लेखक :

सुदर्शनसिंह 'चक्र'

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान,
मथुरा–२८१००१

यह पुस्तक सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर प्रदत्त कागजपर मुद्रित-प्रकाशित है।

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान
मथुरा–२८१ ००१

संस्करण-प्रथम
२५०० प्रतियाँ

प्रकाशन-तिथि :
गंगा दशहरा, सं० २०४० वि०
२० जून, १९८३ ई०

मूल्य : पन्द्रह रुपये

मुद्रक :
मयूर प्रेस,
बद्री नगर, दरेसी रोड, मथुरा-२८१००१
फोन : ४४६४

स्वजनोंकी दृष्टिमें—बालकृष्ण

अनुक्रमणिका

कनूँ मेरे,

क्षीरोदधि नहीं,

होता कोई अमृतोदधि,

उसके मन्थनसे निकलता नवनीत,

उससे भी मधुर,

बालचरित तेरे ।

आस्वादन करते उनका

भक्ति-प्रवण, भावुकजन;

उत्कण्ठित, लालायित—

आकुल मन,

अन्तरमें आ,

क्रीड़ा कर साथ-साथ,

यशोदा-नन्दन !

रात-दिन, शाम-सवेरे ।

कनूँ मेरे !

अपनी बात—

वन्दनीय-आदरणीय समस्त विद्वज्जनोंका अभिवादन करके विनम्र निवेदन करना है कि कन्हाईका चिन्तन मेरा विनोद नहीं, व्यसन बन गया है और आप जानते हैं कि व्यसन आवश्यकता अथवा उपयोगिता नहीं देखता। वह बलात् अपनेमें लगा लिया करता है।

एक मित्रने पूछा—'आपने 'नन्दनन्दन'में क्रमसे श्रीकृष्णका बाल-चरित वर्णन नहीं किया है? उसके अतिरिक्त 'राम-श्यामकी झाँकी,' 'सखाओंका कन्हैया' तथा 'श्रीकृष्ण-संदेश' में आनेवाली झाँकियाँ भी बाल-चरित ही हैं। अब 'बालकृष्ण' में क्या देना चाहते हैं?'

मेरे समीप कोई उत्तर नहीं है। कभी-किसी पुस्तकको प्रारम्भ करते समय पता नहीं रहा है कि उसमें क्या लिखा जायगा। कन्हाई क्या-क्या लिखवा लेगा, लिखे जानेके पश्चात् ही मुझे भी विदित होता है। अवश्य इतनी बात है कि मेरे साथ, पता नहीं क्यों, इस व्रजराजकुमारका सदा-से पक्षपात रहा है और इसका स्वभाव ही अपनोंको सुयश-सम्मान देते रहना है।

'मानदा स्वसुहृदां वनमाली।'

—भागवत १०।३५।२४

महाभारतका शान्तिपर्व क्या भीष्मकी वाणी है? शरशैय्यापर पड़े, अङ्ग-प्रत्यङ्ग शरविद्ध, मृत्युक्षणकी प्रतीक्षा करते भीष्म वह दिव्य विस्तृत उपदेश करनेमें समर्थ थे? उनको यश-गौरव देनेके लिए श्रीकृष्णने ही उनकी वाणीसे वह सब नहीं कहलवाया है?

ऐसे ही एक अत्यन्त अल्पपठित, असंस्कारी, सामान्य व्यक्तिकी लेखनीसे यह नन्दतनय पता नहीं, क्या-क्या लिखवाता रहा है और अब भी पता नहीं, अपने कौन-कौन-से बालचरित प्रकट करने जा रहा है।

यह कन्हाई अपना—एकमात्र यही तो अपना है । यह साथ देगा ही । इसके पक्षपातने मुझे आश्वस्त ही नहीं किया है, मैं इसे अपना स्वत्व मानता हूँ कि इसे साथ देना ही चाहिये और यह इतना भोला ममतामय कि ऐसी किसी अपनेकी हठ कभी अस्वीकार भी की जा सकती है, यह सोचना इसे आता ही नहीं ।

'श्रीकृष्ण-चरित' खण्ड १ 'भगवान् वासुदेव' से जब 'श्रीकृष्ण-संदेश'में निकलना प्रारम्भ ही हुआ था, अनेक लोगोंने आग्रह प्रारम्भ कर दिया—'आप श्रीराधापर भी कुछ लिखिये ।' यह आग्रह चलता रहा 'श्रीद्वारिकाधीश' तथा 'पार्थसारथि' के निकलते समय भी । 'नन्दनन्दन'में ऐसे आग्रहोंको तो मैं संतुष्ट नहीं कर सका, किंतु जितना मेरी क्षमतामें था, जितना कन्हाईने दिया अथवा इससे मैं ले सका, उतना उसमें आ गया ।

'जथा दरिद्र बिबुध तरु पाई ।
बहु सम्पतिमागत सकुचाई ।।'

—मानस १।१४८।५

बात यह नहीं है कि गङ्गामें कितना जल है या वे कितना जल दे सकती हैं, बात यह है कि अपना पात्र कितना बड़ा है । हम कितना जल भरकर ला सकते हैं । कन्हाईके देनेकी तो कोई सीमा नहीं है, किंतु ग्रहण करनेका मेरा पात्र (मेरे मस्तिष्ककी क्षमता) बहुत क्षुद्र है ।

भक्ति जब भावके स्तरपर पहुँचती है, आचार्योंने साध्या भक्तिमें दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य—ये चार ही भाव माने हैं । इनमें-से दास्य सार्वभौम है । जीवमात्र उस परमपुरुषका दास है । सख्य, वात्सल्य, माधुर्यमें भी दास्य व्यापक रहता है, किंतु बात अपनी ही ओरकी तो है नहीं । बात दूसरी ओरकी भी है । भक्ति न योग है और न ज्ञान कि आप अकेले मनमानी करते चलेंगे । भक्तिमें तो मुख्य वह प्रेमास्पद है । चलती अपनी नहीं, उसकी है ।

इस कन्हाईकी तो बात क्या करें, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरघुनाथजीतक भी किसीको दास स्वीकार ही नहीं करते । वे तो सब वानरोंको गुरु वशिष्ठसे ही 'सखा' बतलाते हैं—

'ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे।' (७।७।७)

कन्हाईके साथ दास्यका निर्वाह अशक्यप्राय है। यह तो नन्द-भवनके सेवकोंमें भी किसीको 'ताऊ' और किसीको 'च चा कहता है और जब यह किसीके कंधेपर दौड़ता आकर बैठ जायगा और अपने नन्हे कोमल करसे उसका मुख अपनी ओर घुमाता या उसकी दाढ़ीमें अँगुलियाँ नचाता उसे 'ताऊ' कहेगा, क्या कोई ऐसा है, जिसके हृदयमें उस समय वात्सल्य नहीं उमड़ेगा ?

यह तो किसी गोबर-सने कर एवं वस्त्र दासीके अङ्कमें जा चढ़ता है और उसे 'माँ' कहता है, तब क्या उसके वक्षसे उमड़ता उज्ज्वल वात्सल्य निरुद्ध किया जा सकता है ?

दास्य भले श्रीकृष्ण अपने साथ सम्भव न रहने दे, किंतु यह रसराज है, माधुर्यमूर्ति है, इसे मैं या कोई कैसे अस्वीकार कर देगा ? यह भी कैसे कहा जा सकता है कि माधुर्य–आत्मनिवेदन अथवा महाभावैकमूर्ति श्रीकीर्ति-कुमारीका कैंकर्य सर्वश्रेष्ठ भाव नहीं है। माधुर्य सर्वश्रेष्ठ—सर्वोच्च भाव; किंतु यहीं आकर मैं अवश, निर्बल हो जाता हूँ। मेरे पदोंमें उस सर्वोच्च शिखरपर आरोहणकी सामर्थ्य नहीं है।

माधुर्य सर्वोच्च भाव है, किंतु उसके अधिकारी सर्वोच्च ही होते हैं या निकृष्ट भी ? सर्वथा काम-शून्य निर्मल अन्तःकरण ही इस राधाकृष्णकी अन्तरंग-लीलाके चिन्तनका अधिकारी है, क्या इसमें दो मत सम्भव हैं ?

मुझे निस्संकोच स्वीकार है कि मैं इतना उत्तम अधिकारी नहीं हूँ। इसके अतिरिक्त भी मेरी कठिनाई है। श्रीभानुनन्दिनी मुझे बहुत भोली बालिका लगती हैं। उनकी सब सखी-सहेलियाँ उनकी समानशीला और यह कन्हाई चपल है, नटखट है, उन्हें खिझाता, चिढ़ाता है, यह सब ठीक; किंतु यह भी कम सरल, कम भोला कहाँ है।

होती होगी कन्हाईकी कोई मधुर निकुञ्ज-क्रीड़ा भी; किंतु मेरा मानस उसकी छाया भी नहीं छूता। यह नन्दनन्दन मुझसे किंचित् छोटा,लेकिन क्या छोटे-बड़ेपनको दिनों-वर्षोंकी अवधि प्रभावित करती है ? युग्मज भाइयोंमें

क्या बड़ेका वात्सल्य अनुजके प्रति कम होता है ? श्रीजानकी जब कहती हैं—

'जलको गये लक्खन हैं लरिका।'

—कवितावली

तब क्या श्रीजनकनन्दिनीको स्मरण रहा होगा कि लक्ष्मण आयुमें श्रीरामसे केवल एक दिन छोटे हैं और स्वयं श्रीवैदेही तो लक्ष्मणसे कई वर्ष छोटी हैं ?

कन्हाई छोटा है, कितने छोटेका क्या महत्व है। अतः उसकी कोई माधुर्यलीला भी है, यह मेरा मन न सोचता है, न सोचना चाहता है।

'यहीं एक बात—एक प्रतिष्ठित पत्रिकामें उसके संस्थापक अत्यन्त प्रसिद्ध महात्मा, उच्चतम शास्त्रज्ञ, विद्वान्ने किसीके पत्रके उत्तरमें लिखा है—'गोलोकमें कोई पति-पत्नी नहीं होते। वहाँ किन्हींका परस्पर सम्बन्ध नहीं होता। सबका प्रेम केवल श्रीकृष्णसे होता है।'

कैवल्यके परम समर्थकको सर्वत्र कैवल्य ही दीखता है, यही कहा जा सकता है। उनके उत्तरका अन्तिम अंश ही सत्य है कि गोलोकमें सबका प्रेम केवल श्रीकृष्णसे ही होता है। लेकिन परस्परका सम्बन्ध वहाँ है और वह श्रीकृष्ण प्रेमका उद्‌दीपक है, व्यवधानकर्ता नहीं है।

गोलोकमें बाबा नहीं हों, मैया नहीं हो, दाऊभैया नहीं हो, रेवती भाभी नहीं हों, बहुतसे सखा नहीं हों और ढेरों भाभियाँ (सखाओंकी पत्नियाँ) नहीं हों, गोलोक कन्हाईका होगा या किसी अद्वय निर्गुण ब्रह्मका ?

गोलोकमें—व्रजमें भी पति-पत्नी-सम्बन्ध था, है केवल श्रीकृष्ण-प्रेमके अभिवर्धनार्थ। गोप अपनी पत्नीसे चाहता है, वह नन्द-भवन जाय और मैया यशोदाके समीप कन्हाई क्या-क्या करता है, क्या-क्या कहता है, कैसे रहता है, यह रोज-रोज आकर बतलाया करे; क्योंकि स्वयं गोप यह नहीं कर सकता और गोपी वनमें नहीं जा सकती, अतः वह चाहती है कि उसका पति उसे श्यामकी क्षण-क्षणकी वनलीला सुनाया करे। गोलोकमें भी रात्रिका अनुभव न हो तो निकुञ्ज लीला बनेगी ? उस रात्रिमें परस्पर कृष्णकथा श्रवण-कीर्तन चलता है युग्मोंमें, इसे अस्वीकार करनेका तो कोई अर्थ ही नहीं है।

गोलोकमें वे सब भाव नित्य न हो जायँ, जो संसारमें श्रीकृष्णको अपना बनानेके माध्यम बने, गोलोक पूर्ण होगा ? श्रीकृष्णको किसी सम्बन्धसे अपना बनाया जाय, वे उसी सम्बन्धसे अपने बनते हैं या नहीं ? और वे अपने बनते हैं तो वह भाव नित्य हो जाता है या नहीं ?

यहाँ इस चर्चाकी आवश्यकता इसलिये कि 'नन्दनन्दन' में सम्बन्धोंके माध्यमसे श्रीकृष्ण-चरित-चिन्तनकी एक शैलीने अपनेको प्रकट किया और अब 'बालकृष्ण'में वही शैली परिपाक प्राप्त करने जा रही है। इसलिये इस संदेहमें नहीं पड़ना चाहिये कि श्रीकृष्णसे स्थापित ये सम्बन्ध भी अनित्य हैं, केवल अवतार-लीलाके कालमें ही थे। ये और ऐसे जो भी सम्बन्ध श्रीव्रजराज-नन्दनसे कभी स्थापित होते हैं, वस्तुतः स्थापित नहीं होते। वे होते ही नित्य हैं ? उनका अन्तःकरण विशेषमें उसके निर्मल होनेपर केवल उदय होता है। एक बार उदय होनेपर वह नित्यलोक तो प्राप्त करा ही देता है, वहाँ नित्य बना रहता है।

अनेक सम्बन्धों–नित्य सम्बन्धोंके माध्यमसे बालकृष्णका यह चिन्तन; क्योंकि सम्बन्धोंके माध्यमसे यह अधिक सुगम, सरस है—आपके चित्तमें भी आवे और उसे निर्मल करे। उसके नित्य सम्बन्धको उदित; जाग्रत करे।

कन्हाईका चिन्तन अपना व्यसन बना रहे, इस आन्तरिक अभिलाषासे मैं इसमें लग रहा हूँ।

श्रीकृष्ण–जन्मस्थान, मथुरा
बुधवार, मकरसंक्रान्ति सं. २०३७
(१४-१-८१)

—*सुदर्शनसिंह 'चक्र'*

मातृवर्ग

माँ रोहिणी–

'वनमें जाकर तुम चुपचाप बैठ जाते हो ?' मैंने अपने बलको उपालम्भ दिया—'छोटे भाईको सँभालते नहीं हो ?'

यह बल भी विचित्र है। इसका कुछ पता ही नहीं लगता। मैं माँ हूँ; किंतु मैं भी इसको समझ नहीं पाती हूँ। यह कब, क्या करेगा, कुछ नहीं कहा जा सकता। कोई गोपी श्यामको तनिक धमकावे तो यह उसका ऊखल पटककर फोड़ दे सकता है और कोई असुर या कालिय-जैसा नाग नील-मणिको आक्रान्त कर ले, तब भी मुस्कुराता दूर खड़ा देखता रह सकता है। कभी पूछ थको कुछ तो भी बोलेगा नहीं और कभी बिना निमित्त पूरा प्रवचन देने लगेगा।

'यही तो सबको सँभालता है।' अब आज इसने मुझे कह दिया—'इसे मैं क्या सँभालूँगा।'

'इतने असुर आये बार-बार।' मैंने खिन्न होकर कहा—'श्याम कितना सुकुमार है। तुम इसे बचाते नहीं ?'

'माँ ! असुर बहुत बुरे होते हैं।' यह बल अब मुझे ही हाथ पकड़कर समझाने लगा है—'असुरोंको भी बचाना क्या कोई अच्छी बात है ?'

'मैं तुम्हें असुरोंको बचानेको कहाँ कहती हूँ।' मैंने इसे समझाना चाहा—'मैं तो कहती हूँ कि अपने छोटे भाईको बचाना चाहिये तुम्हें।'

'तब असुर नहीं बच जायँगे ?' बल तो हँसता है—'तू कुछ नहीं समझती। असुर आते हैं और कन्हाई उन्हें फट्से मार देता है। मैं बचाने जाऊँ तो कौन बचेगा ?'

'तुम्हीं क्यों नहीं मार दिया करते ?' मैंने इससे गम्भीर बनकर कहा।

'कन्हाईकी क्रीड़ामें बाधा तो पड़ेगी।' बल गम्भीर होकर बोला—'लेकिन तू कहती है तो मैं ही मार दूँगा।'

विचित्र हैं ये बालक ! कंसके सुरासुरजयी असुरोंको मैं क्या जानती नहीं हूँ; किंतु इन दोनों भाइयोंको तो जैसे एक खेल है, छोटा खेलना चाहता है तो खेल ले और नहीं तो बड़ा निबटा देगा।

मेरा यह बल—यह उत्पन्न हुआ तो पूरे वर्षभर न बोला, न हँसा। मैंने समझ लिया कि कारागारमें बन्दी पतिकी सेवासे विमुखा, दूर आ बसी मुझ भाग्यहीनाका बालक गूँगा है। लेकिन नीलमणिको प्रसूतिगृहमें देखकर यह जो हँसने लगा था, उस दिन तो इसकी हँसी रुकनेका नाम ही नहीं लेती थी।

यह सहज गम्भीर है, किंतु मुझे इसको भी उलाहना देना पड़ता था—'छोटे भाईके साथ तुम भी अब चपल और नटखट बनने लगे हो।'

मेरे उपालम्भका प्रभाव नहीं पड़ना था सो नहीं पड़ा। नीलसुन्दर अनुजके यह सदा साथ लगा रहता है और घुटनों सरकने लगा वह इन्दीवर-सुन्दर तो यह भी जैसे खड़े होना, चलना भूल जाया करता था। उसे जो प्रिय लगे, इसे वही करना है।

दोनों कितने चपल—मुझे और व्रजेश्वरीको इन्हें सँभालनेसे ही अवकाश नहीं मिलता था। ये कब, क्या धूम करेंगे, कुछ ठिकाना नहीं था। ये दोनों जैसे-जैसे बढ़ते गये, इनकी चपलता बढ़ती गयी और हम-दोनोंकी चिन्ता बढ़ती गयी।

मैं गोप-बालकोंकी बात नहीं कहती। इन दोनोंके सहस्रों मित्र हैं और सब मुझे तो अपने ही शिशु लगते हैं। हमारा यह भवन-प्राङ्गण नीलसुन्दरके भूमिपर बैठनेके समयसे ही भरा रहने लगा है। शिशुओंकी उपस्थिति तो मुझे और व्रजेश्वरीको भी निश्चिन्त ही करती थी। बात कहती हूँ इन दोनोंके संगी-साथी पशु-पक्षियोंकी। ये दोनों प्राङ्गणमें आते थे तो बन्दर, बिल्लियाँ, मयूर ही नहीं, मूषक, मण्डूक, गिलहरियाँ, काक, कपोत, हंस–सब इन दोनोंके आस-पास एकत्र हो जाते थे। नीलमणि

आकाशमें उड़ते पक्षीको भी देखकर अपनी नन्ही सुकुमार अँगुलियाँ हिलाकर बुलाता था तो पक्षी इसके पास उतर आते थे। पशु-पक्षी कब, क्या करेंगे, किसे पता और अत्यन्त सुकुमार बालकोंके किसी अङ्गमें सहज चेष्टामें भी आघात लग सकता है।

अब ये दोनों अपनी मित्र-मण्डली लेकर वनमें गायें चराने जाते हैं। सब-के-सब बालक हैं। कोई वयस्क गोप साथ जाय, यह नीलमणि सुनना ही नहीं चाहता। वनमें सब सौम्य पशु ही नहीं हैं। वृन्दावनके पशु-पक्षी किसी बालकको आहत नहीं करेंगे, यह विश्वास मुझे है; किंतु अन्ततः तो वे पशु-पक्षी ही हैं। नीलसुन्दर चपल है। किसी भी पशुके मुखमें हाथ डाल लेना उसके लिए खेल है। किसी पक्षीकी चोंच खोलने लगेगा या उसके ऊपर ही चढ़ जायगा। पशु या पक्षी अपने ही बचावके लिये सिर हिला सकते हैं, मुख बंद कर सकते या हटा सकते हैं अथवा उड़ सकते हैं। कृष्ण तो कपोतके पंखका सूक्ष्म आघात भी सहन करनेयोग्य नहीं है। प्रातः इन दोनोंके वनमें जानेसे लेकर सायं लौटनेतक हम-सबके प्राण इनमें ही अटके रहते हैं। इनकी चिन्ताको छोड़कर कुछ सूझती ही नहीं।

अब यहाँ भी असुर आने लगे हैं। इन उत्पातोंके कारण ही तो व्रजराजने पिता-पितामहका स्थान गोकुल छोड़ा और अब वृन्दावनमें भी कंस इन सुकुमार शिशुओंपर अपने दाँत गड़ाना चाहता है। यहाँ भी वह अपने असुर भेजने लगा है।

कंसके अनुचरोंसे गोप कम ही परिचित हैं। गोपियोंने उन सबके नाम भी काहेको सुने होंगे; किंतु मैंने उन सबके सम्बन्धमें बहुत-कुछ सुना है। मेरे प्राण इन दोनों बालकोंके लिए इससे बहुत अधिक व्याकुल रहते हैं।

अच्छा हुआ कि आज सवेरे ही मैंने बलको कह दिया था कि असुरोंको वहीं मार दिया करे। आज सायं आते ही नीलमणिने दौड़कर समीप आकर दोनों हाथ फैलाकर बतलाया—'आज वनमें दादाने खूब बड़ा राक्षस मारा है। इतना बड़ा—इससे भी बहुत बड़ा।'

नन्हा-सा नीलमणि। इसके नन्हे बाहु। यह समझता है कि इसके दोनों हाथ फैला देनेसे प्रलम्बका आकार बता सकेगा। यह तो मुख फाड़कर,

नेत्र विचित्र करके बताने लगा कि राक्षस कितना भयंकर था। मुझे हँसी आ गयी।

प्रलम्ब—ताड़से भी अधिक लम्बा, इस युगका कुम्भकर्ण। नारायणने ही रक्षा की; किंतु नीलमणि तो ऐसे सुना रहा था, जैसे कोई विचित्र आनन्ददायक क्रीड़ा सुना रहा हो—'वह राक्षस चोरकी भाँति दादाको चुराकर भागा और आकाशमें उड़ने लगा।'

"बल!' मैंने पूछना चाहा तो बल बोला—'माँ! वह बड़ा अच्छा लगा मुझे। उत्तम अश्व भी आकाशमें तो उड़ नहीं सकता। मुझे तो आनन्द आ रहा था; किंतु इस कन्हाईने गुड़-गोबर कर दिया। यह डरकर पुकारने लगा—'दादा! मार इसे! जल्दी मार!' तब मैंने उसके सिरपर एक घूँसा बायें हाथसे धर दिया।"

'वह मेरे दादाको ही लिये जा रहा था। मैं डरूँगा नहीं?' कन्हाई बोल पड़ा।

हे नारायण! इन बालकोंकी आप ही रक्षा करो! आप ही नील-मणिकी रक्षा करते रहे हो, आगे भी करना। बल तो बड़े उत्साहसे कह रहा था—'तुमने ही कहा था कि असुरोंको मैं मार दिया करूँ। आज एकको तो मैंने मार दिया।'

मैया यशोदा–

वन्दनीया जीजी रोहिणीका विपुल प्रभाव ही है कि इनके श्रीचरण गोकुलमें पड़े तो साक्षात् महाशक्ति भगवती पूर्णमासी अपने सदा प्रफुल्ल मोदमय मधुमङ्गलके साथ हम गोपियोंके ग्राममें निवास करने आ गयीं। उनका आशीर्वाद अफल तो होना नहीं था।

न मेरे ऐसे भाग्य और न इतना पुण्य। मैं तो वन्ध्या ही रहनेको उत्पन्न हुई थी; किंतु भगवतीके आशीर्वादसे, बड़ी-बूढ़ियोंकी मङ्गल-कामनासे जेठानियों-देवरानियोंके प्रबल पुण्य-प्रभावसे यह नीलमणि मेरी गोदमें आ गया। यह तो है ही और सबोंके पुण्योंका फल। यह व्रजकी सब गोपियोंका प्रसाद होकर ही मुझे मिला है। मैं कहाँ इसकी मैया होनेयोग्य थी।

यह सबका है, यह तो दिनके उजालेकी भाँति स्पष्ट है। सब बड़ी-छोटी गोपियाँ, गोप इसपर प्राण न्यौछावर किये रहते हैं। सबका इसपर इतना ममत्व प्रारम्भसे कि अपने कोख जायेपर भी कभी नहीं हुआ होगा।

यह नीलमणि भी बोलने लगा, तब-से सब गोपियोंको 'माँ' ही कहता है। इसे तो ताई, चाची कहना भी सिखलाना पड़ा और अब भी सीख नहीं सका। अब भी चाची या ताईको देखते ही दौड़ता है और उन्हें 'माँ' कहकर ही पुकारता है। उन्हें ही इसे कहना पड़ता है—"मैं तेरी 'ताई' हूँ।"

'हाँ-ताई तो हो माँ !' यह बहुत छोटा था, तब उनसे भी झगड़ पड़ता था। समझ ही कितनी थी इसकी और अब कौन-सा समझदार हो गया है। इसे लगता है कि जैसे जीजीका नाम रोहिणी है, वैसे ही ताई या चाची नाम होते हैं और जीजीकी ही भाँति वे सब इसकी माँ हैं। अब तो मुझे भी इसके बार-बार कहने-पुकारनेसे लगने लगा है कि वे सब इसकी माँ ही हैं।

'मैया' नीलमणि और बल भी केवल मुझे ही कहते हैं। मुझे नहीं लगता कि 'माँ' से 'मैया' कोई बड़ा पद या स्वत्व होगा। मैं तो इन दोनोंकी

धाय ही समझती हूँ अपनेको। ये मुझे धाय-माँ न कहकर 'मैया' कह देते हैं, यही तो। अब तो मैं इस नीलमणिके कारण पूरे ब्रजके बालकोंकी 'मैया' हो गयी हूँ। मुझे चाहे जितना संकोच हो, अब 'मैया' तो मुझे अनेक देवर लगनेवाले गोप कह देते हैं और कह तो देते हैं इस भवनमें आनेवाले अनेक ऋषि, मुनि, विप्रश्रेष्ठतक। लेकिन ऋषि-मुनियों और ब्राह्मणोंका तो स्वभाव ही होता है प्रत्येक स्त्रीको 'माँ', 'माता' या 'मैया' कहनेका।

मैया तो नीलमणिने व्रजके सब बालकोंकी बना दिया है। जब कोई नन्हा शिशु आँगनमें खेल छोड़कर मेरे अङ्कमें चढ़ आता और आँचलमें सिर छिपाता, मैं कहाँ स्मरण कर पाती थी कि वह मेरा नीलमणि ही नहीं है। मुझे तो नहीं लगता कि नीलमणिके इन सखाओंमें कोई ऐसा होगा, जिसने मेरे आँचलका दूध न पिया हो।

इन बालकोंको तो अब भी मेरा दूध चाहे जब स्मरण आ जाता है। यह नीलमणि क्या कभी बड़ा नहीं होगा? जीजी और गोपियाँ हँसती हैं, जब नीलमणि या इसका कोई सखा मुझे हाथ पकड़कर बलात् बैठा लेते हैं और आँचलमें सिर ढककर दूध पीने लगते हैं।

नीलमणि बड़ा हो गया? यह अब बछड़ोंके स्थानपर गायें चराने लगा है; किंतु मुझे तो यह बड़ा नहीं लगता। केवल बल और उसके थोड़े-से मित्र तनिक बड़े हो गये हैं। नहीं तो ये सब बालक तो दुधमुँहे ही हैं। इन्हें कैसे अपना दूध पीता छुड़ाऊँ?

सब कहती हैं कि नीलमणि चपल है। क्या चपलता करता होगा यह? दूध पीता शिशु भला क्या चपलता करेगा? अरे, बालक भी क्या कोई योगी बाबा है कि आँख मूँदें बैठा रहेगा? बालक तो हँसेगा, दौड़ेगा, कूदेगा, तनिक खिझावे-चिढ़ावेगा भी। यह तो बालककी शोभा है।

वैसे नीलमणि कुछ अधिक चञ्चल तो है। यह बहुत नन्हा था, तब भी पलनेमें अपने हाथ-पैर फेंकता ही रहता था। कोई झीना वस्त्र इसपर डालती थी तो उसे पैर मार-मारकर हटा फेंकता था। अपने भी पालनेमें सरक-सरक जाता था। अपने नेत्र और भालके कज्जलको फैला लेता था करोंसे और इसके समीप आवे, उसे गोदमें ले, उसीके कपोल, वस्त्रपर

अपने नन्हे करोंमें लगे उस अञ्जनका मुद्राङ्कन कर देता था। मेरे, जीजीके, गोपियोंके ही नहीं, अपने बड़े भाईके कपोल भी यह नित्य ही चिह्नाङ्कित करता रहता था।

तनिक बैठने लगा भूमिपर और मेरी तथा जीजीकी तो समस्या ही प्रारम्भ हो गयी। पता नहीं, बालकोंको परस्पर सिर सटाकर खेलने, झूमने, सरकनेका क्यों व्यसन होता है। यह नीलमणि तो चाहे जब, चाहे जिस बालककी अलकोंसे अपनी अलकें उलझा लेता था और फिर उससे सिर सटाये किलकता था, तालियाँ बजानेका प्रयत्न करता था। जैसे बड़ा कौशल कर लिया है। इसकी घुँघराली कोमल अलकें उलझती भी शीघ्र हैं। झटपट उन्हें न सुलझाया जाय तो बालकोंको पीड़ा नहीं होगी?

जीजीने कभी बलके बायीं कर्णपल्लीमें कुण्डल डाले ही नहीं। मैं एक बार डालने बैठी तो बोलीं—'तुम जानती तो हो कि नीलमणि इसके कंधे पर सिर रखे बिना मान नहीं सकता। उसकी अलकें इसके कुण्डलमें उलझेंगी। उसे कष्ट होगा।'

नीलमणि कहीं धीरे-से सिर रखता है। सिर रखेगा, हिलावेगा, झूमेगा। लेकिन नीलमणि खेलमें भी अपने बड़े भाईके दाहिने न बैठता है, न खड़ा होता है। सदा बलके बायें कंधेपर ही इसे सिर रखना है। अतः बल तो एक कुण्डली हो ही गया है।

हाय, पता नहीं, उस दिन मुझे हो क्या गया था। आग लगे मेरे इन हाथोंको। मैंने अपने इस नवनीत-सुकुमारको ऊखलसे बाँध दिया था। महर कहते हैं, जिठानियाँ कहती हैं, भगवती पूर्णमासीतक कहती हैं कि अब उस भूलके लिए रोना नहीं चाहिये। सब कहते हैं कि उस बातको कई वर्ष बीत गये। बीते ही होंगे; क्योंकि उसके पीछे ही तो हम सब गोकुल छोड़कर यहाँ वृन्दावनमें, वृहत्सानुपुर के पड़ोसमें आ बसे। लेकिन मुझे तो कल-जैसी बात लगती है। नीलमणिके उदरपर वह रज्जुके घर्षणसे बनी रेखाकी कालिमा, उसे देखती हूँ तो अपने अश्रु रोक ही नहीं पाती हूँ। कितने यत्न किये मैंने उसे मिटानेके, क्या-क्या नहीं लगाया उसपर, किंतु वह रेखा तो मिटनेका नाम ही नहीं लेती।

'यह बहुत अच्छी लगती है।' नीलमणि अपने उदरपर एक ओरसे दूसरी ओरतक पड़ी उस रेखापर अपनी पतली तर्जनी फेरता है सिर झुकाकर और कहता है—"यह आभूषण मेरे किसी सखाके पास नहीं है। महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं कि इससे मैं 'दामोदर' हो गया हूँ।"

मेरे कण्ठमें दोनों भुजाएँ डालकर बड़े लाड़से कहता है–"मेरी मैयाने मुझे 'दामोदर' बनाया है।"

जैसे मैयाने कोई लोकोत्तर पौरुष किया है या कोई अत्यन्त दुर्लभ पुरस्कार दिया है। मुझे अब भी उस रेखाको स्पर्श करनेका साहस नहीं होता। उसपर कोई तैल या उपलेप लगाते हृदय रोने लगता है। उसे छूनेमें मेरे इस सुकुमारको पीड़ा हो सकती है, किंतु यह तो उसीको अपना गौरव मानकर चाहे जिसे दिखाता, फुदकता है।

यह अत्यन्त सुकुमार, भोला तनिक चपल है तो क्या हो गया। यह तो जैसे दुलार पानेके लिए ही बना है और इस नन्हेको पता नहीं, कितना-कितना सुख, कितना-कितना आनन्द देना आता है। यह तो सबको-वृक्षों-तकको सुख-स्नेह देता रहता है। मैं तो इसकी मैया हूँ। नारायण मेरे इस नीलमणिकी सदा रक्षा करें। इसको सदा स्वस्थ, सुप्रसन्न रखें।

तुँगी ताई-

अब मैं किसके पास जाऊँ ? यशोदा और नन्दको तो पता नहीं, क्या हो गया है। मेरे महर बड़े सही, किंतु जितने बड़े, उतने ही सीधे। मैं कुछ कहती हूँ तो मुझे ही समझाने लगते हैं। इनसे तो बस कोई बैठे उपदेश सुनते रहो। महर्षि शाडिल्यने भी आशीर्वाद दे रखा है। भगवती पूर्णमासीसे कहा तो वे उलटे मुझे ही कहती हैं—'तू बहुत भोली है।'

मैं भोली हूँ, सीधी हूँ; किंतु यह भी क्या बड़ी बुद्धि लगाकर सोचनेकी बात है कि बालकोंको गायें चराने वनमें नहीं जाना चाहिये। व्रजमें अभाव है गोपोंका, सेवकोंका कि व्रजराजकुमार ही गायें चराते वन-वन भटका करे ? कृष्ण वनमें न जाय तो क्या बिगड़ जायगा ? वह अकेला नहीं रह सकता, उदास होगा तो सब बालक उसके साथ ही रहें।

मैंने नन्दनसे कहा। सबसे छोटा देवर है। महामल्ल है; किंतु वह भी कहता है—'भाभी, आप समझती क्यों नहीं हो। कन्हाईको वनमें भेजना क्या हममें कोई चाहता है ? केवल गायें चाहती हैं। वे उसके बिना वनको मुख ही नहीं करना चाहतीं। गायोंके बिना वह गोपाल उदास हो जाता है और उसका उदास मुख हममें किसीसे देखा जायगा ?'

नन्दनकी बात ठीक लगती है। महीनेमें एक दिन नीलमणिका जन्म-नक्षत्र आता है, तब भी उसे गायोंको वनमें पहुँचाने जाना पड़ता है। वह न जाय तो गायें नन्दपौड़िपर ही भाग-भाग आती हैं। उस जन्म-नक्षत्रके दिन भी सब वनमें घड़ी-आध-घड़ी कठिनाईसे टिकती हैं।

'तुम भी कृष्णके साथ वनमें क्यों नहीं जाया करते ?' मैंने झल्लाकर ही नन्दनसे कहा।

'भाभी, सच कहना।' नन्दन बहुत गम्भीर होकर बोला—'जाया जा सकता हो तो उपनन्द दादा तो दूर, तुम स्वयं लाठी लेकर श्यामके पीछे वनमें चल दोगी या घरमें बैठी रहोगी ?'

'मुझे तुम्हीं जाने दोगे ?' मैं इस देवरसे और क्या कहूँ। 'व्रजमें अब हम गोपियाँ ही गायें चरानेको बची हैं और तुम गोप घरमें रोटी सेंकोगे, दही बिलोवोगे ?'

'वह मैं नहीं कहता। मैं कहता हूँ कि तुम्हारा मन श्यामके पीछे चल देनेको छटपटाता है या नहीं ?'

'यह भी कोई पूछनेकी बात है।' मैं समझ गयी कि नन्दन क्या कहना चाहता है। मैं तो यशोदासे बड़ी हूँ। नीलसुन्दरके साथ-साथ जानेको मन तो नयी-नवेली बहुओंतकका छटपटाता होगा। यह कन्हाई आँखोंके आगेसे आधे पलको भी हटता है तो पता नहीं, हृदयको क्या-क्या होने लगता है। उसके वनसे लौटनेतकका समय कैसे कटता है, हम सब जानती हैं। 'हम गोपियाँ तो नहीं जा सकतीं; किंतु तुम पुरुष........।'

'भाभी, तुमने उपनन्द दादासे पूछा नहीं ?' नन्दन सदा ऐसे ही बोलते हैं। इन्हें सीधे उत्तर देना जैसे आता ही नहीं।

"तुम्हारे दादा कितने सीधे हैं, जानते तो हो। वे कहते हैं—'वनमें हमारे जानेसे बालकोंको संकोच होगा। उनके खेलनेमें बाधा पड़ेगी। नीलसुन्दर उदास हो जायगा।"

'साथ चलनेकी बात करते ही उसका मुख उदास होने लगता है।' नन्दन ठीक कहते हैं—'उसका उदास मुख देनेकी शक्ति हममें-से किसीकी नहीं है।'

अब मैं किसके पास जाऊँ ? किससे कहूँ ! यह कन्हाई बहुत चपल है। कभी कालिय-ह्रदमें कूद पड़ता है और कभी कोई असुर आ जाता है। पता नहीं, और कितने ऊधम वनमें करता होगा। यशोदा रह कैसे पाती है दिनभर इसको देखे बिना ?

बहुत नन्हा था, पालनेमें पड़ा रहता था, तब भी मुझे देखते ही किलकता था, हाथ-पैर उछालकर। नटखट इतना कि गोदमें उठाओ तो वस्त्र गीले कर ही देता था। मैं उठाने लगती तो यशोदा मना करती थी— 'आपको यह रोज-रोज भिगा देता है।' . . . .

'चल, बड़े पुण्यसे, कितनी-कितनी मनौतियाँ और व्रत करनेपर तो व्रजकी गोपियोंको यह सौभाग्य मिला है।' मैं हँस जाती—'इस प्रकार पवित्र होनेका अवससर क्या सहज मिलता है। मेरा लाल जुग-जुग जिये और सदा-सदा मुझे पवित्र करता रहे। तेरे भवनमें साड़ियोंका अभाव हो गया है ?'

नीलसुन्दर तनिक बोलने लगा तो मुझे 'माँ' कहता था। मैंने प्रयत्न किया कि 'ताई' कहे; किंतु 'त' इससे बोला ही नहीं जाता था। 'दाई' कहता और अपना सिर हिला देता। समझता था कि ठीक नहीं बोला गया है।

"क्यों रे, 'ताई' को 'दाई' कहता है ?" यशोदा या रोहिणी रानी तब भी डाँटना चाहती थीं; लेकिन मुझे तो बहुत अच्छा लगता था इसके मुखसे 'दाई' सुनना।"

"लाल, तू सिर मत हिला। मैं सचमुच तेरी 'दाई' हूँ।" लेकिन मेरा लाल दो-चार बार प्रयत्न करता था 'ताई' कहनेका और जब नहीं कह पाता था तो 'माँ' कहकर मेरी गोदमें आनेको अपने नन्हे हाथ फैला देता था। गोदमें लेते ही अञ्चलमें सिर छिपा लेता था।

'दुंगी दाई' तनिक और बोलने लगा तो इसने कभी नाम लेनेका भी प्रयत्न किया था। यशोदाने झिड़क दिया—'बड़ोंका नाम लेता है ?'

'नाम लेना आता कहाँ है इसे।' मैंने यशोदाको झिड़ककर ही कहा; किंतु वह तो हाथोंमें आँचल लेकर मेरे पैर पर सिर रखकर बोली—'आप आशर्वाद दो कि इसे बड़ोंका नाम लेना कभी न आवे।'

यह नीलसुन्दर तो अपने जाये-से भी अपना। इसे मैं यशोदा प्रार्थना करे, तब आशीर्वाद दूँगी ? मेरे जन्म-जन्मके सब पुण्य इसके।

गोपियोंने जाने कितना हल्ला मचा रखा था गोकुलमें। बालक थोड़ी धूम तो करेगा ही; किंतु नीलसुन्दर तो इतना भोला है कि धूम करना उसे क्या आवे। इतना सुकुमार कि तनिक चले, दौड़े तो थक जाय। गोपियोंको

पता नहीं, क्यों इसके लिए अनेक झूठे, मनगढ़न्त उपालम्भ देनेकी धुन चढ़ी रहती है।

'यह सब झूठ है। यह इन गोपियोंकी मनगढ़न्त है।' मैंने यशोदासे तभी कह दिया था—'इनकी बातें सुना मत कर। इन्हें डाँट दिया कर। मेरा लाल कभी धूम कर नहीं सकता। कितना सीधा है नीलसुन्दर। निहोरे करके देने पर तो तनिक-सा माखन मुखमें लेता नहीं, किसीके घर दही-माखनकी चोरी करने जायगा ?'

'लाल ! माखन खाना हो तो सखाओंके साथ मेरे 'घर आ जाया कर !' मैंने कितनी बार इसकी मनुहारें कीं, परन्तु यह कभी भूले-भटके भी तो आया होता। कभी आया भी तो तनिक ताईकी गोदमें बैठा और भाग आया।

"अब जी माना गोपियोंका ?" अब यह सुकुमार सवेरे-सवेरे गायें लेकर वनमें जाने लगा है। लौटता है सायंकाल। गाँवमें रहता ही नहीं तो तुम्हारे घरोंमें धूम करने कैसे जायगा। दिन भर गायोंके पीछे वन-वन भटककर कितना थका लौटता है। अब दिन भर रोओ और सायंकाल इसकी एक झाँकी किसी प्रकार पाने पथपर आँखें गड़ाये प्रतीक्षा करती रहो।

लड़कियोंसे नहीं रहा जाता तो वे दही बेचनेका बहाना करके चल देती हैं। बरसानेकी बालिकाएँ बहुत भोली हैं, बहुत सीधी। जानती हैं कि वनमें जायँगी तो बंदर झपटेंगे, दहीकी मटकिया गिराकर फोड़ देंगे। वस्त्र भी फाड़ दे सकते हैं, नोंच भी ले सकते हैं; किंतु मानती नहीं हैं। उनसे इस नीलसुन्दरको देखे बिना नहीं रहा जाता, मान कैसे जायँ। बंदरोंको भी दही खानेका चाव पड़ गया है। श्यामने दही-माखन खिला-खिलाकर व्रजके बंदरोंको धृष्ट तो बना दिया है; किंतु यह कोई दोष तो नहीं है। व्रजराजका कुमार तो उत्पन्न ही हुआ है देने, बाँटनेके लिए। नन्द और यशोदाका लाड़ला माँ-बापसे कहीं अधिक उदार है तो आश्चर्य क्या। नन्द और यशोदा ही कहाँ-कभी हाथ रोककर देना समझ पाये हैं।

लड़कियोंसे मैंने भी सुना है कि उनकी चीख-पुकार सुनकर रोज-रोज मेरा नीलसुन्दर ही उन्हें बचाने दौड़ आता है। वही तो सारे व्रजको बार-

बार विपत्तियोंसे बचाता आ रहा है। लड़कियोंकी बंदरोंसे रक्षा भी वही करता है। वही कपियोंको भगाता है।

सबकी रक्षा वही करता है, किंतु उसकी रक्षाको भी तो कोई चाहिये। उसके साथ चार-छः बड़े गोप वनमें जाया करें। अरे, उससे पूछो मत। उसे बतलाओ मत ? उससे थोड़ी दूर रहा करो तो उसके खेल-कूदमें वाधा नहीं पड़ेगी; किंतु उसे देखते तो रहो। कोई संकट उसपर न आवे, इतने सावधान तो रहो।

कोई मेरी बात सुनता नहीं। मेरे महर नहीं सुनते। महर्षि शाण्डिल्य नहीं सुनते। भगवती पूर्णमासीने कह दिया—'तुम चिन्ता मत करो! कन्हाईका कोई-कुछ बिगाड़ नहीं सकता।'

मैं चिन्ता करके भी क्या कर पा रही हूँ। भगवान् नारायण ही इस सुकुमारकी रक्षा करते हैं, वे ही दयामय इसकी रक्षा करते रहें।

पीवरीताई-

अपना नीलसुन्दर मुझे 'माँ' ठीक ही तो कहता है। पता नहीं, जिठानी तुंगीको क्यों धुन है कि वह उन्हें 'ताई' कहे। वे उसे बार-बार सिखलाती हैं—"मैं तेरी 'ताई' हूँ।"

कितना समझदार है मेरा लाल ! नन्हा था, 'ताई' कह नहीं पाता था तो 'दाई' कहकर सिर हिलाता था कि उससे ठीक नहीं बोला गया है। मुझे हँसी आती थी। मुझे उसने 'माँ' कहा और गोदमें आ गया। धन्य हो गयी मैं। मुझे पता ही नहीं लगा कि कब उसने अञ्चलमें मुँह डाला और गुट्टर-गुट्टर दूध पीने लगा।

'यशोदा ! यह मेरा लाल है।' मैंने देवरानीसे कहा—'तुम इसकी धाय बनी रह सकती हो। तुम्हें बेटा चाहिये तो मैं अपने दोनों दे देती हूँ। उन्हें सँभालो तुम; किंतु श्याम मेरा ही रहेगा।'

'यह तो आपका है ही।' देवरानी यशोदा-जैसी ईश्वर सबको दे। यह सेवा, नम्रता, शालीनताकी जैसे मूर्ति है। मुझसे भी कभी इसने परिहास नहीं किया, जब कि जानती है कि मुझे क्रोध कभी नहीं आता। किसीकी बातका कभी बुरा नहीं माना करती।

मेरा शरीर मोटा है तो कोई मेरे मुटापेपर कुछ कहे तो मैं क्यों बुरा मानूँ ? मोटा व्यक्ति हँसमुख नहीं रहेगा तो उसकी निभेगी कैसे और अब तो यह मुटापा मेरे लिये वरदान-जैसा बन गया है। मैं नन्द-भवन पहुँची नहीं कि नीलमणि सबको छोड़कर मेरी गोदमें आ बैठता है या मेरे कण्ठमें भुजाएँ डालकर मेरी पीठसे चिपक जाता है। उसे मेरे शरीरका स्पर्श सुखद लगता होगा।

'माँ !' नन्हा था तभी नहीं; अब भी गोदमें आकर अपने नन्हे करकी कोमल हथेली मेरे कपोलोंपर रखकर मेरा मुख घुमाकर अपनी ओर करेगा

कुछ कहनेसे पहले और फिर ढेरों बातें कहता ही चला जायगा। मैं तो उसका मुख, उसके हिलते पतले अधर देखती रह जाती हूँ।

'तू सबसे पहले उस राक्षसीका दूध पीने क्यों गया था उसकी गोदमें ?' मैंने एक दिन इसे पूतनाकी बात बतलाकर हँसकर पूछा।

'कौन-सी राक्षसी ?' यह तो मेरा मुख देखने लगा। इसे पता भी कैसे हो सकता है। तब यह कुल छः दिनका ही तो था। लेकिन इसने पूछ ही लिया—'वह खूब मोटी थी क्या ?'

'मोटी कोई ऐसी-वैसी थी।' मैंने इसे बतलाया तो बोला—'तब उसमें बहुत दूध रहा होगा।'

'चल !' मैं भी हँस गयी। यह कहना चाहता है कि मैं मोटी हूँ तो मेरे पयोधरोंमें बहुत दूध है और इसीलिये यह अब भी मेरे आँचलमें सिर छिपाकर दूध पीने लगता है।

सच कहूँ—मुझे तो अपना मुटापा तबसे बहुत प्रिय हो गया है। मुझे कहाँ कपियोंके समान दौड़ना-कूदना है। मैं तो गोष्ठकी भी सेवा कम ही करती हूँ।

'यशोदा तुझे पूरा दूध नहीं पिला पाती ?' मैंने इससे कहकर देवरानीकी ओर देखा—'तुम अच्छी धाय भी नहीं लगती हो।'

'लाल ! तू इतना दुबला है। कुछ तो दही-माखन खाया कर।' मुझे यशोदाकी बात ठीक लगती है कि यह सुकुमार सखाओंके साथ खेलनेमें लगा रहता है, थका करता है और बहुत थोड़ा खाता है। 'तेरे सखा ही तुझे पटकनी दे लेते हैं और कंसके पास तो बहुत असुर हैं। वह आये दिन किसी-न-किसीको भेज देता है। तू उन सबसे कैसे लड़ेगा ?'

'माँ ! तू उन सबको पुकार तो सही।' यह चपल झट उठ खड़ा हुआ—'मैं दादाको बुलाता हूँ। हम दोनों उन सबको मार देंगे। मैं तो फट्से मार दूँगा।'

'मेरा लाल युगोंतक जीता रहे। सदा विजयी हो।' मैंने इसे हृदयसे लगा लिया—'भला मैं क्यों किसी असुरको बुलाऊँगी। उनकी छाया भी मेरे लालपर न पड़े; किंतु तू तनिक हृष्ट-पुष्ट बन, बलवान् बन, कुछ खाया कर।'

'मैं माँका दूध तो पीता हूँ।' इसने तो आँचलमें सिर छिपा लिया। समझता है कि मैं मोटी हूँ तो मेरा दूध पीनेसे यह भी मोटा बन जायगा।

गोपियाँ गोकुलमें इसके ऊधमकी चर्चा करती थीं और यहाँ भी सब पता नहीं क्या-क्या कहती हैं; किंतु अभी यह है ही कितना बड़ा। यह मेरे आँचलमें सिर छिपाकर मेरा दूध पीनेवाला मेरा लाल। यह दुधमुँहा किसीको भला क्या छेड़ता होगा ? हाँ, यह तो हो सकता है कि यह किसीके आँचलके वस्त्र खींचे। इतना भोला है कि किसीके भी आँचलको खींचकर उसका दूध पीनेको मचल पड़ता है। इसमें बुरा माननेकी बात क्या है।

'माँ ! मैं खाऊँ ?' मुझे वह दिन कैसे भूल सकता है, जब गोकुलमें यह अपने नन्हे मित्रोंके साथ मेरे घर आ गया था। मैं दधि-मन्थन करने बैठी थी। नवनीत तैर आया था और यह आकर मटकी पकड़कर सामने खड़ा हो गया।

'खा लाल !' मैं तो निहाल हो गयी। यह भला कुछ खाना तो चाहता है। 'खा, अपने सखाओंको भी खिला। घर तो तेरा ही है।'

यह खा कहाँ रहा था। इसने अपने मुखमें तो दो नन्ही पतली अँगुलियोंसे दो-चार बार नवनीतका स्पर्श कराया। सखाओंको, कपियोंको बाँटते प्रसन्न हो रहा था और मैं इसे देखकर अपनी भी सुध-बुध भूल गयी थी। यह बाँटता जाता था और बीच-बीचमें मेरी ओर देख भी लेता था। मैं प्रोत्साहन नहीं देती तो रोकती ?

बालक खायेंगे तो फैलायेंगे, गिरायेंगे और कुछ भाण्ड भी फूटेंगे उनकी क्रीड़ामें। इसमें हो क्या गया ? नीलसुन्दरका सुप्रसन्न आनन्दसे खिला मुख देखनेको मिले तो यह हानि जिसका ध्यान आकर्षित कर सके, वह नितान्त भाग्यहीन।

'माँ !' इसने तो अनेक बार मेरे मुखमें भी माखन दिया। माखन-सने करोंसे मेरे कपोल छूकर मेरा मुख घुमाया। मैं इसे देखती रही। मैंने कहा भी—'लाल, तू सखाओंके साथ प्रतिदिन माखन खाने यहाँ आ जाया करे'; किंतु इसे कहाँ कुछ स्मरण रहता है।

गोपियाँ अब पता नहीं, क्या-क्या लाञ्छन लगाती हैं मेरे लालको। यह उनके घड़े फोड़ देता है, वस्त्र फाड़ देता है। मुझे तो हँसी आती है। यह इतना चपल हो गया है ? मुझे तो यह ऊधमी लगता नहीं। सखाओंमें कुछ ऊधमी होंगे। बालकोंके साथ बालक कुछ अधिक धूम करते हैं, पर क्या अच्छा लगेगा कि श्यामसुन्दर वृद्धोंके समान गम्भीर बना रहे ?

मुझे केवल इसका गायें चराने वनमें जाना अच्छा नहीं लगता; किंतु उपाय नहीं है। मैंने मना किया तो बोला—'माँ' ! बरसानेके सखा यहाँ घरमें आते तो संकोच करते हैं। वनमें सब आ जाते हैं।'

मेरे स्वभावमें ही किसीका विरोध करना, कोई हठ करना नहीं है। कोई कुछ कहे तो मैं उसीकी बात मान लेती हूँ। इस नीलसुन्दरकी बात न मानूँ, यह सोच भी नहीं पाती। यह वनमें प्रसन्न रहता है तो ऐसा ही सही। यह भी तो कभी अपनी इस मोटी माँ ('ताई' तो कभी इसने मुझे कहा ही नहीं) की बात काटता नहीं है।

अब जबसे यह वनमें जाने लगा, बछड़े चराने जाने लगा, तभीसे इसे धुन है कि अपनी इस माँके लिए वनसे कोई-न-कोई उपहार लेकर ही आता है। इसके लौटनेकी प्रतीक्षा व्रजमें कौन है जो आतुर होकर नहीं करता। मैं नन्द-भवन नहीं रहूँ तो यह उदास नहीं हो जायगा ?

'माँ !' आते ही दौड़ता सीधे मेरी गोदमें बैठता है और कभी मुखमें अपने करोंसे कोई मधुर फल देगा तो कभी पटुकेमें दुबकाया कोई शशक ही देकर कहेगा—'तू इसे पाल।'

'आप एक पशुपाला और बनालो अपने पुत्रके इन उपहारोंके लिए।' यशोदा हँसती है।

'मेरा लाल सारे संसारका पालन कर लेगा।' मुझे कहाँ चिन्ता करनी है। कोई पशु-पक्षी, कोई बड़ा या छोटा—इसका साथ तो छोड़ना नहीं चाहेगा। नन्द-भवन रहेगा रात्रि भर और प्रायः इसके साथ वनमें चला जायगा। मुझे तो केवल इसे समझाना पड़ता है—'इसे इसके माँ-बापके पास वनमें पहुँचा देना, नहीं तो यह रोवेगा, दुःखी होगा।'

मेरा यह लाल उसकी मनुहार करने लगेगा। नीलसुन्दर किसीको भी दुःखी देख ही नहीं सकता। किसीके अश्रु इसके लिए असह्य हैं। मेरा यह गुणनिधान सुकुमार लाल !
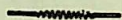
कुवलाचाची—

व्रजयुवराज हमारा कहते तो मुझे हिचक होती है। हमारा नहीं, मेरा। इस नीलमणिमें मैं किसी को भाग नहीं देता चाहती; किंतु कहना हमारा ही पड़ता है। व्रजके गोप-गोपियोंका तो यह अपना है ही, कोई आज अभी कहींसे व्रजमें आवेतो उसे भी लगेगा कि यह उसीका है। मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षीतक इसे अपना मानते हैं।

मैं देखती नहीं हूँ क्या कि इससे बछड़े ही नहीं मानकरके रूठते, कपि, मयूर, शशक, गिलहरी, बिल्लीतक मान कर लेती हैं। मान कोई पराये-से किया जा सकता है ? कोई पराये-से मान करके क्या पावेगा ? जो अपना है, जिसमें अपना नेह है, वही तो मान करनेपर मनावेगा, पुचकारेगा। यह नीलमणि पास आनेपर आधे क्षण जिस पशु या पक्षी अथवा कपिकी ओर नहीं देख पाता, वही रूठकर अलग जा बैठता है और यह उसे पुचकारने, दुलराने पहुँच जाता है उसके समीप।

रोहिणी रानी, व्रजेश्वरी जीजी, मैं, गोपियाँ हँसती हैं देख-देखकर— 'लाल, वह कपोत तुझसे रूठ गया है।' यह चौंकता है और उसतक दौड़ जाता है। उसे पुचकारेगा, उसे उठावेगा या उससे लिपटेगा, उसे कुछ खिलाकर, रिझाकर मानेगा।

यह सब ऐसे ही तो नहीं होता। सब इसे अपना मानते हैं। इसपर अपना अधिकार मानते हैं और यह घुटनों चलना सीख रहा था, तबसे ऐसा ही है। अब तनिक बड़ा हुआ तो इससे बहुत बड़ा हो गया इसके अपनत्वका, स्नेहका घेरा। मेरा लाल पूरे संसारको स्नेह देने आया है।

मान तो इससे गोपियाँ करती हैं। मैं भी करती हूँ; किंतु इससे मान किया नहीं जा सकता। इससे रूठनेका केवल नाटक किया जा सकता है और ऐसा नाटक तो मैं अनेक बार करती हूँ।

'माँ !' मैं नन्द-सदन आऊँ और यह उसी क्षण दोनों हाथ फैलाये दौड़ता, हँसता न आवे तो मैं रूठनेका नाटक तो करती हूँ। कह देती हूं— "मैं तेरी 'माँ' नहीं बनूँगी। तू उस काली बिल्लीको माँ बना। मैं नहीं बोलती तुझसे।"

'मैं तेरी माँ नहीं बनूँगी।' कह तो देती हूँ, किंतु लगता है कि हृदय दो-टूक हो जायगा। मन-ही-मन कहने लगती हूँ—'माँ बने वह, जो हो नहीं। मैं तो तेरी माँ हूँ—सदा-सदाकी हूँ। इसे विधाता भी झुठला नहीं सकता तो मैं या तू ही कैसे झुठला सकता है। बने वह, जो हो नहीं।'

'मेरे पास मत आ ! मैं तुझे गोदमें नहीं उठाती।' इतना कहना ही बहुत हो जाता है। यह गोदमें चढ़ेगा, कण्ठमें भुजाएँ डालकर लिपटेगा। पीछेसे पीठपर चढ़कर मेरे कपोलोंपर कपोल रखकर मेरे नेत्रोंमें झाँकेगा अथवा बलपूर्वक मेरे हाथ हटाकर आँचलमें सिर छिपाकर स्तनपान करने लगेगा।

'मैं रोऊँगी !' दोनों हाथ मुखपर रखकर केवल एक बार मैंने कहा कहा था और 'ऊँ-ऊँ' किया था। अब फिर कभी ऐसा नहीं करूँगी। परिहासकी सीमा होनी ही चाहिये। मेरे इस नीलसुन्दर लालका हृदय बहुत कोमल है।

'कुवला ! इतनी निष्ठुर मत बन !' रोहिणी जीजीने टोककर ठीक किया—'नीलमणिके मुखकी ओर देख। यह रोने ही वाला है।'

मैंने चौंककर मुखपरसे हाथ हटाया। हे भगवान्, इसका कमलमुख लाल-लाल हो उठा था। इसके बड़े-बड़े नेत्र भर आये थे। मैंने झटपट इसे अङ्कमें खींचा—'मेरे लाल ! मैं तेरी माँ हूँ—तेरी ही माँ हूँ।'

यह तो मेरी गोदमें सिर छिपाकर फफक-फफककर रोने ही लगा था। इसके इन्दी-सुन्दर लोचनोंमें मुझ अभागीके कारण अश्रु आये। लगता था कि मैं हृदय फटकर मर जाऊँगी। बड़ी कठिनाईसे मैं बहुत दुलारकर कहीं इसे चुप कर सकी उस दिन।

दोनों कपोलोंपर अञ्जनयुक्त अश्रुकी रेखाएँ लिये इसने मुख उठाया और अपनी नन्ही हथेलियोंमें मेरा मुख पकड़कर मेरे नेत्रोंमें देखता बोला—'माँ !'

लगता था कि इसे अब भी संदेह है कि मैं इसकी माँ रहूँगी या नहीं। अथवा इसे भय है कि मैं फिर रोने तो नहीं लगूँगी या इससे बोलना बंद तो नहीं करूँगी।

'लाल !' मैंने हँसकर इसका सिर सूँघा। इसे हृदयसे लगाया और हँसकर समझाया—'मैं तो हँसी कर रही थी। देख, मेरी आँखोंमें आँसू कहाँ हैं।'

मैं इसका मुख अपने अञ्चलसे पोंछ दूँ, इससे पहले ही यह अपने करोंसे मेरे कपोल पोंछने लगा था।

सबसे बड़ी विपत्ति यह है कि अब यह वनमें जाने लगा है। बछड़े चराने जाता था, तब भी यह तो होता था कि भूख लगते ही सखाओंके साथ, बछड़ोंको लेकर लौट आया करता था। अब सवेरे-से गायोंके पीछे जाता है तो सायंकाल लौटता है। इसे देखे बिना तो एक-एक पल युग-समान लगते हैं।

भाग्य है पुरुषोंका। गोप दिनमें कई-कई बार वनमें दूरसे सही, इन बालकोंको देख आते हैं। उनके पास वनमें जानेके अनेक बहाने हैं; किंतु हम नारियोंके पास तो कोई बहाना भी नहीं है।

'मैं छाक ले जाऊँ ?' मैंने डरते-डरते एक दिन व्रजेश्वरी जीजीसे पूछ लिया था।

'व्रजराजके छोटे भाईकी बहूके लिए अब यही काम बचा है ?' जीजीने छूटते ही डाँट दिया। 'देवर तुझे कुछ कहते नहीं ? संनन्दको आने दे, मैं उनसे कहूँगी।'

'जीजी, आप उनसे क्या कहोगी ?' मैंने हँसकर कहा—'आपके देवर तो भोलेबाबा हैं। मैं उनसे पूछती तो वे मना नहीं करते। उनसे तो कह

सकती हूँ—'नीलमणिको देखे बिना दिनभर जी छटपटाया करता है। छाक लेकर जाऊँ तो उसे एकबार देख तो आऊँगी।'

'जैसे मेरा जी कम छटपटाता है।' जीजीने मुझे डाँट दिया—'बरसानेकी लड़कियाँ दही बेचने जाया करती हैं। अब तू भी कहनेवाली है कि दही-बेचने जाऊँगी। देवरसे यह भी पूछ लेना।'

'यह भी करके नीलमणिके मुखचन्द्रकी एक झलक मिल जाया करे तो मैं तो यह भी करने लगूँ।' मैंने कह ही दिया—'आपके देवरकोमना लूँगी। व्रजराज जेठके सम्मुख दूरसे भूमिमें सिर रखकर प्रार्थना करूँगी तो वे भी मुझे अनुमति दे देंगे और पैर पकड़ूँ अभी तो जीजी तुम क्या निष्ठुर ही बन जाओगी?'

'कुवला! तू सचमुच यह सब करनेवाली है?' जीजी तो चौंककर मेरा मुख ही देखने लगीं।

'तुम-सबने स्नेह-दुलार दे देकर मझे ढीठ तो बना ही दिया है।' मैंने कहा—'एकका ही भय न होता तो मैं कबकी तुमसे अनुमति ले चुकी होती।'

'अब तुझे भय किसका है?' जीजीनें वैसे ही आश्चर्यसे मेरी ओर पूछा।

'नीलमणिका ही भय है।' मैंने बतलाया—'मुझे भरोसा नहीं है कि वह अपनी इस माँको छाक लेकर आते देखकर प्रसन्न होगा। दही बेचने जाऊँ, यह तो वह सह सकता ही नहीं। पता नहीं कितना बिगड़ेगा।'

'कुवला!' जीजीने भरे-कण्ठ केवल सम्बोधन किया।

जीजी! मै छाक लेकर जाऊँ और मेरा लाल रूठ जाय, भोजन फक-बिखेर दे, वह दिन भर रह जाय, यह तो कल्पना भी सही नहीं जाती है। इसीलिये मैंने तुमसे कभी कहा नहीं। आज भी पूछते-पूछते डर रही थी।

अपनी माँको छाक लेकर वनमें आते देखकर वह प्रसन्न नहीं होगा। मैं उसे जानती हूँ। मन मारकर यह उमङ्ग दबा देना ही उचित है। उससे इसकी चर्चा भी करनेका साहस नहीं है। मैं उससे पूछूँ और वह रूठ जाय, रोवे—दिनभरका थका-हारा तो लौटता है, अब सायंकाल भी क्या उसे दुःखी करने, रूठने देनेकी आशङ्का मोल ली जा सकती है। मेरा लाल तो ममता, स्नेहकी साकार मूर्ति है।

अतुला चाची-

विधाता विपुल सौभाग्य ऐसा कदाचित् ही किसीको देता है, जैसा मुझे दिया है। मेरे स्वामी व्रजराजके सबसे छोटे भाई हैं। मैं सबसे छोटी हूँ, इसलिये सबकी स्नेहभाजना हूँ। मेरे सब जेठ और जिठानियाँ एक ही धुनमें रहते हैं कि छोटी बहूको कोई श्रम न करना पड़े। सब मुझे ही अच्छे उपहार देना चाहते हैं। मैं कहती हूँ कि सबकी सेवा मेरा स्वत्व है; किंतु सब कह देती हैं—'तुझे चुपचाप आदेश मानना चाहिये।'

अब जबसे नीलमणि व्रजराज-सदनमें प्रकट हुआ—मेरा सौभाग्य शतगुणित हो गया है। पूरे व्रजकी स्त्रियोंमें जैसे एक ही उसकी मैया है, वैसे एक ही उसकी चाची है। वह शेष सबको 'माँ' करता है, किंतु मुझे तो प्रारम्भसे 'चाची' कहने लगा। उसके कारण मेरे भद्र और तोक भी मुझे चाची ही कहते हैं। अब व्रजमें सब बालकोंकी एक ही चाची है यह अतुला।

मेरे भद्रको तो ब्रजेश्वरी जीजीने उसके घुटनों सरकनेसे पहले सँभाल लिया। वह नन्द-सदनका हो गया। उसने उनका ही स्तन-पान किया और रात्रिमें भी वहीं रहने लगा। स्तन-पान तो उनका ही अधिक मेरे तोकने भी किया।

वे बड़ी हैं। हँसकर कहती हैं—'तू तो मरे बालकोंकी अच्छी धाय भी नहीं है।'

'लेकिन जीजी, मैं नीलमणिकी चाची हूँ। यह मेरा है।' मेरी इस बातका प्रतिवाद तो उन्होंने हँसीमें भी नहीं किया।

मेरा तोक सब प्रकारसे नीलमणिकी दूसरी मूर्ति है और नीलमणिके भी अपने इस छोटे भाईमें जैसे प्राण ही बसते हैं। तोक दूर हो तो मुझे भी श्यामका भ्रम हो जाता है और तोकको मैं भी कभी डाँटना चाहूँ तो उसकी ओरसे नीलमणि झगड़ने आ जाता है। कोई तनिक भी तोकको आँख कड़ी करके देखे, श्यामको यह सहन नहीं है।

मेरा भद्र स्वभावमें अपने पितापर गया है। वैसा ही गम्भीर प्रसन्न। कन्हाईका एक दिन तो दूर, एक क्षण भी जैसे भद्रके बिना नहीं चलता। भद्र केवल दस महीने बड़ा है नीलमणिसे और बलसे डेढ़ महीने छोटा है; किंतु बलतो उसकी बात ऐसे मानता है, जैसे वही छोटा है। अच्छा यही है कि भद्र बलका बहुत सम्मान करता है।

मुझे हँसी आती है। स्वामी भी हँसते हैं। भद्र जैसे ब्रजके सब बालकोंका स्वतः सिद्ध सेनापति हो गया है। वह सबको आदेश देता है और आश्चर्य है कि उससे बड़े बालक भी उसका आदेश मान लेते हैं। मानता तो नीलमणि भी है, किंतु तनिक आनाकानी करके, खिझाकर। नीलमणिका जैसे जन्मजात संरक्षक है भद्र।

ब्रजेश्वरी जीजी जब कहती हैं—'नीलमणि बन जाता है, तब भी मुझे आश्वासन है कि भद्र उसके साथ है।'

भद्र जैसे बालक नहीं है। वह क्या कर लेता होगा ? लेकिन श्यामको अवश्य धूपमें खेलने, यमुनामें देरतक नहानेसे वही रोकता होगा। वृक्षपर भी वह सुकुमार नीलमणिको नहीं चढ़ने देगा, यह भरोसा मुझे भी है।

भद्र और तोक मेरे हैं, यह मुझे कभी लगता नहीं। दोनों हो ब्रजेश्वरी जीजीके। वे ही उनको सँभालती हैं। उन्हींके स्नेहसे दोनों पले। मेरा तो नीलसुन्दर। यह मेरा—इतना मेरा कि रानी जीजी-तक उलाहना देती हैं—'अतुला, अपने नीलमणिको तू समझाती, रोकती या डाँटती नहीं ? यह कितना चंचल हो गया है। गोपियाँ कितने प्रकारके उलाहने देती हैं।'

बात रानी जीजीकी ठीक है। श्याम अपने मनकी बात केवल मुझसे कहता है। गोदमें आकर बैठकर कानसे मुख लगाकर क्या-क्या पराक्रम कर आया है या क्या करनेवाला है, सब कह जाता है। नन्हा था, तब भी मुझसे कानसे लगकर पूछता था—'अमुक गोपीके घर जाऊँ ? उसके सब भाण्ड फोड़ दूँगा। चाची, मेरे सब सखा साथ रहेंगे।'

मैं इस चपलका मुख देखती रह जाती हूँ। मैं मना भी करना चाहूँ तो मेरे मुखपर कर रखना पता नहीं, कैसे सीख लिया इसने। कर रखकर मनुहार करेगा—'चाची, तू मना मत कर, भद्रको मैंने मना लिया है।'

अब यह वन जाने लगा है तो सायंकाल लौटकर दिनमें क्या-क्या करता रहा, सब गोदमें बैठकर सुनाता है। व्रजेश्वरी जीजो कहती हैं—'अतुला, तू इसे गोदमें बैठाकर कुछ इसके मुखमें देती है तो यह कुछ खा ही लेता है। नहीं तो यह सखाओंके साथ वनसे लौटनेपर भी उनके पास दौड़ जाना चाहता है।'

यह नीलसुन्दर भूमिपर बैठ भी नहीं पाता था, तबसे अपनी चाचीको पहचानने लगा था। गोपियोंको अनेक बहाने करने पड़ते थे नन्द-सदन आनेके। मैं क्या समझती नहीं कि उनके सब उपालम्भ मेरे लालको देखने आनेके बहाने ही होते थे; किंतु मैं तो सवेरे तनिक देरसे पहुँचूँ तो जीजी उलाहना देती थीं—'अतुला, तू कहाँ—अटक गयी थी। नीलमणि चौंक-चौंककर द्वारकी ओर कबसे देख रहा था। तू इसके समीप नहीं रहती तो इसका मुख मुझे उदास लगता है।'

मेरे स्वामी भी कह देते थे—'तुम नीलमणिके पास झटपट चली जाया करो। भाभी तुम्हारी प्रतीक्षा करती हैं।'

मेरे स्वामी सबके स्नेहभाजन। ब्रजके विख्यात मल्ल। उन्हें अपने अखाड़े और लाठीसे अवकाश मिले तो अपने अग्रज ब्रजराजकी सेवामें रहना। क्रोध करते मैंने इन्हें कभी देखा नहीं। जबसे नीलमणिको उसके सूतिकागृहसे निकलनेपर इन्होंने देखा है, इनको भी नीलमणि ही सदा सर्वत्र सूझता है।

'हमारा नीलमणि ब्रज-युवराज है। यह विश्वविजयी बनेगा।' पता नहीं, क्या-क्या कहने लगते हैं तो मैं ही टोकती हूँ—'उसे कहीं अपने अखाड़ेमें मत घसीटना और न अपना भारी लट्ठ उठानेको कहना। वह बहुत सुकुमार है।'

'सचमुच बहुत सुकुमार है।' स्वामीका भी स्वर भर आता है—'तुम उसे तनिक माखन खिला दिया करो। वह कितना दुर्बल है। कुछ खायेगा तब सँभलेगा। वह दौड़ता-कूदता है, इतनेमें ही थककर पसीने-पसीने हो जाता है। अखाड़ेकी बात तो बहुत दूर है; किंतु उसे मल्ल तो बनना चाहिये।'

'तुम्हारे अग्रज ब्रजराज ही मल्ल नहीं बने तो व्रज-युवराज क्या बनेगा।' मैंने कह दिया—'नीलसुन्दरकी रक्षाके लिए उसका चाचा ही वहुत है।'

इन्होंने वरूथपको, विशालको और दूसरे भी कितने ही बालकोंको अपना शिष्य बना लिया है। मल्लोंको यह शिष्य बनानेकी धुन होती ही है। कुशल है कि भद्रको व्यायाम और अखाड़ेके नामसे ही चिढ़ है। इस विषयमें पितासे वह सर्वथा प्रतिकूल है। वह नहीं चाहेगा तो नीलमणि भी चाचाके अखाड़ेका शिष्य बनना स्वीकार नहीं करेगा।

अब नीलमणि वनमें गायें चराने जाने लगा है तो हम-सबको दिन-भर उसकी चर्चा-चिन्तनको छोड़कर कोई और काम ही क्या है। ये गोपियाँ ही नहीं, रानी जीजी और व्रजेश्वरी जीजीतक मुझे घेरकर बैठी रहती हैं—'अतुला, नीलमणि तुझसे ही अपनी सब बात कहता है। उसने वनमें कल क्या-क्या किया था ? आज कहाँ गया होगा गायें लेकर ?'

कभी-कभी तो बरसानेकी कोई वृद्धा आ जाती हैं। एक-दो दासियाँ रोज आती हैं। उनका सत्कार करने उठूँ तो दासियाँ पैर ही पकड़ लेती हैं—'चाची, आपके नीलमणिने कलके सम्बन्धमें क्या-क्या बतलाया ? वे आज कौन-कौन-सा पुरुषार्थ करनेवाले हैं ?'

जानती हूँ कि दासियोंको बालिकाएँ भेजती हैं। अब मैं तो उन सबकी ही चाची ठहरी। मुझे ही क्या अपने नीलमणिकी चर्चामें कम आनन्द आता है। मेरा भी यही व्यसन बन गया है। जब कोई मुझे कोई सेवा करने नहीं देगा तो यह चर्चा बहुत सुखद है।

लेकिन वंशीकी ध्वनि दूरसे आ रही है। नीलमणि मेरा अब सायं-काल गायें लेकर लौट रहा है। मुझे द्वारपर ही उसे अङ्कमें लेना है।

नन्दिनी बुआ—

विवशता वाध्य करती है अपनी कि मैं यहाँ रह नहीं पाती। श्यामके समीपसे जानेको किसका जी होता है; किंतु भाईके घर ही बराबर कैसे रहा जा सकता है। मैं इसकी चिन्ता नहीं करती कि कोई कहेंगी कि 'नन्दिनी बार-बार भाईके घर पहुँची रहती है; क्योंकि नन्दराय-जैसा उदार भाई मिला है, जो हर बार इसे इतने उपहार देकर बिदा करता है कि इसका घर मायकेके उपहारोंसे ही सम्पन्न बना रहता है।'

भगवान् यशोदा-जैसी भाभी सबको दें। इन्हें तो यही लगता है कि मैं बहुत विलम्बसे भाई-भतीजेका स्मरण करती हूँ। एक बार आनेपर महीने-दो-महीने तो ये बिदा करनेमें आज-कल करते टाल देते हैं और चाहे जितनी शीघ्र आऊँ, इनका उपालम्भ—'आप मुझे भूल जाती हैं तो कोई बात नहीं, किंतु आपको अपने भाई और नन्हा नीलमणि भी स्मरण नहीं आता ?'

नीलमणि जिसे स्मरण न आये, वह महाभाग्यहीना होगी। श्यामको क्या स्मरण करना पड़ता है ? इसे तो भूला जा ही नहीं सकता। यहाँसे जाकर इसीकी चर्चा-चिन्तन तो जीवन बना रहता है।

कृष्णकी वर्षगाँठ, उत्सवपर तो भाई बुलाये बिना माननेसे रहे; किंतु आये दिन इस सुकुमारको लेकर कोई-न-कोई उत्पात खड़ा रहता है। असुरोंको, कंसको पता नहीं इससे किस जन्मकी शत्रुता है। कुछ भयानक घटनेका समाचार मिलनेपर स्वामी ही छटपटा उठते हैं। वे नन्दव्रज अकेले आ जायँ तो मुझे बहुत दुःख होगा, इसलिये मुझे लाना ही पड़ता है उन्हें।

कुछ न भी हो तो इस नीलसुन्दरके मुखसे भुआ सुननेके लिए जी छटपटाता रहता है। यह जो भुआ कहता है—बोलना प्रारम्भ ही किया था इसने। मैं आयी तो भाभीने इसे प्रणाम करनेको कहा। प्रणाम तो यह उसके बाद देखते ही करता है। यहाँ रहूँ तो प्रातः-सायं ही नहीं, कई-कई बार

करता है; किंतु अब भी प्रणाम करके अद्‌भुत भंगीसे देखता है कुछ और ढङ्गसे मेरी ओर।

भाभीने इसे बतलाया—'ये तेरी बुआ है।' अन्यथा तो यह सबको ही 'माँ' कहता है। अब अपनी मैयासे बुआ सुनकर इसने पता नहीं क्या समझा। तनिक झुककर बड़े ध्यानसे मुझे देखने लगा। आगे, पीछे, बगलमें सब ओर वैसे ही खड़े होकर मुझे देखता रहा। मुझे हँसी आ रही थी। मेरे हाथ बढ़ानेपर भी गोदमें आ नहीं रहा था और मुझे घूम-घूमकर देखे जा रहा था।

भाभीने पूछा—'ऐसे क्या देख रहा है ?'

इसने अपने कपोल फुलाकर मुखकी पूरी वायु निकालते जिस ढङ्गसे 'भुआ' कहा, मैं, भाभी और जितनी भी वहाँ थीं, सब हँसते-हँसते दुहरी होने लगीं। लेकिन इसपर किसीकी हँसीका प्रभाव नहीं पड़ा। यह तो देर तक मेरे चारों ओर घूमकर मुझे देखता रहा। जैसे जान लेना चाहता हो कि मैं किधरसे भुआ हूँ और यह भुआ होती क्या है।

स्वयं निश्चय नहीं कर सका तो अपने अग्रजको बुला लाया हाथ पकड़कर। मेरी ओर संकेत करके फिर वैसे ही भुआ बोला। तब यह अधिक तो बोल नहीं पाता था। बड़े भाईसे कदाचित् जानना चाहता था कि वह देखकर बतलावे कि मुझमें भुआ होनेकी क्या विशेषता है और सब गोपियोंके समान मैं माँ क्यों नहीं हूँ।

बल मेरे हाथ बढ़ाते ही अङ्कमें आ गया और तब यह भी आ गया; किंतु अबतक यह मुझे वैसे ही 'भुआ' कहता है। वैसे ही एकबार तनिक झुककर ध्यानसे देखता है और फिर स्वयं खिलखिलाकर हँसकर गोदमें आकर लिपट जाता है।

इसके मुखसे 'भुआ' सुननेका जो सुख है, वह मैं कैसे समझा सकती हूँ। नन्हा था तो मैं बार-बार इससे पूछती थी—'मैं तेरी कौन हूँ।'

मुखमें पूरी वायु भरकर, कपोल फुलाकर, वायु बाहर निकालते यह कहता था—'भुआ।' अब भी वैसे ही यह मुझे 'भुआ' कहता है; किंतु अब

कहता है नटखटपनसे और कहकर स्वयं खिलखिलाता है। छोटा था तो पूरी गम्भीरतासे कहता था।

स्वामीको दिखलाकर भाभीने इसे बतलाया था—'ये तेरे फूफा हैं।'

इसे बहुत अटपटा लगा होगा। यह उन्हें देखकर हँसा और कपोल फुलाकर 'फू' बोला था। इसे स्वयं इसमें इतना आनन्द आया कि स्वामीको बार-बार 'फू' कहता और हँसता था। उनका नाम ही इसने 'फू' रख लिया और अब भी 'फूफा' नहीं कहता। अब तो मैं, भाभी–सब इससे यही कहते हैं—"तेरे 'फू' आये हैं।"

विचित्र है यह श्यामसुन्दर। मेरे स्वामीको 'फू' कहता है और सुनन्दाके स्वामीको बड़ा-सा मुख खोलकर 'फा' कहता है। भाभीने इसे कहा भी—'ऐसा नहीं कहते। ये फूफा हैं।' तो सिर हिला देता है नटखटपनसे और एकको 'फू', दूसरेको 'फा' कहता है।

मैं और सुनन्दा और हम दोनोंके स्वामी तो इसके अपने हैं; किंतु दूर-दूरके व्रजके ग्रामोंके गोप ही नहीं, विप्र, सेवकतक बार-बार यहाँ भैयाके अतिथि होने आते रहते हैं इस कृष्णको देखनेके लिए ही। इसकी झाँकी पानेके लोभमें पता नहीं, किस-किसको भैयाका आतिथ्य खींचता रहता है और यह कृष्ण तो लगता है कि किसीका अपरिचित नहीं है। इसे भी कोई अपरिचित नहीं लगता। कोई आवें, चटपट उससे घुल-मिल जाता है।

'भुआ! तू चली कहाँ जाती है?' इसने अभी उस दिन मेरे आते ही पूछा।

'अपने घर।' दूसरा क्या कहती मैं।

'अपने घर?' यह ऐसे बोला, जैसे समझ ही नहीं सका कि यह घर मेरा क्यों नहीं है।

'यह घर मेरे भैयाका है।' मैंने कहा।

'मेरा है।' कृष्ण बड़ी दृढ़तासे बोला।

'हाँ, तुम्हारा तो है; किंतु तुम मुझे यहाँ क्या बराबर रहने दोगे ?' मैंने हँसीमें ही कह दिया—'तुम रहने भी दो तो तुम्हारी बहू आवेगी तो मुझे निकाल देगी।'

'मारूँगा उसे।' यह तो दौड़ गया अपना लकुट उठाने। जैसे अभी ही उस बहूको मारना है, जो मुझे निकालनेवाली है।

'लाल, पहले बहू तो आने दे।' मैंने इसे अङ्कमें समेटा।

'यह बहू लानेको तो बहुत उतावला है।' भाभी हँस रही थीं।

अब यह तनिक बड़ा हो गया है। कुछ संकुचित, लज्जित होना सीख गया है। नन्हा था तो बहू लानेको मेरा हाथ पकड़कर झूल गया था—'तुम ले आओ।'

'मैं ले आऊँ तो तुम्हारी मैया उसे अपनी पुत्रवधू बना लेगी ?' मैंने तब कहा था।

'मैया कैसे अस्वीकार करेगी, जब इसकी भुआ, भुआके भैया और यह स्वीकार कर लेंगे।' भाभीने भावभरे स्वरमें कहा था।

'मेरा लाल तनिक बड़ा हो जाय।' मेरा स्वर भर आया। 'इसके लिए कन्या देने तो बड़े चक्रवर्ती और देवतातक आवेंगे और इसकी बुआके पैर पकड़ेंगे।'

पैर तो मेरे पता नहीं कबसे कितने-कितने लोग पकड़ रहे हैं; किंतु मेरे भोले भैया कहते हैं—'मैं वृषभानुजीको वचन दे चुका हूँ। वह सम्बन्ध करलें तो नीलमणि तो तुम्हारा है। चाहे जितनी बहुएँ ले आना !'

विधातासे यही माँग मेरी रह गयी–इस अपने श्यामका विवाह देख लूँ।

—०ॐ०—

सुनन्दा बुआ–

विनय कोई सीखना चाहे तो व्रजेश्वरी भाभीसे सीख ले। पहले ही ये नम्रताकी मूर्ति थीं और जबसे नीलमणि इनकी गोदमें आया है, ये जैसे सदा-सबके सम्मुख झुकी ही रहती हैं। मैं इनसे कितनी तो छोटी हूँ और मेरे भी पैर-हाथमें अञ्चल लेकर छूने लगती हैं। सो भी जब मैं जाऊँ या जाने लगूँ तभी नहीं, प्रतिदिन प्रातः-सायंसे संतोष करलें तो भी बहुत, अन्यथा दिनमें कई-कई बार। मना करूँ तो कहती हैं—'तुम नीलमणिकी बुआ हो न।'

इस नीलमणिको लेकर भी समस्या है। वैसे मेरी समस्या तो प्रारम्भसे है। न चाहूँ तो भी स्वामीका नाम अनेक बार लिया जाता है; किंतु नन्दिनी जीजीकी समस्या इस श्यामने उपस्थित कर दी है। जीजाजीका नाम नील और इस नन्हेको नीलसुन्दर या नीलमणि कहे बिना जीजी रह नहीं पातीं।

मैंने उन्हें टोका तो बोलीं—'तू बेकामकी बात क्यों करती है। कभी कामकी बात भी किया कर। अब कामकाजी बन। काम-धाम कर।' कहकर जी भरकर हँसती रहीं। उनका नाम ही ऐसा है कि बहुत सँभालो तब भी मुखसे निकलता है।

नीलमणिने हम दोनोंके स्वामियोंकी उपाधि बाँट दी है। वह नील जीजाजीको 'फू' कहता है। जैसे यह उनकी उपाधि है। अब इस नटखटकी देखा-देखी सब बालक तो कहते ही हैं—बड़े भी कहने लगे हैं।

'तेरे 'फा' नहीं आये।' कल छोटे नन्दन भैयाने पूछा था। मैंने उनसे कहा—'भैया, तुम भी नन्हे कन्हाईकी नकल करने लगे?'

लेकिन अतुला भाभीको चिढ़ानेको मैंने कह दिया 'भाभी, नन्दनन्दन वनसे कब लौटेगा?'

'तुझे उससे कोई काम है ? अपने कामकी तो चिन्ता करती नहीं ।' मुझे खीझ आ गयी। उनका नाम भी कितना अटपटा है।■ अब नीलमणिने उन्हें 'फा' की उपाधि और दे दी। सो भी पूरा मुख फैलाकर ऐसे ढंगसे 'फा' करता है कि हँसे बिना रहा नहीं जाता।

व्रजेश्वर भैयाको उलाहना दिया था मैंने—'भैया, तुमने तो हम-दोनों बहिनोंको गैया बना दिया है।'

"तुम-दोनों चली गयीं अपने-अपने घर तो मुझे बहुत सूना-सूना लगने लगा। मैं प्यारसे ही दो बछड़ियोंको 'नन्दिनी' 'सुनन्दा' कहने लगा।" भैयाने खिन्न होकर पूछा—'सुनन्दा, गौ तो पूज्य होती हैं। तुझे उनके नाम-साम्यसे अपमान लगता है?"

भैया भी कितने भोले हैं। उन्होंने आदरसे, प्रेमसे ही अपने दो वृषभोंका नाम हम-दोनोंके स्वामियोंके नामपर रखा है। नील जीजाजी कहते थे—'तेरे भैया तो वृषभोंके बहाने हम-दोनोंकी पूजा कर लिया करते हैं।'

मैंने भैयासे कहा—'अपमान काहेको लगेगा। गोपकन्या गायके नाममें गौरव नहीं मानेगी तो गोपघर क्यों जन्मी; किंतु यह नटखट नीलमणि पूछ रहा था........।'

'क्या पूछ रहा था?' मैं संकोचसे चुप हो गयी, पर भैयाने आग्रह किया।

'क्या बतला दूँ ?' मैं हँस गयी।

'बतला तो सही।' भैया भी हठ करने लगे।

कहता था—'भुआ, तुम कितना दूध देती हो 'फा' को ? मेरी सुनन्दा तो इतना सारा दूध देती है।' दोनों हाथ फैलाकर दिखाने लगा।

■ नन्दिनीजीके पतिका नाम 'नील' और सुनन्दाजीके पतिका नाम 'काम' है।

'आने दो, उसे तनिक डाँटना पड़ेगा।' भैया गम्भीर होने लगे—'बड़ोंका भी विचार नहीं करता।'

'भैया, मेरी शपथ, उसे कुछ कहना नहीं।' मेरे नेत्र भर आये—'उसे कुछ कहोगे तो फिर मुझसे इस घर नहीं आया जायगा।'

वह इतना सुकुमार, इतना स्नेहमय! वह तो प्यार-ही-प्यार पानेके लिए है। भैया मान गये; किंतु उन्होंने भाभीको सम्भवत: बतला दिया था। भाभीने साथं नीलमणिसे पूछा—'क्यों रे, तू बुआसे क्या पूछ रहा था? तेरी नन्दिनी, सुनन्दा, कामदा तृण चरती हैं तो बुआसे भी पूछेगा कि ये कितना तृण चरती हैं?'

'मैया, तेरी सौं, मैंने बुआको तृण चरनेको नहीं कहा।' नीलमणि कातर दृष्टिसे मेरी ओर देखने लगा था। मैंने उसे अङ्कमें छिपाया और भाभीके मुखपर हाथ रख दिया।

'भाभी, तुम चाहती हो कि मैं अभी, इसी समय तुम्हारे घरसे चली जाऊँ?' मेरे स्वरमें अवश्य रोष आ गया होगा। श्यामके कातर लोचन देखकर मुझे पता नहीं कितनी पीड़ा हुई थी।

'घर मेरा तुम कहती हो?' भाभीने तो मेरे पैर ही पकड़ लिये। तुमको मुझे इस घरसे निकाल देनेका अधिकार तो है ही।

'मैया! तू मुझे दूध पिलाती तो है।' मेरे ही अङ्कमें सटा नटखट नीलमणि बोल पड़ा—'मैंने तो भुआसे पूछा था कि ये 'फा' को कितना सारा दूध देती हैं?'

'चल! तेरे 'फा' क्या तेरे-जैसे बच्चे हैं।' भाभी हँसने लगीं और मैंने इसके कपोलोंपर हल्की चपत रखनेको हाथ उठाया; किंतु बहुत धीरे-से स्पर्श करके रह गयी।

श्याम नवनीतसे अधिक ही सुकुमार है। इसके कपोल धीरे-से स्पर्श करते भी भय लगता है कि इसे पीड़ा न हो। गोपकन्याके हाथ कितने भी कोमल हों, इसके कपोलपर धरनेयोग्य नहीं होते। मेरे बहुत मृदुल स्पर्शसे भी वे कपोल लाल हो उठे हैं, ऐसा मुझे लगता है।

'तेरी भुआके पास दूध तो बहुत है; किंतु तेरे 'फा' से इनकी लड़ाई हो गयी है। ये उन्हें दूध नहीं देतीं।' भाभी भी नटखटपनसे बोलने लगीं।

'भाभी !' मैं लगभग चीख पड़ी—'यह तुम्हारा लाल यदि नटखट है तो क्या आश्चर्य ?'

'लड़ाई ?' नीलमणिने मेरे मुखकी ओर बड़े ध्यानसे देखा। फिर अपना घुँघराली अलक-मण्डित-मस्तक हिलाकर बोला—"भुआ लड़ाई नहीं करती। 'फा' अपनी मैयाका दूध पीते हैं ?"

—कहकर मेरी ओर ऐसे देखने लगा, जैसे मुझसे अपनी बातका समर्थन कराना चाहता हो।

'तेरे 'फा' कल आवेंगे, उनसे ही पूछ लेना।' भाभी हँस रही थीं। मुझे भी हँसी आ रही थी।

यह नन्हा कलतक अपनी बातका भला स्मरण रखेगा; किंतु मैं तो उनसे कह ही सकती हूँ—"हमारा नीलमणि कहता है कि 'फा' अपनी मैयाका दूध पीते हैं।" वे भी भली प्रकार हँसेंगे।

'भुआ !' हम-सब अपनी हँसीमें लगे और इसने मेरे अञ्चलमें सिर छिपा लिया। इसको लगा होगा कि भुआके पास बहुत दूध है, यहाँ कोई पीता नहीं तो यही क्यों उसका सदुपयोग न करे।

'यह ऐसे ही सबके अञ्चलमें सिर डाल लेता है।' भाभी बोलीं—'सबके आशीर्वादसे ही आया है। सबका तो है ही।'

'सबका हो या न हो, मेरा है।' कृष्ण जब स्तन-पान करने लगे, इसे रोका कैसे जा सकता है। लगता है कि पूरा शरीर पिघलकर दूध बन जाय इस समय तो धन्य हो जाय। मैंने भरे कण्ठसे कहा—'भाभी ! कुछ और मानना या मत मानना; किंतु इसकी धाय मुझे मानते रहना।'

भाभीने मेरे मुखपर हाथ रखा। मेरे पैरोंपर अञ्चल हाथमें लेकर सिर रखा। बहुत गद्गद् स्वरमें बोलीं—'यह तुम मत कहो। नीलमणि तुम्हारे आशीर्वादसे आया है। तुम्हारा ही है। इसकी धाय तो मैं हूँ।'

सब है, लेकिन यह चपल बहुत है। मुझे इसने सँभलने भी नहीं दिया और अञ्चलमें-से सिर निकालकर भाग खड़ा हुआ। पता नहीं, क्या स्मरण आया होगा इसे।

'दिनभर वनमें भटककर थका आया है।' भाभी और मैंने भी पुकारा; किंतु इसने तो मुख फेरकर देखातक नहीं। केवल हाथ पीछे करके हिला गया—संकेत कर गया, जैसे कि अभी आता है; किन्तु भाभी ठीक कहती हैं—'कुछ स्मरण आया होगा तो भाग गया है। लेकिन इसे वह बात और लौटना भी दो क्षणमें भूल जायगा। कोई सखा मिला और यह उसके साथ खेलनेमें लग जायगा।'

'मैं पकड़ लाती हूँ इसे।' भाभी तो इस चपलके पीछे दौड़ी नहीं जा सकतीं; किंतु मैं तो जा सकती हूँ। मुझे किसी गोष्ठ या घरमें जानेमें हिचक क्या है? अब मुझे इसे ढूँढ़ने तो जाना ही चाहिये।

'बहुत भटकना पड़ेगा तुम्हें।' भाभीने कहा—'इसका क्या ठिकाना कि कहाँ जायगा और वहाँ भी कबतक टिका रहेगा। तुम थको मत। मैं महरको भेजती हूँ।'

'मैं अब इतनी सुकुमारी हो गयी हूँ कि नन्हे नीलमणि जितना भी दौड़ या चल नहीं सकती?' मैंने भाभीको उपालम्भ दिया।

'वह तो भाग गया।' भाभीने कहा—'तुम्हें भटकना पड़ेगा।'

'भैयाको भी तो भटकना ही पड़ेगा।' मैंने भाभीको समझा दिया और द्वारकी ओर मुड़ी; किंतु मुझे द्वारसे बाहर नहीं जाना पड़ा। नीलमणि जैसे दौड़ा गया था, वैसे ही दौड़ता आ रहा था।

'भुआ!' समीप आकर खड़े होते ही इसने मेरे हाथोंमें एक मयूर-शावक पकड़ा दिया—'इसे पालो!'

अच्छा, तो इसे स्मरण आया था कि आज वनसे लौटकर इसने अपनी भुआको कोई भेंट नहीं दी है। वही लेने यह दौड़ा गया था।

'इसे कहाँसे पकड़ लाया ? इसकी मैया इसे ढूँढ़ेगी।' मैंने मयूर-शावक सँभाल लिया। अब सायंकाल इस पक्षीको कहीं छोड़ा नहीं जा सकता।

'इसे वरूथप लाया था। मैं उससे ले आया।' नीलमणि ! बिना हिचके कह गया—'कल इसकी मैयाको भी ला दूँगा। वह भी इसके साथ तुम्हारे पास रहेगी।'

यह इतना नन्हा है; किंतु जैसे किसी समस्याको सुलझानेमें इसे दो क्षण भी सोचना नहीं पड़ता। व्रजमें कोई पशु-पक्षी नहीं, जो इसके बुलानेपर इसके पास न आ जाय। अतः यह कल मयूरीको ला सकता है, इसमें संदेह तो कोई नहीं करेगा।

मेरा यह लाल–इसे सबको देनेकी धुन है। मुझे प्रतिदिन वनसे लौटकर कुछ-न-कुछ देता है, यदि मैं यहाँ होऊँ।'

मौसी यशस्विनी–

मैं तो जीजीसे बहुत छोटी हूँ। श्रीव्रजेश्वर जीजाजी मुझे बच्ची ही मानते हैं अपनी। जीजी चाहती ही नहीं कि मैं उनका सामीप्य छोड़कर पिताके घर या पतिगृह जाऊँ और अब मेरा मन भी कहीं जानेको नहीं करता। इस नीलमणिको देखे बिना रहा नहीं जाता।

बड़ी विवशता है। नारी कहाँ स्वाधीन है कहीं जाने या रहनेको। लेकिन जीजीतो स्वामीको भी कहती हैं—'मल्ल ! तुम यहीं क्यों नहीं रहते ? नीलमणि अपनी मौसीसे हिला-मिला रहता है। तुम रहो तो यह भी बनी रहेगी।'

मैंने तो नीलमणिको पाकर जाना कि पुत्र क्या होता है। इस नन्हेको गोद उठाया पलनेसे और लगा कि बालिका यशस्विनी सहसा माँ हो गयी है। यह भी मेरी ओर देख-देखकर ही किलकता था। मुख समीप पा जाय तो कपोल, नासिका, नेत्र, केश—जो हाथमें आ सके, पकड़ना चाहता था।

'माँ !' बोलना प्रारम्भ करते ही इसने मुझे कहा और केवल कहा होता तो कोई बात थी, अञ्चलमें मुख डाल लया इसने। मुझे कैसा लगा, कहनेको शब्द नहीं हैं। तब मैं थी ही कितनी बड़ी। लेकिन इसने मेरी नन्ही छातीमें मुख लगाया और पता नहीं, कहाँसे-कैसे उनमें दूध आ गया। संतान होनेकी आयुसे बहुत पूर्व बालिकाकी भी नन्ही छातियोंमें दूध आ सकता है, यह नीलमणि ही कर सकता है।

'यश, तुझे मैं स्मरण नहीं आती तो अपना यह नीलमणि तो स्मरण आना चाहिये।' मैं महीनेभर भी घर रहकर आऊँ तो जीजी उलाहना देने लगती हैं। क्या कहूँ जीजीको। गोप-कन्याका विवाह माँकी गोदमें क्यों हो जाता है ? जीजाजीने क्यों मेरा विवाह करा दिया। न कराया होता विवाह तो मुझे यह कभी-कभी कुछ दिनको भी क्यों जाना पड़ता स्वामीके समीप।

'माँ, तू कहाँ चली गयी थी ?' नीलमणि अब आते ही पूछने लगता है—'क्यों चली गयी थी ? मुझसे रूठ गयी थी ?'

'लाल, तुझसे मैं कहीं रूठ सकती हूँ।' यह तो सोचनेकी बात भी नहीं। मेरे नेत्र भर आते हैं और यह अपने कोमल नन्हे करोंसे नेत्र पोंछते कहता है—'रो मत ! मैयाने तुझे मारा है ?'

'मैं इसे क्यों मारूँगी ? तेरे मौसाजी इसे ले गये थे।' जीजीने कहा—'उन्होंने डाँटा या मारा हो तो पता नहीं।'

'क्यों ले गये थे माँको ?' अब इस नन्हेको कोई कैसे समझावे। यह तो नन्ही मुट्ठी बाँधकर कहता है—'माँको मारा है ? मैं मारूँगा उनको।'

'वे मल्ल हैं।' जीजी हँसती हैं। मेरा हृदय उमड़ा आता है। अपनोंका सदा सहायक, रक्षक यह मेरा लाल।

'मल्ल ?' नीलमणि जैसे सोचने लगता है—'मल्ल क्या होता है ? मल्लू तो मेरे साथ था वनमें ! माँ, तुझे मल्लू ले गया था ?'

'मल्लू नहीं।' मैं हँसती हूँ और जीजी कहती हैं—"मल्लू तो बंदर है। मौसाजीको ऐसा नहीं कहते। उनका नाम 'मल्ल' है और वे तेरे नन्दन चाचा-जैसे मल्ल हैं।"

'हूँ-वे भी उठते-बैठते हैं ?' नीलमणि अपने नन्दन चाचाकी नकल करता बैठक, दंड करने लगा।

'माँ, तुझे वे अखाड़ेमें लड़ने ले गये थे ?' मैं तो इसकी बात सुनकर लज्जासे भाग छिपती; किंतु यह हाथ पकड़े खड़ा है। जीजी और पासकी गोपियाँ हँस रही हैं।

'उन्होंने इससे ब्याह किया है। यह उनकी बहू है तो वे इसे अपने घर नहीं ले जायँगे ? तेरा ब्याह होगा तो तू बहू घर लावेगा या नहीं ?'

'माँ, बहू है ?' अब यह मेरी ओर ऐसे देखने लगा है, जैसे पता लगा रहा हो कि मैं किधरसे बहू हूँ।

'उहूँ, बहू नहीं।' दो क्षणमें निर्णय कर दिया इसने और अपना सिर हिलाया—'माँ !'

"मैं तेरी माँ तो हूँ।" मैंने इससे कहा—'लेकिन तू क्या माँकी बात मानेगा ?'

'क्या ?' नीलमणिने चटपट हाँ न कहकर पूछा तो मुझे अच्छा लगा। यह चतुर तो है। बोला—'मैं मल्ल नहीं बनूँगा। उठक-बैठक मुझसे नहीं होगी।'

'तुझे यह करनेको मैं नहीं कहती। यह कहनेको तेरे छोटे चाचा और मौसा ही बहुत हैं।' मैंने बहुत अनुरोधपूर्वक कहा—'तू वनमें गायें चराने मत जाया कर। गायें तेरी तेरे मौसा चरा लेंगे। मैं उनको बुला आयी हूं।'

'यश, तो तू इस बार यह सलाह करके घरसे आयी है ?' जीजी मेरा मुख देखने लगीं।

'यह नन्हा दिनभर वनमें थकता रहे, यह अच्छा लगता है जीजी ?' मैं सचमुच स्वामीसे सलाह करके ही आयी थी। उन्होंने तो उल्लसित होकर कहा था—'तुम यह करा दो तो मैं समझूँगा कि तुमने मेरा उद्धार कर दिया। श्यामके समीप तो रहनेको मिलेगा। मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिये।'

'गायें वनमें उनके ले जानेसे जायँगी ही नहीं।' नीलमणिने मेरी बात सीधे अस्वीकार नहीं की; किंतु ताली बजाकर हँसने, मटकने लगा—'माँ हार जायगी।'

सचमुच मैं हार गयी। स्वामी तो दो घड़ी पीछे ही आ गये थे। उन्होंने जीजाजीसे प्रस्ताव किया तो वे भी हँसे और बोले—'अच्छा है, तुम भी प्रयत्न कर लो। मैं, संनन्द, नन्दन और दूसरे गोप भी तुम्हारी सहायता करेंगे प्रातःकाल। गायें वनमें सब मिलकर ले जा सकें तो बालक यहीं खेलें-कूदें।'

जीजाजीने रात्रिमें ही पूरे व्रजमें कहला दिया। गोप तो प्रसन्न हो गये; किंतु बालक बड़े सवेरे नन्द भवनमें एकत्र हो गये। वे सब नीलमणिके साथ मिलकर पता नहीं क्या सलाह करने लगे। तनिक देरमें सब ताली बजाते, हँसते-कूदते दीख पड़े।

गोपोंने अपनी गायें गोष्ठोंसे खोलीं। वे सब दौड़ती-भागती आ गयीं नन्द-सदनके सम्मुख। जीजाजीने मना कर दिया कि कोई बालक भवनसे बाहर न निकले। सब भवनके भीतर रहें और गायोंके वनमें चले जानेपर ही बाहर निकलें। नीलमणि हँसता रहा; किंतु इसने कोई उत्पात नहीं किया।

झुंड-की-झुंड गोपियाँ आ गयीं। सब प्रसन्न थीं। सब मेरी प्रशंसा कर रही थीं कि मैंने श्यामका वन जाना रोककर बड़ा उत्तम कार्य किया। यहाँ तो वह किसीकी सुनता ही नहीं था।

मैं भी सबकी प्रशंसासे फूली थी; किंतु मेरा गर्व घड़ीभर भी नहीं टिका। लाख-लाख गायोंका ठट्ट एकत्र हो गया। वे सब हुँकार करती थीं और नन्द-भवनमें भीतर आ जाना चाहती थीं। भवनसे बाहर निकलना उन्होंने असम्भव कर दिया था।

गोप और मेरे स्वामी, जीजाजी स्वयं और उनके सब भाई लाठी उठाये गायोंको हाँकनेके प्रयत्नमें थे। सब इधर-से-उधर दौड़ रहे थे। ठेल-ठालकर किसी प्रकार कुछ गायोंको दो-चार सौ पद ले भी जाते थे तो वे भाग आती थीं। गोप उनके पीछे दौड़ते-दौड़ते पसीने-पसीने हो गये।

गायोंको लाठीसे पीटा तो नहीं जा सकता था। वे देवता हैं। उनका सम्मान करते हैं गोप। गायें सब बार-बार हुँकार करती थीं। सहसा उनका समूह उग्र होने लगा। अनेक गोपोंको उन्होंने ठेलकर गिरा दिया।

अचानक जीजाजीका बड़ा वृषभ 'धर्म' बड़े उच्च स्वरसे गर्जना करने लगा। वह गायोंके झुंडसे आगे बढ़ा और नन्दद्वारपर आ खड़ा हुआ। द्वार बंद करके हम-सब पहले ही गवाक्षोंसे बाहर देखने लगी थीं। धर्मके साथ बहुत-से-वृषभ आ गये और उन्होंने द्वारपर टक्कर मारी।

'नीलमणि !' जीजी चिल्लायीं—'इन वृषभोंको सँभाल !'

द्वार टूट ही जाता यदि वृषभोंने दो-चार टक्कर मारी होती। गोपियोंमें अनेकों चीखने लगी थीं। गोप हक्के-बक्के खड़े थे। इतने वृषभों और गायोंका उग्र विरोध सँभालना सम्भव नहीं था।

सहसा नीलमणिने द्वार खोला और धर्मके कंधेपर हाथ रख दिया। धर्म और दूसरे वृषभ भी उसे सूँघने लगे। एक साथ सब बालक ताली बजाते भवनसे निकल पड़े अपने नन्हे लकुट लिये। श्यामने और बालकोंने हाँका तो वृषभ, गायें ऐसे चल पड़े, जैसे उनका समूह भेड़ोंका झुंड हो।

गोप देखते रह गये। बालक नीलमणिको मध्यमें करके ताली बजाते, नाचते-गाते जा रहे थे। गायें और वृषभ स्वयं आगे-आगे जा रहे थे। केवल वे बीच-बीचमें मुड़कर देख लेते थे। हुंकार कर लेते थे और बालकोंमें दो-चार लकुट उठाकर उन्हें आगे चलनेका संकेत कर देते थे।

स्वामीने साथ जानेका प्रयत्न किया। वे अपना लकुट लेकर गये भी आगे; किंतु एक गायने ही उन्हें दौड़ा लिया। वह तो नीलमणिने नाम लेकर गायको पुकारकर शान्त किया और जीजाजीने इन्हें रोक लिया।

'बालक किसी बड़े गोपका साथ जाना स्वीकार नहीं करते।' जीजाजीने स्वामीसे कहा था। 'उनको अपनी स्वच्छन्द क्रीड़ामें संकोच होता है।'

'हमारे पशु नीलमणिकी इच्छा समझते हैं।' जीजाजीके सबसे छोटे भाई नन्दनजी भी अखाड़ेके व्यसनी हैं। मेरे स्वामीसे उनकी अच्छी पटती है। उन्होंने इनसे कहा था—'नीलमणिकी इच्छाके विपरीत हम-सब कुछ करना भी चाहें तो हमारे पशु ही उग्र हो जाते हैं। व्रजयुवराजसे गायोंका स्नेह है, यह तो हम-सबके गर्व और सौभाग्यकी बात है।'

'नीलसुन्दर सच्चा गोपराज है।' स्वामीने पीछे मुझसे कहा था—'गायों-वृषभोंका इतना स्नेह किसी गोपको मिले, इससे बड़ा सौभाग्य हम गोपोंके लिए दूसरा नहीं है।

सब कहते हैं कि यह नीलमणि बहुत नटखट है; किंतु मुझे तो यह अभीसे शीलसिंधु लगता है। इतना सब हो गया, लेकिन इसने मुझसे या किसीसे नहीं कहा—'मौसाजी या गोप और गायें चरायेंगे?' मैं हार गयी, यह बात इसके मुखसे भूलसे भी कभी नहीं निकली। दूसरे दिन यह सहज़ भावसे सखाओंके साथ गो-चारणको चला गया। पहले दिन जैसे कुछ हुआ ही न हो।

'इसके प्राण गायोंमें बसते हैं।' जीजीने मुझसे कहा था—'गायोंके साथ ही यह प्रसन्न रहता है। गायें भी इसे देख-देखकर हुलसती रहती हैं। गो-दोहनके समय यह गोष्ठमें रहता है तो गायोंके स्तनोंकी धार बद ही नहीं होनेको आती।'

'यह तो घुटनों सरकने लगा था तब भी अग्रज और भद्रको लेकर गोष्ठमें रेंग जाता था। वहाँ गोबर-गोमूत्रमें सब खेलते थे। ये बालक किसी गौके पास जाते थे वह बैठ जाती थी पैर फैलाकर और ये सब उसके स्तनोंमें मुख लगाकर दूध पीते रहते थे।' जीजी उस दिन नीलमणिकी अनेक गोष्ठ-क्रीड़ा सुनाती रहीं।

'बड़े भाग्यसे यह हम गोपोंके मध्य आया है।' मेरे लिये भी इसके वनमें चले जानेपर इसकी चर्चा करने और सुननेसे अधिक प्रिय तो और कुछ है नहीं। जीजी बार-बार न कहें तो मुझे तो स्नान-भोजनकी भी सुधि नहीं रहती।

जीजाजी स्वामीको आ-जानेपर जाने ही नहीं देना चाहते। मुझे तो स्वामीके साथ बड़ी कठिनाईसे विदा किया जाता है। हम-दोनोंमें भी यहाँसे जानेका उत्साह तो है नहीं, पर विवश होकर जाना तो पड़ता है। जाना पड़ेगा—नीलमणिके समीपसे जाना पड़ेगा, यह कल्पना अत्यन्त दुःखद है।

अरे, मैं क्या सोचने लगी थी। वंशीध्वनि आ रही है। नीलमणि वनसे लौट रहा है। मुझे उसके स्नान, व्यालूकी प्रस्तुति करनी है झटपट।

वृद्धा गोपी–

विधाता यशोदाके लालको मेरी भी आयु देदे। युग-युग जिये यह नीलमणि ! मैं इसे यशोदाका लाल कहती तो हूँ, किंतु मेरे हृदयसे पूछो तो यह मेरा-अपना लाल है। भले मैं नन्दकी भी ताई होती हूँ, किंतु जिस दिन यशोदाने इसे मेरे पैरोंपर ही धर दिया, मेरी सूखी छातियाँ भी दूध टपकाने लगी थीं।

यशोदा तो सदा-से भोली है। वह व्रजेश्वरी भी है, यह किसीको कभी लगा नहीं होगा। मेरी अपनी बहुएँ भी मेरा इतना आदर नहीं करतीं, जितना यशोदा करती है और जबसे नीलमणि उसके अङ्कमें आया, विधाताने जैसे अपने पासकी सारी विनम्रता उसीको दे दी है।

यशोदा ऐसी न होती तो नीलमणि-जैसा बालक उसकी गोदमें आता। यह नीलमणि, जिसकी समता विधाता स्वयं भी नहीं कर सकता।

इस नीलमणिकी तो एक-एक दिनकी चेष्टा लगता है, आजकी ही हैं। यह बैठने लगा था किसी प्रकार। सरक भी नहीं सकता था। मैं समीप गयी तो इसने अपने दोनों नन्हे हाथ उठा दिये गोदमें आनेको।

मैं एक क्षणको तो झिझक गयी। अब भी वह झिझक गयी नहीं है। मेरी सूखी हड्डियोंवाले ये कर और कुसुम-दलसे भी सुकुमार यशोदाका लाल ! मैं उसे उठाऊँ, स्पर्श करूँ, उसके अङ्गोंमें पीड़ा नहीं होगी ?

लेकिन नीलमणि सम्मुख नन्हे कर उठाये गोदमें आनेको उमगता हो—अपनी सुध-बुध रह जाती है। मैंने उसे गोदमें उठाया धीरे-से और मुखके पास ले आयी तो वह अपने बड़े-बड़े नेत्रोंसे मेरे मुखको ध्यानसे देखने लगा। पता नहीं, पहचानना चाहता था या और कुछ देख रहा था। फिर अपने छोटे लाल-लाल हाथ बढ़ाकर दोनों करोंसे मेरी नासिका पकड़ी उसने।

मैं स्वयं नहीं जानती कि कब मैंने—उसे गोदमें लिटाया और कब उसके नन्हे मुखमें स्तनाग्र दे दिया; किंतु वह तो उन्हें चूसने लगा था और उनसे दूध तो देखते ही अब भी टपकने लगता है।

व्रजकी सब वृद्धाएँ कहती हैं—'नीलमणिने हमको फिर पुत्रवती बना दिया। सूखी छातियाँ फिर पयोधर बन गयीं हैं।

घुटनों सरकने लगा तब तो देखते ही हँसता-किलकता आता था और स्वयं गोदमें भी बैठता था। खड़े रहो तो आकर पैरका अँगूठा या वस्त्र खींचता था 'गूँगा' करता कि बैठो और गोदमें आने दो।

गोदमें आकर एक वार मुखकी ओर देखता, नन्हे कर कपोलपर रखता और फिर आँचलमें मुख डाल लेता। यह तो अब भी चाहे जब दौड़ता आता है और गोदमें बैठकर आँचलमें सिर छिपा लेता है।

'माँ!' नीलमणिके लिए सब 'माँ' हैं। वह सबको ही 'माँ' कहता है। सबके आँचलका दूध उसका स्वत्व है।

'दादी हैं ये।' यशोदाने धीरे-धीरे उसे सिखलाया। अब मुझे 'दादी माँ' कहता तो है, किंतु लगता है कि वह दादी तो मेरा नाम समझता है और माँ उसके मनसे मैं उसकी हूँ।

मैंने यशोदाको झिड़का था—'लालको सबकी गोदीमें नहीं जाने देते। तेरे आँचलमें क्या कम दूध है कि इसे चाहे जिसे दूध पिलाने देती है।'

कह तो मैंने दिया, इसलिये कह दिया कि यह छः दिनका था, तभी वह राक्षसी आ गयी थी। इसे दूध पिलाते-पिलाते ही चीखती-चिल्लाती ले भागी थी। वह तो भगवान् नारायणने हम-सब ब्रजवासियोंपर कृपाकी, वह मार्गमें ही मरकर गिर पड़ी। नहीं तो पता नहीं, नीलमणिको कहाँ ले जाती।

■ व्रजमें तो सभी हैं, जो कन्हाईके अपने हैं और कन्हाई जिनका अपना है। ऐसे असंख्य लोगोंका वर्णन सम्भव नहीं। अतः कुछ वर्गोंमें-से एक-एकका ही वर्णन है। सम्पूर्ण वृद्धाओंकी भावनाएँ प्रायः समान ही हैं।

'यह तो आप-सबके ही आशीर्वादसे आया है।' यशोदा अत्यन्त विनम्र बोलने लगी ।

मुझे भी लगा, मैं जो कह गयी, वह ठीक नहीं है। मुझे ही नीलमणि गोदमें लेनेको न मिले, मुझे कोई कह दे—'इस सुकुमारके मुखमें अपनी सूखी छातियाँ तो मत दिया करो !' कैसा लगेगा मुझे ? कितनी पीड़ा होगी ? ऐसा सुख, इतना बड़ा सौभाग्य भी किसीका छीना जा सकता है ?

'किसी अनजानको इसके पास मत आने दिया करो ।' मैंने यशोदाको समझाया, पर जानती हूँ कि यशोदा किसीको अनजान, अपरिचित मानती ही नहीं। इस यशोदाके लालके लिए तो कोई अपरिचित है ही नहीं। व्रजके बाहरके लोग आते ही रहते हैं। सब इसे ही तो देखने आते हैं। इसने तो जब बहुत ही छोटा था, तब भी किसीके गोदमें लेनेको हाथ बढ़ानेपर मुख नहीं घुमाया ।

अब भी यह हो ही कितना बड़ा गया है। दौड़ने-कूदने लगा है और हठ करके वनमें जाने लगा है; किंतु है तो नन्हा शिशु ही। अब वनसे कोई सरस फल लाता है तो सीधे मुखमें देता है। गोदमें आ बैठता है और अपने हाथसे ही मुखमें डालता है।

इसको कब क्या धुन चढ़ेगी, कोई नहीं बता सकती। अभी उस दिन वनसे ढेरों रंग-विरंगे पुष्प अपने पटुकेमें इकट्ठे कर लाया। गायोंको गोष्ठमें हाँककर मेरे घर आ गया और बोला—'दादी माँ, तू बैठ !'

मैं समझी कि गोदमें आवेगा और कुछ मुखमें देगा; किंतु यह तो मेरे केशोंमें पुष्प सजाने लगा। बहुएँ हँस रही थीं। मैं इसे बार-बार रोक रही थी। अब मेरी आयु पुष्प लगाकर केश-शृंगार करनेकी रही है। मैंने इसे रोकनेका प्रयत्न किया। इसे कर पकड़कर सामने बैठाना चाहा—'आ, मैं तेरी अलकोंमें-से पुष्प सजा दूँ। देख तो सही, मुझे केश-सज्जा कितनी आती है।'

लेकिन यह हठी कम नहीं है। अड़ा रहा—'तू बैठी रह। तेरे श्वेत केशोंमें ये पुष्प बहुत अच्छे लग रहे हैं।'

कुशल ही हुई कि बहुओंमें-से कोई बोली नहीं। उन्हें भय था और ठीक भय था कि मैं बहुत रुष्ट होती। नीलमणिको भी स्वयं नहीं सूझी कि हाथ पकड़कर मुझसे वैसी ही अपनी मैयाके पास चलनेकी हठ करे। हठ करता तो इसकी हठ टाल नहीं सकती थी। इसे न डाँटा जा सकता और न इसका खिन्न मुख मैं देख सकती।

यह थोड़े क्षण मेरे सामने ही कूदता, ताली बजाता कहता रहा–'दादी माँ, बहुत अच्छी लगती है।'

'यह वनसे सीधा आ गया है।' मैंने बहुओंको डाँटा—'तुम इसका तमाशा देख रही हो। यह थका होगा, भूखा होगा, यह भी किसीको स्मरण नहीं।'

लेकिन मेरा कहना काम नहीं आया। यह तो झट भागा—'मैया खीझेगी !' कहकर। मैं पुकारती ही रह गयो।

दूसरे दिन यशोदासे मैंने उसके लालका यह विनोद सुनाया तो वह, दूसरी भी जो वहाँ थीं, मुख घुमाकर धीरे-से हँसकर रह गयीं। एकने कहा–'पौत्रने दादीका कैसा श्रृंगार किया है, यह देखनेका अवसर मिलता तो बहुत प्रसन्नता होती।'

'चल !' मैंने उसे झिड़का। 'मुझे स्वयं बड़ा अटपटा लग रहा था। मैं उस प्रकार घरकी देहरीसे बाहर पैर रखती !'

'दादी माँ ! तेरा ब्याह हो गया ?' अब यह चपल एक दिन यह भी पूछ बैठा। बहुओंने मुखमें अञ्चल दे लिया।

'अब तू अपनी दादी माँका ब्याह रचायेगा ?' एक मेरी आयुकी बैठी थी, उसने हँसकर पूछ लिया।

'हाँ, तुम्हारा भी।' नीलमणि बड़े उत्साहसे बोला।

'मेरा व्याह तो बहुत पहले हो गया है।' यह कुछ और न कहे, इसलिये मैंने जल्दीसे कह दिया—'अब इससे इसकी बात तुम पूछ लो।'

'किससे हो गया है ?' नीलमणिने मेरी पूरी बात सुनी ही नहीं। यह चपल अपनी ही धुनमें रहता है। किसीकी पूरी बात कदाचित् ही सुनता है।

'तेरे दादाजीसे।' मैंने कहा तो यह मेरी ओर देखकर सिर हिलाकर संतुष्ट हो गया।

यह बहुत ममतालु है। मुझे बहुत बुरा लगता है, जब बहुएँ और उन्हींकी आयुकी दूसरी कहती हैं—'माँजी, यह नन्दनन्दन बहुत ऊधमी है। यह हमको बहुत तंग करता है।'

'अपना सौभाग्य मनाओ कि वह इस घरको अपना मानकर कभी सखाओंके साथ दही-माखन खाने आ गया।' मैंने बहुओंको डाँट दिया—'बालकोंने थोड़े भाण्ड फोड़ ही दिये तो हो क्या गया ? तुम यशोदाके पास उलाहना देने दौड़ी गयीं, मैं मर गयी थी ? मेरे बेटे कंगाल हो गये थे ? कितने भाण्ड गलेमें बाँधोगी ?'

उस दिन मुझे सचमुच क्रोध आ गया था। मैं दो दिन बहुओंसे बोली नहीं। मेरे नीलमणिको पराये घरकी आयी ये लड़कियाँ कुछ कहें, यह मैं नहीं सह सकती।

पता नहीं, इन बहुओंको और इनकी सखी-सहेलियोंको हो क्या गया है ? नीलमणि अब दिन भर वनमें रहता है। बड़े सवेरे सखाओंके साथ गायें हाँक देता है। दिन छिपे लौटता है। इन बहुओंके अपने बालक भी थके-हारे लौटते हैं। रातमें बिना पूरा ब्यालू किये सब सो जाते हैं। लेकिन ये हैं कि अब भी नीलमणिके छेड़ने, उपद्रव करनेकी बातें गढ़-गढ़कर बनाती रहती हैं। भला, उसे समय कब मिलता है अब कि वह किसी दूसरेके घरकी ओर झाँके भी।

'तुम-सब, पता नहीं, अपनेको किस इन्द्रलोककी अप्सरा समझने लगी हो।' एक दिन मैंने अनेकोंको कसकर फटकार दिया—'मेरा नीलमणि तनिक बड़ा हो जाय तो राजकन्याएँ ही नहीं, सब देवलोकोंकी कन्याएँ उसके गलेमें वरमाला डालनेको खड़ी दीखेंगी। तुम्हें उसके अन्तःपुरमें मार्जनी पकड़ने भी कोई नहीं देगा।'

मैं तो बक-झककर चली आयी थी। बड़ी बहूने डरते-डरते बतलाया कि सब रोपड़ी थीं। सब मेरे नीलसुन्दरको बहुत स्नेह करती हैं। इनका उलाहना भी इनके स्नेहका ही झगड़ा है। मैं समझती हूँ यह सब ! ये बहुएँ मुझे प्रिय भी बहुत हैं; किंतु करूँ क्या ? नीलमणिको कोई कुछ कहे तो मैं अपने आपेमें ही नहीं रह पाती।

मैंने कई बार अपने वृद्ध स्वामीसे कहा—'तुम्हारे पुत्र तुम्हारी बात नहीं टालते। तुम्हारी बात तो नन्द भी नहीं टालते। तुम इन सबोंको कहते क्यों नहीं कि सब एक साथ मथुरा जाकर कंसकी खोपड़ी फोड़ डालें। वह मेरे नीलमणिके पीछे पड़ा है। बार-बार अपने असुर भेजता है। तुम गोपोंमें कायरता क्यों आ गयी है ? मुझे तुम्हीं जाने नहीं दोगे। कंस मुझे मिल जाय तो मैं जलती लुआठीसे उसका मुँह झुलसा दूँ।'

'तू नहीं जानती कि कंस कितना बलवान् है। उसके पास कितनी सेना है।' मुझे समझाने ही लगे—'अपने बल और कृष्ण अभी छोटे हैं। ये बड़े हो जायँ, तबतक अपनेको इन्हें बचा रखना है। बड़े होकर तो ये ही कंसका कचूमर निकाल देंगे। अभी अपना दाऊ दुर्बल है।'

मैं इतनी बड़ी बातें समझ नहीं पाती हूँ। हम गोपियोंने तो मथुरा देखी नहीं है। लेकिन कंसको मैं कभी क्षमा नहीं कर सकती।

पता नहीं, कंस सचमुच जीता-जागता मनुष्य भी है या नहीं। नीलमणिको उसने देखा नहीं होगा। मेरे नीलमणिको देखकर भी कोई जीता-जागता मनुष्य इससे शत्रुता कर सकता है ? यह नीलमणि तो सबका स्नेह, आशीर्वाद पानेके लिए है। मेरे जन्म-जन्मके सब पुण्योंसे यह सुखी-प्रसन्न रहे।
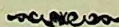
पाटला नानी–

ईश्वर भी कभी-कभी बहुत देर कर देता है किसीकी प्रार्थना सुननेमें। मेरी सबसे लाड़ली लाली यशोदा, उसकी गोद सूनी पड़ी थी। मैं प्रार्थना करके व्रत-अनुष्ठान करके लगभग निराश हो गयी थी। मेरा जामाता नन्द इतना भोला कि उसो कुछ कहते तो और न कहो तो सब समान। वह दूसरोंको सँभालनेमें ही लगा रहता है। दूसरोंके दुःखसे ही दुबला हुआ जाता है। मुझे कहता है—'मैया, तेरा बेटा मैं तो हूँ ही।'

अरे तू तो मेरा बेटा बना-बनाया है, किंतु—लेकिन नहीं, ईश्वरने देरसे सही, मेरी प्रार्थना सुनली और देर भी ठीक ही लगी। श्याम-जैसा धेवता देनेमें ईश्वरको भी बहुत समय लगना था। उसे भी बहुत जोग जुटाने पड़े होंगे।

मैंने जिस दिन देखा नीलमणिको, वह बहुत ही नन्हा था। मुझे लगा, मेरे बार-बार कहने-डाँटनेपर भी यशोदा जैसे मेरे यहाँ बचपनमें चिड़ियाके समान तनिक-सा कुछ मुखमें डालती थी, जैसे चुग्गा लेती हो, उसका वह स्वभाव गया नहीं है। अब तो उसे फुसलाकर, डाँटकर कोई खिलानेवाली भी नहीं उसके समीप। उसने अपना शरीर उपवास कर-करके दुबला कर डाला है। नीलमणि इसीसे तो इतना नन्हा और छुइ-मुई-जैसा हुआ और आजतक भी उसका सुकुमार शरीर सँभल नहीं पाता है।

अमरसुहाग मिले बेटी रोहिणी रानीको। उसीने यशोदाको सँभाल रखा है। वही नन्हे नीलमणिको सँभालती है। उसका बल राजराजेश्वर बने। नन्हा नीलमणि जन्मसे जान गया है कि बल उसका अग्रज है, आदरणीय है।

मैं नीलमणिके योग्य आस्तरण आजतक नहीं सोच सकी। यशोदाकी गोदमें नन्हा नीलमणि—जैसे छोटी-सी स्वर्गकी कोई सुकुमार बूँद उतर आयी हो। बल यशोदाके सामने बैठा था पालथी मारे और अपने अनुजपर

झुका था। नन्हा-सा बल और वह भी अपने कमल-कोमल हाथ उठा-उठाकर हिचक जाता था। मैं ठिठकी खड़ी रह गयी। एक अँगुलीसे बहुत धीरे-से बलने नीलमणिका स्पर्श किया और झुककर इसका मुख देखने लगा कि कहीं इसे पीड़ा तो नहीं हुई।

यशोदा नीलमणिको लिये हड़बड़ाकर उठने लगी। मैंने ही उसे सचेत किया—'शिशुको सँभाल !'

मेरी गोदमें नीलमणिको यशोदाने दिया। मैंने कैसे लिया, मेरे पास शब्द नहीं है। तीनों लोकोंका राज्य भी मेरी बेटी मुझे दे देती तो भी बहुत छोटा पड़ता नीलमणिके सम्मुख। मेरे पास नीलमणिपर निछावर करनेयोग्य कुछ नहीं है। हमारा सर्वस्व ही उसीका है।

'तू इसे इस प्रकार भूमिपर छोड़ देती है।' मैंने अपनी बेटीको डाँटा था, जब मैंने आते ही एक बार देखा कि बल और नीलमणि, दोनों आँगनमें पेटके बल पड़े हैं और एक-दूसरेको देख रहे हैं। मैंने कहा—'यशोदा ! मैं तेरे पूरे प्राङ्गणके लिए बहुत कोमल आस्तरण भेज दूँगी। इस नन्हेको भूमिपर तो मत छोड़ा कर। तू नहीं देखती कि यह कितना सुकुमार है।'

'पीछे आप ही उलाहना देंगी कि गोपकुमारका शरीर धूलि, मिट्टीमें खेले विना पुष्ट कैसे होगा।' बेटी रोहिणी रानीने पद-वन्दना करके हँसते-हँसते कहा था।

रोहिणी रानीका शील ही है कि मुझे 'माँ' कहती हैं। मेरी पद-वन्दना करती हैं, किंतु वे रानी हैं। मुझे लगता कि उन्हें बहुत संकोच नहीं होगा तो मैं तो उन्हें 'रानी माँ' कहती। क्या हुआ कि वे मेरी यशोदासे आयुमें बहुत छोटी हैं। यशोदा उन्हें ठीक ही जीजी कहती है।

'रानी बेटी, लेकिन अभी यह बहुत छोटा है।' मैंने दोनोंको अङ्कमें उठा लिया था। अञ्चलसे उनके अङ्गोंकी धूलि पोंछने लगी थी। बड़े पुण्य होते हैं, तब ऐसे धेवतेके अङ्ग अञ्चलसे पोंछनेको मिलते हैं।

'माँ, यह अभीसे बहुत नटखट है।' यशोदाने कहा था—'आप इसे उतार दो, नहीं तो आपके वस्त्र गीले कर देगा।'

'गीले तो करने दे।' मुझे ललक हो आयी कि यह सचमुच मेरे वस्त्र गीले कर दे तो मैं वह वस्त्र सँजोकर अपने पास रख छोड़ूँगी। उसे कभी धोऊँगी नहीं।

दोनोंको मेरे श्वेत केश बहुत भाये थे। दोनों बार-बार मेरे केशोंमें ही अपनी अँगुलियाँ उलझाते थे। केशोंको ही देख-देखकर, किलकते थे। यशोदा उनके कर हटाती मेरे केशोंसे, यह भी मुझे अच्छा नहीं लगता था।

अब तो मेरे पास बहुत-से वस्त्र हैं, जिनमें नीलमणिके अङ्गका लगा गोबर, कीच या गोमूत्र सूख गया है। ये मेरी महामूल्य निधियाँ हैं।

मुझे तो अब भी नहीं लगता कि नीलमणि पृथ्वीपर बैठनेयोग्य हो गया है। मैं पूरे वनपथको तो मृदुल आस्तरणोंसे आच्छादित नहीं करा सकती। नन्दग्रामके सब प्राङ्गणों, पथोंको भी नहीं करा सकती। हम गोप हैं, गायें हमारी देवता हैं। गोमूत्र, गोबर गोपव्रजमें सर्वत्र फैला दीखे, यही उसकी शोभा है। नीलमणिको गोचरणको जाना ही था, यह सब समझती तो हूँ, किंतु मन मानता नहीं है। नीलमणि क्या धूलि, गोबर या तृणोंपर पद रखनेयोग्य है। कितने सुकुमार, मृदुल हैं इसके पद।

यह बोलने ही लगा था, तब दोनों नन्ही भुजाएँ फैलाकर मेरी गोदमें आ गया था। यशोदाने इसे बतलाया था 'नानी' और इसने बिना तुतलाये मेरे मुखकी ओर देखते 'नानी' कहा था मुझे। फिर तो मेरे कपोलपर, नासिकापर, मुखपर कर रख-रखकर जाने कितनी बार नानी कहता गया था।

इसके मुखसे 'नानी' सुनकर जैसे मेरे जन्म-जन्मके प्यासे कानोंकी तृप्ति हो गयी थी। इससे अधिक मधुर कोई शब्द भी सम्भव है, यह मैं नहीं समझती।

घुटनों सरकने लगा था तबसे मुझे देखते ही मेरी ओर वेगसे सरकता था। यशोदा झपटकर इसे उठाकर इसके अङ्ग अपने आँचलसे पोंछकर इसे मेरे अङ्कमें देती थी, किंतु मैंने अन्तमें उसे डाँट ही दिया—'तू इसके अङ्गमें लगी धूलि, कीचको पोंछ लेनेका सौभाग्य भी मुझे नहीं देना चाहती।'

'दोनों बच्चे कहाँ हैं ?' एकबार मैं आयी तो मुझे दोनों ही भवनमें नहीं दीखे। मेरी आँखें तो इन्हींको देखनेको तरसती रहती हैं।

'अब दो ही नहीं रहे।' रानी बेटीने वन्दना करके कहा--'अब आपके इतने धेवते हो गये हैं कि आप उन्हें कभी गिन नहीं सकेंगी। अब सब पैरों चलने लगे हैं। गोष्ठमें ही होंगे।'

'नानी ! नानी !! नानी !!!' मेरे गोष्ठमें प्रवेश करते ही बालकोंका कोलाहल गूँजा। यशोदाने कहा भी था कि मैं बैठूँ। वह बालकोंको ले आती है, किंतु इतना धैर्य मुझमें नहीं था। मैंने ही कह दिया—'तेरा गोष्ठ मेरा अनदेखा, अपरिचित नहीं है।'

जबसे नन्दकी माता परलोक पधारी थीं, मैं अपनी बेटीका घर देखने चाहे जब आ जाया करती थी। यशोदाको सँभालना कभी नहीं आया। यह तो देना-लुटाना ही जानती है और नन्द भी ऐसा ही है। मुझे ही देखना था कि इनके यहाँ कोई वस्तु कभी न हो तो भेज दिया करूँ। ये दोनों संकोची हैं कि मुख खोलकर मुझसे भी नहीं कहेंगे।

'अब तुम इनके अङ्ग पोंछनेका सौभाग्य जी-भरकर लो !' यशोदाने हँसकर कहा। रानी बेटी मुख फेरकर मुस्करायीं।

मैं भूल ही गयी कि नीलमणिको गोदमें उठा लूँ। सब तो मेरे नीलमणि ही हैं। गोदमें भला इतने बालकोंको कैसे उठाती। वहीं गोष्ठकी गोमयमयी भूमिमें बैठ गयी। सब मेरे ऊपर लद गये। गोदमें, पीठपर, कंधोंके सहारे। सब ओरसे सब एक साथ लिपट गये।

सब गोबर-गोमूत्रसे सने थे। पैर ही नहीं, कर, अलकें, कपोल सबमें बालकोंने रंग-बिरंगा गोबर लगा रखा था। अब उनके लिपटनेसे मैं भी उन-जैसी हो गयी। बालकोंके करों तथा शरीरमें लगा गोबर मेरे पूरे शरीरमें लग गया।

'अरे, सब नानीको छोड़ो भी। सब इन्हें भवनमें चलने दो ! तुम सब भी स्नान करो और नानीको भी स्नान करने दो !' यशोदा और रोहिणी—दोनों बालकोंको सँभालने लगीं।

बालक छोड़ भी देते, किंतु नानी ही कहाँ उन्हें छोड़ सकती थी। किसी प्रकार मैं उठी और सबको साथ लेकर भवनमें आयी। मैंने आज अपनी ही पुत्रीसे याचिकाके समान कहा—'यशोदा, आज मुझे नीलमणिको स्नान करा लेने दे।'

'माँ, तुम स्नान नहीं करोगी ? इन सबोंने तुम्हारा क्या हाल किया है, तनिक अपने वस्त्रों और शरीरको भी तो देखो !' यशोदाने सरल भावसे कहा।

'मैं रह सकती तो अब सदा ऐसी ही रहती; किंतु दूसरे वस्त्र लायी हूँ। नीलमणिको स्नान कराके मैं स्नान कर लूँगी। तू दूसरे बालकोंको सँभाल। सबके लिए वस्त्र मेरे साथ आये छकड़ोंमें हैं। उन्हें भीतर मँगाले। वहीं मेरे वस्त्र भी होंगे।' मैंने एक साथ बेटीको ढेरों निर्देश दे दिये और नीलमणिको उठाकर स्नान कराने पहुँच गयी जलके समीप।

मैं बेटीके घर रात्रि व्यतीत नहीं करती; किंतु इन बालकोंके कारण यहाँ वस्त्र तो बदलना आवश्यक हो जाता है। अतः अपने दो बार बदलने-योग्य वस्त्र भी साथ लाया करती हूँ।

'तुम सब झटपट स्नान कर लो तो नानी तुम्हें मिष्ठान्न देगी, खिलौने देगी।' रानी बेटीने बालकोंको समझा लिया था और उन्हें दासियोंके साथ स्नान कराने लगी।

'आपके पहले लाये वस्त्राभरण ही सब अभी इनके शरीरपर नहीं पहुँच सके हैं।' रानी बेटी और यशोदाका भी स्वभाव सदा मुझे टोकनेका हो गया है। दोनों ही नहीं, इनकी सब देवरानियाँ-जेठानियाँ भी मुझे टोकती हैं—'माँ, इतने छकड़े भरकर क्यों हर बार लाती हो। आपके दिये ही से तो घर भरे हैं।'

मैं आऊँ तो अपनी बेटियों, दामादों और धेवतोंके लिए दो-चार जोड़ी वस्त्र, थोड़े आभूषण, कुछ मिष्ठान्न भी न लाऊँ ? अब इन लड़कियोंकी बात कोई सुनले।

मैंने उस दिन नीलमणिको स्नान कराया। इसके पूरे अङ्ग स्पर्श करने, धोनेका अवसर मिला मुझे। यह थोड़ा चपल तो है। मुझे बार-बार इसे पकड़कर रोकना पड़ता था। यह कभी कहीं और कभी कहीं भाग जाना चाहता था। दूसरा कुछ नहीं तो जलमें कर डालकर छपछपाता या मेरे मुखपर, भुजापर लगे गोबरको ही धोने-छुड़ानेका यत्न करता।

मुझे बहुत विलम्ब होता, यदि रानी बेटी सहायता करने न आ जाती। वह नीलमणिको वस्त्राभरण पहनानेमें भी सहायता करती रही। पता नहीं, मुझे क्या हो गया। कभी नहीं हुआ था, पर उस दिन मेरे कर काँपने लगे थे। नीलमणिको अञ्जन और तिलक मैं लगा ही नहीं सकती थी।

अब भी नीलमणि बड़ा कहाँ हुआ है। यह गोचारणको जाने लगा, यह बालहठ इसकी। है तो वैसा ही दुर्बल और सुकुमार। यशोदा कहती है—'माँ, अब तुम यहीं रहा करो! अपने चञ्चल धेवतेको सँभालो। मेरे खिलाये तो यह बस मुख जूठा करके उठ भागता है। तुम इसे खिलाया करो!'

मैं ऐसा कर पाती तो कितना सुखी होती। नीलमणिके नाना भी मेरी ही बात कहते हैं। बेटीके घर हम दोनों बस तो नहीं सकते। नन्द-यशोदाको अपने यहाँ बसा लेना भी सम्भव नहीं रहा। नन्द व्रजराज है। पूरे व्रजको छोड़कर उसे चलनेको कहा कैसे जा सकता है।

अब मैं आती हूँ तो प्रायः सायंकाल आती हूँ। भले रात देरसे लौटनेको मिले; किंतु नीलमणि गोचारणको गया हो तो दिनमें आकर मेरा मन छटपटाता ही तो रहेगा। यशोदासे कहती हूँ कि बालकको लेकर वह चार-छः दिनको पिताके घर आ जाय; किंतु यह भी नहीं हो पाता। वह रानी बेटीको, व्रजको छोड़कर निकल नहीं सकती। वह कहती भी ठीक है—'नीलमणिका मन अपने सखाओंके बिना नहीं लगेगा।'

नीलमणिसे मैंने पूछा—'ननिहाल चलेगा।'

'हाँ, चलूँगा।' वह ना करना ही नहीं जानता; किंतु बोला—'माँ चलेगी, मैया चलेगी। मैं अपने सखाओंको बुला लूँ। गायें भी चलेंगी। धर्म (वृषभ) भी चलेगा।' वह तो बन्दरों-मयूरोंको भी ले चलना चाहता है।

मैया कीर्तिदा-

अहो भाग्य मेरे कि व्रजराजने गोकुलसे आकर बरसानेके समीप बसनेका निर्णय किया। अन्यथा हम नारियोंके लिए गोकुल समीप तो नहीं था। स्वामीको वह कभी दूर नहीं लगा; किंतु पुरुष हमारी समस्या कहाँ समझते हैं। उनसे कहो तो कह देंगे—'चाहे जब हो आया करो। यशोदा रानी तुम्हारी सखी ही तो हैं।'

यशोदा मेरी सखी तो हैं। बाल्यकालकी सखी हैं। जैसे नन्दरायजी स्वामीके बालसखा हैं। मेरा तो विवाह भी इनसे उन्होंने ही कराया है; किंतु अब मैं ऐसे ही उठकर तो चाहे जब नन्दभवन नहीं चली जा सकती। यशोदा ही भला कैसे बरसाने आ सकती हैं। लोकमर्यादा भी तो कुछ होती है।

'हमारी ललीने अब नन्दभवन भी अपना बना दिया है।' स्वामी हँसकर कहते हैं।

अपना तो बना दिया है उनके लिए बरसानेको। वे मन करते ही इस भवनमें बसने आ सकते हैं; किंतु मैं या तुम तो वहाँ नहीं रह सकते एक दिन भी।' मैंने स्वामीको सुना दिया।

'वे यहाँ आ जायँ तो वृषभानुका सौभाग्य।' स्वामी हँसे—'वह सदन अब ललीका अपना है।'

'वह दिन मेरे जीते आ जाता।' मेरे नेत्र भर आये—'महर्षि गर्गने सगाई तो करादी; किंतु लली इस घर जा पाती।'

'जायगी नहीं तो क्या यहीं रहेगी।' स्वामी हँसे—'और यहाँ रहे भी तो श्यामसुन्दर वहाँ नहीं टिकेगा। वह तो अब भी चाहे जब आ जाता है।'

उसका घर है, आ जाता है तो उचित ही करता है। वह अकेला आवे या अपनी मित्रमंडली लेकर आवे, मै तो प्रतिदिन उसके आगमनकी बाट देखती रहती हूँ। वह नहीं आता तभी तो लड़कियोंको दही बेचनेकी धुन चढ़ती है।

'चुप ! चुप !' स्वामीने धीरेसे कहा—'यह बात हमारे तुम्हारे कहनेकी नहीं है। वे दोनों एक दूसरे के लिए ही हैं। एक दूसरेको देखे बिना उनसे नहीं रहा जाता, यह तो हमारा सौभाग्य ! राधा जैसी कन्या संसारमें दुर्लभ है।'

'मैंने तो आज तुम्हारे सामने मुँह खोला। मेरी चले तो मैं ललीको स्वयं ले जाया करूँ अथवा उसीको पकड़ लाया करूँ। लेकिन मैं बीचमें पड़ूँ तो बच्चोंको बहुत अधिक संकोच होगा। दोनोंका उत्साह ही मारा जायगा।'

लली और उसकी सखियाँ दही बेचने तो अब जाने लगी हैं। अब नन्दनन्दन गायें चराने वनमें जाने लगा है। जिस पहले दिन सुबल समाचार लाया था कि कलसे सब बालक बछड़े चरने जाया करेंगे, कितनी प्रसन्न थीं लड़कियाँ। राधा और उसकी सखियाँ दिनभर घुटघुटकर बातें करती रहीं। योजनाएँ बनाती रहीं और तब कही रात में ललिताने मुझसे बड़े संकोचसे दही बेचनेकी आज्ञा माँगी थी। मैंने कह दिया था हँसकर—'अकेली तुममें किसीको नहीं जाने दूँगी। सब साथ जाया करो। गोपकन्या दही-बेचना सीख सके तो अच्छा ही है।'

यह धुन तो उस दिन चढ़ी सो चढ़ गयी। उससे पहले सबको स्वयं यमुनाजल भरनेकी धुन थी। सबको नन्दीश्वरपुरका घाट ही सुगम लगता था। अपने ही भरे जलसे देवीकी पूजा करनी है, यह बालिकाओंकी बात कोई कैसे काटता।

दिनभर ये सब घरमें गुमसुम, खिन्नमुख बैठी रहें, इससे अच्छा है कि वनमें घूम आया करें।

मैंने उस नीलसुन्दरको पहले-पहले देखा—मुझे कहाँ उसे घुटनों सरकते या लद्‌बद् पैर चलते देखनेका सौभाग्य मिला। मैंने भले उसकी एक

झलक देखी हो गोकुलमें, पालनेमें; किन्तु कितने अल्पक्षणको। देखा तो पहले उस दिन जब श्रीनन्दराय अपना पूरा व्रज गोकुलसे लाकर नन्दीश्वर-पुरमें छकड़े खड़े करने लगे थे। उस दिन यशोदाका स्वागत करने जाना ही था मुझे।

'मैया!' गौर-श्याम दोनों साथ ही आये और मेरे पदोंमें सिर धर दिया।

'आज व्रजमें इसे एक और मैया मिली।' यशोदाने कहा था। तभी पता लगा था कि श्याम मैया केवल यशोदाको कहता है। दूसरी सब उसकी 'मां' हैं। लेकिन उसी दिनसे वह मुझे तो मैया ही कहता है।

'लाल!' मैं उसे क्या उठाती। वह तो स्वयं मेरी गोदमें बैठ गया और मैं उसका भोला-सलोना मुख देखती रह गयी। उसके केशोंमें लगा मयूरपिच्छ, उसका जो शृंगार यशोदाने किया था; मेरे मुखसे सहसा निकल गया—'यह तो सजा-सजाया दूल्हा है।'

'तुमको स्वीकार तो है?' यशोदाने हँसकर कहा।

'सखि, अब तुम बड़ी हो गयी हो।' मैंने हाथ जोड़े। लाल गोदमें न बैठा होता तो मैं यशोदा के पैरपर उस दिन मस्तक धर देती–'हम तो माँगने वाले हैं, स्वीकार करनेका स्वत्व तो तुम्हारा है और तुम आज हमारे यहाँ समाजके साथ पधार कर एक दिनके आतिथ्यका हमें सौभाग्य देना स्वीकार नहीं कर रही हो।'

'तुम बड़ी बनो या छोटी, तुम्हारी लली मुझे लेनी है।' यशोदा कम चतुरा नहीं हैं। कह भी गयीं सब और हमारी आतिथ्यकी प्रार्थना भी टाल गयीं—'हमें तो सदा तुमसे लेना ही है; किंतु महरको तनिक अपना आवास स्थिर कर लेने दो। देखती ही हो कि यह अपनी दूसरी मैयाको पहचान गया है।'

'लली!' मैंने पुकारा। वह साथ आकर भी नहीं आयी, यह तब मैं जान सकी। जन्मसे अत्यन्त लज्जाशीला है राधा। मेरा तो जी कसमसाकर

रह गया। उस क्षण होती तो मैं उसी समय उसे श्यामसुन्दरके साथ बैठा लेती और यशोदासे कहती--'तुम आज ही इन दोनोंको लो।'

कितना सुन्दर अवसर था। नन्दराय आये थे उसी दिन और हम उन्हें उपहार दे रहे थे। मैं यशोदाको उपहार बनाकर अपनी लली उसी क्षण दे देती। विधि-विधान, उत्सव पीछे होता रहता। वह सजा दूल्हा श्याम मेरे अंकमें बैठा था और मैं उसे एकाको यशोदाको लौटाकर आयी। उस दिन मुझे ललीका शील प्रिय लगकर भी अखर गया। लेकिन नन्हीं, भोली लली मेरे मनको समझती भी कैसे।

मुझे भय लगता है कि यशोदाके लालको मेरी नजर न लग जाय। मैंने जब भी वह यहाँ आया, उस पर राई-लवण उतारा है। वह तो नित्य दूल्हा है। मेरा श्रीदाम कहता है—'कृष्ण तो नटवर है।'

ठीक कहता है श्रीदाम ! श्यामसुन्दर वर तो है, बनाबनाया वर और ऐसा झूमते-घूमते चलता है कि उसकी चालमें भी नृत्य है। गोपोंके तो बूढ़े भी नाचते हैं; किंतु यशोदाके लाड़ले जैसा नृत्य कोई कहाँसे लावे। वह सायंकाल गौओंको आगे करके वंशी बजाता, गाता और सखाओंके मध्य नृत्य करता प्रायः हमारे सदनकी ओरसे ही निकलता है।

लड़कियोंको कोई क्या कहेगा। बहुएँ भी सबकी सब उसकी वंशी ध्वनि सुनते ही गवाक्षोंपर जा बैठती हैं। जा तो मैं बैठती हूँ वृद्धाओंके साथ, दूसरी तो अभी बच्चियाँ हैं। कोई आवश्यकता नहीं बहाना बनानेकी। वैसे मेरे सुबल-श्रीदाम भी उसके साथ ही लौट रहे होते हैं; किंतु यह तो सबको पता है कि बालकोंमें उस शशिमुखकी एक झलक पानेकी ही उत्कण्ठा सबके प्राणोंमें है।

वह मोरपिच्छ लगाये, वनमाला पहने, अङ्गोंपर वन-धातुओंके चित्र सजाये, गोधूलि-धूसर लौटता है तो लगता है कि उसकी छटा प्रतिदिन मुझे उलाहना देती है—'मैया, मैं तो रोज-रोज दूल्हा बनकर तेरे द्वार पर आता हूँ। तू मेरा ब्याह कब करेगी ?'

क्या करूँ, मेरे स्वामी कहते हैं कि–'इन दोनोंका ब्याह ब्रह्मा बाबा करनेवाले हैं।' ब्रह्मा सृष्टि करनेमें लगकर जैसे यह काम भूल ही गये हैं। उन्हें पता नहीं कब स्मरण आवेगा और कब वे ब्याह करेंगे इनका।

भगवती पूर्णमासी कहती हैं—'कीर्ति, तू बहुत भोली है। तुझे इतना भी पता नहीं कि ब्रह्माजीको जो करना होता है, बालकके माताके उदरमें रहते ही कर देते हैं। तेरी लली तो जन्मसे सुहाग लेकर आयी है।'

ललीके केशोंमें सीधी मांग जन्मसे बनती है। मैंने अनेक प्रयत्न किये कि उसकी जन्मजात सिन्दूर भरी जैसी लाल मांगको केशोंमें छिपाऊँ; किंतु घुंघराले, अत्यन्त कोमल सुदीर्घ केश ही कुछ ऐसे हैं कि उसकी मांग छिपायी नहीं जा पाती।

ब्रह्माने भले उसे जन्मसे सुहागिनी बनाया; किंतु यह मयूरपिच्छका मौर लगाये यशोदाका लाड़ला सवेरे-सायं मेरे द्वारसे प्रतिदिन निकलता है, इस सदा सजे दूल्हेके करोंमें लालीका हाथ दे देते ब्रह्मा बाबा।

जी करता है कि वह इधरसे निकले तो उसे पुकार लूँ। कम-से-कम सायंकाल तो पुकार लूँ। दिनभर वनमें घूमता-खेलता रहता है। थका-थका लौटता है। वह चाहे जितना हँसता-कूदता है, मुझे तो उसका कमल मुख कुम्हलाया ही लगता है। वह नित्य प्रफुल्ल रहे, यह तो मैं परमात्मासे माँगती ही हूँ; किंतु सायं उसे बुलाकर उसका मुख अञ्चलसे पोंछ दूँ, उसे उबटन लगाकर स्नान करा दूँ। कुछ मधुर उसके मुखमें अपने करोंसे दे दूँ। पता नहीं मेरी कितने जन्मोंकी यह साध भूखी है। यह सौभाग्य तो यशोदाको ही प्राप्त है।

सायंकाल बालिकाएँ एक गवाक्षपर उसीकी प्रतीक्षा करती रहती हैं। बहुएँ एक साथ बैठी पथपर दृष्टि लगाये होती हैं। सब उसपर मुट्ठी लाजा, दूर्वा और नन्हें पुष्प फेंकती हैं। उसका ध्यान भी उधर ही रहेगा ही। वह भी किसी गवाक्षमें पुष्प फेंक देता है।

मैं सुधवुध भूली यह सब देखती रहती हूँ। सम्मुख रहता है वह तो मुझे अपनी ही सुध नहीं रहती। उसे पुकार लेनेका स्मरण तब होता है जब वह आगे निकल जाता है। बालकोंकी पीठ दीखने लगती है।

मैंने कई बार सेवक दौड़ाये; किंतु मेरे सुबल-श्रीदाम ही सीधे घर नहीं लौटते तो वह पीछे लौटेगा? भूखा होता होगा। मैयाके समीप

पहुँचनेकी शीघ्रता होगी। फिर गायें आगे आगे भागती जाती हैं। जिन गायोंके बच्चे छोटे हैं, वे शामको गोष्ठकी ओर भागने ही वाली हैं।

हमारी बरसानेकी गायें ही अद्‌भुत हैं। ये शामको लौटते भी अपने छोटे बछड़ोंका स्मरण करके गोष्ठोंकी ओर नहीं भागतीं। सुबलने बतलाया है कि नन्दि ग्रामकी सीमातक गायें जाती हैं। वहाँ जब श्यामसुन्दर रुककर बरसानेके सखाओंको अङ्कमाल देकर विदा करता है, तब गायोंको भी उसे पुचकारकर, सहलाकर ही विदा करना पड़ता है। गायें फिर भी हुँकार करती, बार-बार लौट-लौटकर उसीको देखती हैं।

'नन्द गाँवके सब सखा तो सब गायोंको लेकर पहले कन्हाईके गोष्ठ जाते हैं। वहाँसे उनके पिता अपनी-अपनी गायें हाँक ले जाते हैं।' सुबलने एक दिन पितासे कहा—'हम अपनी गायें उसके साथ उसके गोष्ठतक क्यों नहीं ले जा सकते?'

'उस गोष्ठ या गृहमें हमारी कोई वस्तु या प्राणी जाय तो वह नन्द-नन्दनका हो जाता है। हम उसे अपने यहाँ नहीं ला सकते।' स्वामीने समझाना चाहा।

'उसके घर तो हम दोनों जाते हैं।' श्रीदाम बड़ा होकर भी समझता नहीं। कहने लगा—'सुबल तो बहिनको भी वहाँ एक दिन ले गया था।'

'इसीलिये तो तुम तीनों अब नन्दरायके हो गये हो।' स्वामी बच्चोंसे भी ऐसी बात कह देते हैं। भला बालक इसे क्या समझें। लेकिन उन्हें कहना होता है तो बालक-वृद्ध कुछ नहीं देखते। कह गये—'थोड़े दिन रुको, मैं सब गायें नन्दनन्दनके गोष्ठमें पहुँचा देनेवाला हूँ। लली जायगी उनके घर तो गायें भी सब जायँगी। नन्दराय स्वीकार करेंगे तो यह भवन-पुर भी उनको दे देना है।'

'और मुझे तुम्हारे साथ वानप्रस्थी तपस्विनी बनकर वनमें चलना है?' मैंने ही पूछ लिया हँसकर।

'अपनी तुम जानो। लड़के नन्दनन्दनके साथ रहकर सुखी ही रहेंगे। उनकी गायें चरायेंगे।' स्वामीने भरे कंठ कहा—'नन्दलालके दर्शनका लाभ

छोड़कर मुझसे वनमें नहीं जाया जायगा। मैं नन्दगाँवकी सीमासे बाहर पर्णकुटी बना लूँगा।'

सचमुच ऐसा सौभाग्य मिल पाता। मैं प्रतिदिन दूरतक उस मार्गको स्वच्छ करती, जिससे वह यशोदाका लाल गायोंके साथ निकलनेवाला होता। लेकिन दोनों बालकोंको रोकना होगा। वे ये बातें कहीं कह देंगे तो श्यामसुन्दर बहुत दुःखी होगा। नन्दराय भी रुष्ट होंगे।
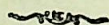
मौसी कीर्तिमती–

अतुलनीय है लली राधा। जीजीके अङ्कमें यह क्या आयी, लगता है कि बरसानेमें सब लोकोंका सब वैभव एक साथ आ गया। यह राधा सब ओरसे ही तुलनासे परे है। इसका सौन्दर्य, इसकी सुकुमारता और इसके जैसा शील किसी मनुष्य कन्यामें तो क्या होगा, देवियोंमें भी होना दुर्लभ ही है।

यह नन्हीं थी तबसे मैं इसको गोदमें लेकर अपनेको भूल जाती हूँ। पावसमें हरी दूर्वापर जब इन्द्र वधू प्रकट होती है, पलनेमें पड़ी किलकती हमारी लली उससे कहीं मृदुल, कहीं सुषमामयी और मुझे तो वह बहुत नन्हीं लगती थी।

अपने अत्यन्त उज्वल, कजरारे लोचनोंसे यह देखती रहती, जैसे सबको पहचानना चाहती हो। मैंने तभी जीजीसे कहा था—'यह किसी दिव्यलोकसे भटक आयी है और देखती रहती है कि यहाँ कहाँ आ गयी है।'

जीजीने झिड़क दिया—'तू मेरी ललीको नजर लगावेगी ?'

सबकी सब बुरी नजरें मुझे लग जायँ। ललीके सब ग्रह-अरिष्ट मेरे सिर आवें। हमारी लली हँसती, किलकती प्रसन्न रहे सदा।

स्मरण ही नहीं आता कि यह कभी रोयी भी या किसीकी गोदमें इसने वस्त्र गीले किये। यह तो बहुत नन्ही थी तबसे अत्यन्त ममतामयी और संकोचशील है।

इसके दोनों अग्रज इसपर शैशवसे जैसे प्राण देते हैं। उनमें भी सुबल तो जैसे इसकी दूसरी मूर्ति ही है। दोनों पास-पास बैठे हों तो मुझे और जीजीको भी भ्रम हो जाता है कि इनमें लली कौनसी है। अनेक बार आगता वृद्धाएँ जीजीसे पूछती हैं—'ये दोनों युग्मज हैं ?'

विचित्र बात है कि जीजीको भी यह स्मरण नहीं कि दोनों युग्मज ही हैं या नहीं ।

यह लली तो मेरे प्राणोंमें बस गयी है । कभी-कभी सोचकर बड़ा अटपटा लगता है कि मैं जीजीके यहाँ ही टिकी रहती हूँ । यहाँसे जाते जैसे हृदय फटता है और स्वामीके समीप दो-चार दिन रहकर फिर चली आती हूँ ।

एक ही संकोच कुछ रोकता है आने में । उसीसे दो-चार दिन हिचक भी लगती है । जब जाती हूँ, जीजी अपने बहुमूल्य उपहारोंसे लाद देती हैं । जीजाजी ऊपरसे कहते हैं—'इसे बहुत संकोच लगता है । तुम स्वयं देख लिया करो । यह तो ललीके अंजन-अंगरागसे अङ्कित वस्त्रोंमें ही चल देती है ।'

ललीके अंजन-अंगरागसे अङ्कित वस्त्र क्या किसीको ऐसे ही मिलते हैं । मैं तो यहाँ आते ही जीजीके ऐसे सब वस्त्र ढूँढ़ने, समेटनेमें लग जाती हूँ ।

'तू मेरे उतारे वस्त्र क्यों समेटती है ?' जीजीने एक ही बार कहा था—'नवीन वस्त्रोंका अभाव है इस सदनमें तेरे लिए ?'

'मैं तुमसे छोटी हूँ । मुझे तुम्हारा प्रसाद लेनेका अधिकार है । मुझे नहीं चाहिये नवीन वस्त्र ।' मैंने कुछ रूठकर ही कहा होगा—'इनके ही लोभसे तो तुम्हारे समीप आती हूँ । नवीन तो तुम्हारे दिये ही इतने कि कभी वहाँ भी अङ्गपर आनेका अवसर नहीं पाते; किंतु उनमें तुम्हारे और ललीके अङ्गकी सुरभि कहाँ है । मुझे यह नहीं देने तो मैं बरसाना भूलकर भी पैर नहीं रखूँगी ।'

'तू रूठ मत ।' जीजी इतनी भोली कि रोने ही लगी थीं—'तेरे मनमें आये सो कर; किंतु न आनेकी बात फिर कभी मत करना ।'

जीजीके हर बार यहाँसे विदा होते समयके ढेरों उपहार—बार-बार आनेमें बड़ा संकोच होता है इन उपहारोंके कारण; किंतु ललीका शशिमुख स्मरण आता है और संकोच टिक नहीं पाता ।

लली हमारी नन्हें मणिनूपुर पहिनकर जिस दिन रुनझुन करती दो-तीन पद चल सकी थी—ऐसा लगा मुझे कि जहाँ पद रखती है, वहाँकी धरा अरुण प्रकाशसे रंग उठती है। यह जैसे-जैसे बड़ी होती जाती है, इसके पदोंकी अरुणिमा, आभा, सुकुमारिता बढ़ती ही जाती है। साथ ही बढ़ती जाती है इसकी संकोचशीलता।

ऐसी भी बालिका होती है जो पिता और सगे भाइयोंसे तो दूर रहा, मुझसे तक संकोच करती है। यह ठीक चलना तो सीख नहीं सकी थी और इसे स्वीकार नहीं था कि मैं भी इसके वस्त्र-परिवर्तन कर दूँ।

भाइयोंको कुछ मिले–वे बहिनको देने दौड़ते हैं और यह नन्हीं उसकी बहिन है कि इसे कुछ नहीं चाहिये अपने लिए। जो इसके हाथमें आवे, सहेलियोंको, भाइयोंको, सेविकाओंको, मुझेतक देना चाहती है।

'जीजी, लली अपनी मैयाके समान ही बाँटने ही बाँटनेको उत्पन्न हुई है।' मैंने एक दिन कहा था—'इसे देते समय देख लेना कि किसी अल्प उदारके घर न चली जाय।'

'यह अपना भी तो भाग्य लेकर आयी होगी।' जीजी गम्भीर हो गयी। सचमुच ललीके योग्य वरकी बात सोचपाना सरल नहीं है।

यह भी सरल हो गया जिस दिन नन्दराय गोकुलसे आकर बरसानेके समीप बस गये। किसीके मनमें कोई दूसरी बात उठी ही नहीं। लली है ही यशोदाके लाड़लेके लिए।

मैंने जबसे उस नीलसुन्दरको देखा—मेरी विचित्र दशा हो गयी है। उस नन्हेंमें पता नहीं कहाँका कितना आकर्षण है। उसे कहीं भूलकर भी देखो तो आँखें वहीं रह जाती हैं। ठीक ही उसे लोग मोहन कहते हैं।

जीजी कह रही थीं हँसीमें—'यशोदा मेरी सखी तो है; किंतु मैं भी नहीं जानती थी कि वह जादू जानती है और अपना सब जादू उसने अपने लालमें रख दिया है।'

'लेकिन जीजी, वह काला है और अपनी लली तो प्रफुल्ल पद्म है।' मैंने हँसकर कहा।

'यशोदाको तू कुछ कहले।' जीजीने मेरे मुखपर हाथ ही धर दिया– 'लेकिन उसके लालको कुछ नहीं कहना। वह तुझे अपनीसे कम प्रिय लगता है? उसे अङ्कमें लेनेकी ललक नहीं उठती तेरे मनमें? उसे अपना बनानेको मेरा हृदय मचलता है और हमारे पास उसे पानेके लिए है भी क्या?'

'है क्यों नहीं।' मैंने प्रतिवाद किया—'हमारी ललीकी तीनों लोकोंमें कहीं तुलना है?'

'तू सदा बच्ची ही रहेगी।' जीजीने स्नेहसे कहा—'समझती क्यों नहीं कि लड़की कैसी भी हो, परायी है। उसे तो देना ही है। इसलिए उसे देना न कोई उपकार है, न मूल्य। अनुग्रह वह करता है जो कन्या स्वीकार करता है। यशोदा अब मुझसे बहुत-बहुत बड़ी हो गयी हैं अपने लालके कारण। उनका लाल—उसकी भी तीनों लोकोंमें तुलना नहीं है। यशोदा आँख उठाकर ऊपर देखें तो बड़े-बड़े देवता भी उतर आवेंगे उनके सम्मुख हाथ जोड़े कि वे उनकी कन्या अपने लालके लिए स्वीकार करलें।'

'जीजी, तुम तो व्यर्थ जी छोटा करती हो।' मैंने सत्य नहीं कहा था, यह कहनेका साहस किसीमें नहीं है। 'उन देवताओंमें भी किसीकी कन्या हमारी लालीकी दासी होने योग्य नहीं निकलेगी। तुम और जीजाजी चर्चा करनेमें संकोच करो तो मैं नन्दीश्वरपुर जा सकती हूँ। तुमको लगता है कि यशोदा अथवा नन्दराय तुमको ना कर देंगे?'

'उनकी ना नहीं है। उन्होंने तो अपने लालके जन्मदिन ही स्वामीको हाँ कर दिया है।' जीजीने भरे कंठ कहा—'उनकी उदारता भी लालके समान अतुलनीय है। लेकिन राधा छुईमुई जैसी है। इतनी संकोचशीला है। वह नीलमणि—उसपर प्राण न देती हो ऐसी बालिका तो मुझे अपने व्रजमें दीखती नहीं और राधाके सम्मुख उसका नाम लो तो भाग खड़ी होती है।'

'ठीक ही तो करती है।' मैंने जीजीको चिढ़ा दिया—'तुम भी तो

विवाहसे पहले जीजाजीकी चर्चा चलनेपर भाग खड़ी होती थीं और छिपकर सुना करती थीं।'

'नटखट कहींकी।' जीजीने मुझे चपत लगा दी।

यह सब तो हुआ; किंतु जीजीकी चिन्ता पता नहीं क्यों अब मेरे भीतर जमकर बैठ गयी है। मैं ललीको देखती हूँ तो देखती रह जाती हूँ। लड़कीका भूषण है लज्जा; किंतु यह तो जैसे लज्जा, शील, संकोचसे ही बनी है।

प्रातः सायं नीलसुन्दर सखाओंके साथ गायें लेकर इधरसे ही जाता है। मैं भी जीजीके साथ गवाक्षपर बैठकर उसे देखती हूँ। उसे देखकर तो कोई पलक भी नहीं गिरा सकती।

मैंने तो भवन द्वारसे बाहर जाकर मार्गमें भी उसका स्वागत करना चाहा। जीजीके मना करनेपर भी मार्गमें चली गयी। हो क्या गया? जीजाजी तनिक डाँट ही सकते थे; किंतु वे इतने सीधे हैं कि उन्हें मेरा मार्गपर जाना अनुचित ही नहीं लगा।

'मौसी प्रणाम!' वह मयूरमुकुटी हँसता दोनों हाथ जोड़कर सामने ही आ खड़ा हुआ और उसने जिस अदासे सिर झुकाया, मैं तो ठगी देखती रह गयी।

श्रीदाम या सुबलने बता दिया होगा उसे कि मैं उनकी मौसी हूँ। वे दोनों भी तो उसके साथ ही थे।

हाय, कुछ नहीं करते बना मुझसे। जीजी ठीक ही कहती हैं कि अब भी मुझमें बहुत बचपना है। वह पहले पहले तो मुझे मिला था। मैं ही दौड़ी गयी थी उससे मिलने मार्गमें और खाली हाथ चली गयी थी। उसने प्रणाम किया और मैं देखती रह गयी। उसके मुखमें वहीं कुछ मधुर दे पाती!

'श्रीदाम! अपने सखाको भवनमें नहीं ले चलोगे?' मैंने बहुत आग्रह भरे स्वरमें कहा होगा।

'मौसी, गायें आगे चली गयी हैं।' उसने बहुत शालीनतासे कहा—'श्रीदामकी गायें भी आगे जा चुकीं। मैं तो तुम्हारा ही हूँ। जब बुलाओगी, आ जाऊँगा।'

उसका वह मधुर स्वर, वह हास्य और वह शालीनता। मुझसे तो बुलाते भी नहीं बना। मैं खड़ी रह गयी और फिर मस्तक झुकाकर वह सखाओंके साथ आगे बढ़ गया। मैं खड़ी उसे जाते देखती रही। कबतक खड़ी रही, पता ही नहीं चला।

'मौसी, तुम यहीं खड़ी रहोगी?' ललिताने आकर मेरा हाथ न हिला दिया होता, पता नहीं कबतक वहीं खड़ी रहती। उसने कहा—'तुमको मैया बुलाती है।'

'तुमसे उन्होंने क्या कहा?' यह ललिता नन्हीं बच्ची तो है; किंतु मुझसे भी चतुराई करना चाहती है। जीजीने नहीं बुलाया होगा, यह मैं समझ गयी। इसीके पेटमें पानी नहीं पचता होगा।

'किसने मुझसे क्या कहा?' मैंने भी इसको चिढ़ानेको ही पूछा।

'अब मुझे नहीं बतलाना है तो मत बतलाओ।' ललिता रूठी नहीं, खुलकर हँस पड़ी—'तुम्हारी ललीको जाने बिना चैन नहीं है और तुमसे तो वे पूछनेसे रहीं।'

तो इसे ललीने भेजा है। मेरा हृदय भर आया। लली हमारी इतनी संकोचमयी कि मुझसे भी कुछ पूछे-कहेगी नहीं। लेकिन उसका चित्त समझनेको इतना बहुत पर्याप्त है।

ललिता जाने लगी थी। मैं उसे बतलानेवाली थी; किंतु तभी गाय और उनके पीछे आते श्रीदाम-सुबल दीख गये। ललिता खिल उठी—'मौसी, तुम रहने दो। हम सुबल भैयासे सब पूछ लेंगी।'

जीजोने उस दिन बतलाया कि सायंकाल लौटते ही सब लड़कियाँ सुबलको घेर लेती हैं। वह भी उन्हें अपने सखाकी दिनभरकी पूरी क्रीड़ा विस्तारसे प्रसन्न होकर सुनाया करता है।

यह सुबल देखनेमें अब भी अपनी बहिन जैसा ही लगता है। यह लड़का लगता ही नहीं। इसीलिए लड़कियाँ इससे कोई संकोच नहीं करतीं। यह उनका अन्तरङ्ग बन गया है। जीजी कहती हैं कि यह श्यामका भी अन्तरङ्ग सखा है।

यशोदाके लालको आज इतने निकटसे देखा। देखकर आज तो जैसे मन-बुद्धि उसीकी हो गयीं। अब आज उसका वह सिर झुकाकर प्रणाम करना, वह अमृत स्वर, वह हास्य—अरे, मैं तो अब घोर अन्धकारमें भी उसकी अङ्ग-गन्ध पहचान लूँगी। उसे देखकर भूला जा नहीं सकता। मेरे नेत्र, कर्ण, नासिका सब उसने जैसे अपने बना लिये।

अब मुझे भी सुबलको पुचकार कर उससे उसके सखाकी चर्चा सुननी है; किंतु वह लड़कियोंसे घिरा बैठा है। मैं वहाँ जाऊँ तो लली और उसकी सखियोंको संकोच होगा।

जीजी ठीक कहती हैं। यशोदाके लालको देखते ही लगता है कि वह अपना है। अपना कोख जाया भी कभी इतना नहीं लगा।

बुआ भानुमुद्रा–

अनन्त सौभाग्यशालिनी हमारी लली राधा। बहुत नन्हीं थी यह तब मैं इसे गोदमें लिये नाच-नाच उठती थी। इसे गोदमें लेकर जो आनन्द उमड़ता था, स्थिर रहा ही नहीं जाता था। यह मेरी ओर देखकर हँसती किलकती थी और मैं इसे लिये नाचती थी।

'तुमको ऐसा क्या मिल गया है?' भाभी मेरे आनन्द-उल्लासको देखकर पूछती थीं। कभी कोई गोपी भी पूछती थी।

'यह लली!' मैं ललीके कपोल अपने कपोलोंसे लगाकर और वेगसे नाचती थी।

'बुआ!' लली बोलने लगी और एक दिन भी तुतलायी नहीं; किंतु इसका स्वर–इसके स्वरका माधुर्य कोई लौकिक वीणा तो क्या पावेगी, सरस्वतीकी वीणासे भी सप्रयत्न वैसा स्वर निकलना कठिन है। यह कुछ कहे, कुछ बोले—केवल इसका स्वर सुननेके लिए हम सब और वृद्धाएँ भी इससे कुछ पूछते ही रहते हैं।

इसे खुलकर हँसते मैंने तब भी नहीं देखा जब यह घुटनों भी नहीं चल पाती थी। यह तो धीरेसे मुस्कराती है। शिशु थी तो बहुत प्रसन्न होनेपर दोनों नन्हें करोंसे ताली बजानेका प्रयत्न करती थी।

हमारी लली मुस्कराती भी है तो ऐसी उज्वल चन्द्रिका छिटकती है कि अनेक बार भाभी ही चौंक उठती हैं।

अनेक विशेषताएँ लेकर लली जन्मसे ही आयी है। सभी शिशुओंके पदतल मृदुल, अरुण होते हैं; किंतु लली जैसे-जैसे बड़ी होती जाती है, इसके करों-पदोंकी अरुणिमा और मृदुलता जैसे बढ़ती जाती है।

अनेक बार आगता वृद्धाएँ अथवा मौसी इसे देखते ही चौंकती हैं।

पुकारती हैं—'लली, यहाँ तो आ !' समीप आनेपर इसे गोदमें बैठाकर इसके पदतल देखती हैं—'तेरे पदोंको क्या हुआ है ?'

'ऐसे ही हैं इसके पद।' भाभी हँसती हैं।

इसके पदोंकी रेखाएँ—भगवती पूर्णमासी और पता नहीं कितने ऋषि-मुनियोंने उनपर मृदुलतासे अंगुली फिरायी है। अब तो यह इतनी संकोचमयी बन गयी है कि मेरी गोदमें भी नहीं बैठती। लेकिन नन्ही थी तो जो ऋषि-मुनि आते थे वे इसे गोदमें लेकर इसके पद ही देखते थे। नेत्रोंसे लगा-लगाकर देखते थे।

अलक्तक इसके पदोंमें अब मैं भी लगा देती हूँ। यद्यपि यह बहुत मनुहार करनेपर ऐसा करने देती है; किंतु बहुत चाहकर, बहुत प्रसन्न करके भी इसके पदोंके योग्य कोई अलक्तक मुझे मिला नहीं। अलक्तक लगानेपर इसके पदोंकी अरुणिमा दबती है। इसके कर पद बिना रञ्जित किये जितने सुशोभित लगते हैं—रंजित करके नहीं लगते।

सबसे पहले मैंने ही इसकी सिन्दूर भरी माँग और भालकी बिन्दी देखी थी। प्रसूतिगृहमें मैंने इसे गोदमें उठाया और चौंक गयी थी। मैंने वस्त्रसे धीरेसे इसकी माँग और भाल पोंछा। लेकिन वह कोई सिन्दूर था कि मिटाया जा पाता।

'भाभी !' मैं तो प्रसूति कक्षमें ही नाचने लगी थी इसे गोदमें लेकर–'हमारी लली अपने जन्मसे अखंड सुहाग लेकर आयी है। देखो तो सही, विधाताने इसकी माँग भरवा दी है और भालपर यह बिन्दी।'

भाभीने और धायने रोका नहीं होता तो मैं ललीको गोदमें लिये बरसानेके प्रत्येक घरमें घूम आती उसी समय और इसे सबको दिखा आती।

तबसे अबतक भी भाभी अनेक बार इसकी मांग केशोंमें ढकनेका प्रयत्न करती हैं। क्यों करती हैं ? ललीके केश ही ऐसे हैं कि कितना भी करो, मांग स्पष्ट बनी रहती है। शैशवमें इसके भालकी बिन्दीपर भाभी

कज्जल विन्दु लगा देती थीं। अब भी चन्दन-गोरोचनसे उसे ढक देती हैं। मुझे तो यह अच्छा नहीं लगता; किंतु भाभी कहती हैं—'इसे नजर लग जायगी।'

'हमारी लली कितनी सुन्दर है?' किसी वृद्धाने कह दिया था और यह भागी-भागी मेरे पास आयी थी—'बुआ, तुम तनिक चलो!'

तब यह चलने-दौड़ने लगी थी। मेरा हाथ पकड़कर आग्रह करने लगी थी। मैंने पूछा—'कहाँ चलूँ? क्या बात है?'

'वे जो माँ आयी हैं, मुझे सुन्दर बताती हैं।' बड़े भोलेपनसे कहा इसने—'तुम उनके पास चलो।'

'तू सुन्दर तो है।' मैंने इसे अङ्कमें लगाया—'मैं वहाँ जाकर क्या करूँगी?'

'वे तुमको देख लेंगी तो मुझे सुन्दर नहीं कहेंगी।' इसने बड़े भोलेपनसे कहा—'उन्होंने तुम्हें देखा नहीं होगा।'

'मैं तुझसे अधिक सुन्दर हूँ?' ललीके भोले मुखको देखकर मुझे हँसी आ रही थी।

'तुम तो सबसे सुन्दर हो।' इसने कहा—'मुझसे तो सब सुन्दर हैं।'

'सब कौन?' मैंने कुछ विनोदसे ही पूछा। स्त्रीकी सबसे बड़ी प्रशंसा उसे सुन्दर कहना है। सौन्दर्य सबसे बड़ी आकांक्षा और दुर्बलता भी स्त्रीकी; किंतु प्रशंसा भी व्यंग बन जाती है जब बहुत अत्युक्तिपूर्ण हो। जानती हूँ कि लली इतनी भोली है कि इसे व्यंग करना कभी नहीं आयेगा; किंतु यह किन-किनको अपनेसे सुन्दर मानती है?

'चन्द्रावली जीजी, ललिता, विशाखा, रंगदेवी·······।' यह एक ओरसे सखियोंका, दूसरी लड़कियोंका नाम गिनाती जा रही थी।

'मैंने बीचमें टोका—'और तुम?'

'मैं तो बस सुबल भैया जैसी हूँ।' इसने ऐसे कह दिया जैसे इसका सुबल भैया कुरूप हो।

'सुवल तुझे कुरूप लगता है ?' यह सुबलकी प्रतिकृति है और सुबल इसकी, यह बात तो ठीक है।

'नहीं तो।' चौंक गयी यह और सिर झुकाकर तनिक सोचकर बोली—'वह लड़का तो है ?'

'अच्छा !' मैं उस दिन हँसते-हँसते लोटपोट हो गयी और यह जो भागकर छिपी तो ढूँढ़-ढूँढ़कर भी मुझे नहीं मिली। मैंने भाभीसे कहा था—'तुम्हारी लली समझती है कि वह लड़की जैसी दीखती ही नहीं होगी; क्योंकि वह अपने सुबल भैया जैसी है और सुबल भैया लड़का है।'

लेकिन मैंने फिर कभी यह चर्चा नहीं की। लली इतनी संकोचमयी है कि मुझसे कई दिन छिपती रही। मैं इसीके लिए तो भैयाके घर बार-बार आया करती हूँ। यही मुझसे छिपी-छिपी फिरे तो मेरा यहाँ जी लगेगा।

लली अपनी सखियोंसे भी उतना नहीं खुलती जितना मुझसे खुलती है। मुझसे लिपट जाती है। मेरे कण्ठमें भुजाएँ डालकर कानके समीप मुख लाकर जो मनमें आता है, सब कहती है। लेकिन मैं अपनी कठिनाई भी बता देती हूँ। लली जब कण्ठमें भुजाएँ डालकर लिपट जाती है और कानके समीप कुछ कहने लगती है तो मैं इसकी कोई बात सुन नहीं पाती हूँ। इसका स्पर्श और इसके स्वरकी प्राणस्पर्शी झंकार—मन इनसे ऊवर ही नहीं पाता कि इसके शब्दोंके अर्थ पकड़ सके।

कई बार इससे कुछ पूछती हूँ तो यह मंदस्मितसे कहती है—'बुआ, तुम बहुत भुलक्कड़ हो। तुमसे कहा तो था। तुमसे कहे बिना मैं कभी कुछ करती हूँ ?'

अब इसे मुझसे भी संकोच होने लगा है। उस दिन ललिताने आकर कहा—'तुम्हारी लली कहती हैं, बुआ मुझे बहुत सुन्दर कहा करती हैं, सुन्दर देखना हो तो आज देखलें।'

'कहाँ किसकी लाली है ?' मुझे अटपटा नहीं लगा। लली तो सब

लड़कियोंको अपनेसे सुन्दर कहती है। देखना यही है कि अब कौन-सी नवीन सखी इसे मिली है जिसे अपनी सब सखियोंसे अधिक सुन्दर कह रही है।

'इतने-इतने दिनोंपर तो आती हो, पता कैसे लगेगा तुमको बुआ।' ललिताने कहा—'लाली नहीं, लाला देखनेको तुम्हारी ललीने कहा है। अब वह गायें लेकर इधरसे ही लौटेगा। गवाक्षपर बैठ जाइये।'

कहा तो भाभीने भी मुझसे बहुत कुछ है। मैं स्वयं भी उसे देखनेको उत्सुक हूँ; किंतु ललीका यह संदेश, लली अब बड़ी हो गयी है? मुझे तो यह अब भी नन्ही बच्ची लगती है। लगता है कि भाभीने किसीसे कोई चर्चा की होगी, इसने वही सुनली है और इसीसे अब मुझसे भी स्वयं कुछ कहनेमें इसे लज्जा लगी है। इससे पहले तो कभी सखीके द्वारा इसने मुझसे कुछ कहा नहीं है।

गवाक्षपर मुझे बैठना था। भाभीने अपने समीप बैठा लिया। मैं तो ललीके समीप बैठना चाहती थी; किंतु भाभीने ठीक कहा—'तुम जाओगी तो सम्भव है—लड़कियाँ गवाक्षसे ही भाग जायँ।'

भाभीने हिलाकर सचेत न किया होता तो मैं उस दिन भी कुछ नहीं देखपाती। वनकी ओरसे वंशी ध्वनि आने लगी और मैं उसके स्वर माधुर्यमें मग्न हो गयी। इतना माधुर्य भी सम्भव होता है स्वरमें ?

एक बार मैंने छिपकर ललीको गाते सुना था। वह स्वर और आजका यह वंशी स्वर, मैं असमर्थ हूँ बतलानेमें कि दोनोंमें किसमें अधिक माधुर्य और मोहिनी है।

'कहीं इस वंशी ध्वनिके साथ लली स्वर मिलाकर गाती !' एक हूक जैसी उठी मनमें। मुझे पता ही नहीं लगा कि कब सहस्र-सहस्र गायें गवाक्षके आगेसे हुँकार करती निकल गयीं।

'तुम तो फिर ऊँघने लगीं !' भाभीने फिर हिलाया मुझे—'वह मयूर-मुकुट पहने आ रहा है !'

भाभीने आगे भी कुछ कहा हो तो मुझे पता नहीं है। मेरे प्राण कर्णोंमें-से नेत्रोंमें आ गये थे। मैं पलक झपकानातक भूल गयी थी !

सच कहूँ तो उस दिन भी मैंने उसे देखा नहीं। देख नहीं सकी, यह कहना अधिक उचित है। मैंने पहले-पहले उसके बड़े-बड़े पद्मपलाश लोचन देखे और उन्हींको देखती रह गयी। वह आगे बढ़ गया तो पीठपर लहराती उसकी घुँघराली अलकोंपर नेत्र जा टिके।

'यशोदाके लाड़लेको नजर मत लगाना!' भाभीने पीछे हँसते हुए मुझे झकझोर दिया था।

'उसे नजर लग भी सकती है किसीकी?' मैंने भी हँसीमें कह दिया—'देखती नहीं हो कि वह काला है।'

भाभीने ऐसे मेरी ओर देखा जैसे उन्हें मेरी बात बहुत बुरी लगी हो। मुझे कहना पड़ा कि मैं हँसी कर रही थी। लेकिन मुझे उसे देखनेमें अनेक-अनेक दिन लगे। अब भी कह नहीं सकती हूँ कि मैंने उसे ठीक देखा है। मैं गवाक्षपर पहलेसे निश्चय करके बैठती हूँ कि आज उसका कौन-सा अङ्ग देखना है। जानती हूँ, नेत्र पहले उसके जिस अङ्गपर पड़ेंगे, वहाँसे उन्हें हटाना स्मरण भी नहीं आवेगा।

'भाभी! यह क्या जादू है?' मैंने हारकर अन्तमें पूछा—'तुमने इस यशोदाके लालको कभी ठीक देखा है?'

'तुम मेरी बात सच नहीं मानोगी।' भाभीने कहा।

'तुम्हारी बात सच नहीं मानूँगी तो किसकी बात सच मानूँगी?' मैंने आग्रह किया—'तुम कहना क्या चाहती हो?'

'मैंने अपनी ललीको ही अभीतक ठीक देखा नहीं है।' भाभीने मेरे नेत्रोंमें सीधे देखकर कहा—'तुमने उसे ठीक देखा है?'

'हमारी लली इतनी सुन्दर है कि उसे पूरी कभी देखा ही नहीं जा सकता।' यह बात तो मैं ललीको शैशवमें ही देखकर जान गयी थी। 'उसके पद नखपर भी दृष्टि जाय तो वहीं रह जाती है।'

सच बात यह कि लली अपनी है। इतनी अपनी कि उसमें कोई विशेषता है, यह मन सोचता ही नहीं है। वह विशेषता तो कोई प्रसङ्ग आवे तब स्मरण आती है।

'भाभी ! मैं जादूकी बात पूछ रही थी।' मैंने फिर पूछा—'इस यशोदाके लालको कोई सिद्धि प्राप्त है ?'

'तुम्हीं पूछ लेना उससे।' भाभी हँसकर बोलीं—'तुम्हें भी कोई सिद्धि चाहिये ? वह तुम्हें बुआ ही कहेगा।'

'वह बुआ तो कहेगा ही; किंतु वह है कौन ? एक है या अनेक हैं और प्रतिदिन नये-नये आते हैं ?' उसके लोचन, बाहु, पद—जिस भी अङ्गपर दुबारा दृष्टि गयी, लगा कि वह सर्वथा नवीन है। उसे पहले कभी देखा ही नहीं है।

'यशोदाके लाल तो एक ही है।' भाभीने कहा—'उस एककी ही तीनों लोकोंमें तुलना नहीं है। उसके जैसा दूसरा कोई कहाँसे आवेगा।'

अबतक कभी मेरा ध्यान नहीं गया था। आज मैं सोचकर चौंकी हूँ कि हमारी ललीमें भी कुछ ऐसी ही विशेषता है। यह भी कभी पहचानी नहीं लगी मुझे। जब इसका जो अङ्ग दृष्टिमें पड़ा, यही लगा कि उस अङ्गको पहले कभी देखा नहीं था।

सचमुच ललीने मुझे सुन्दर दिखलाया। भुवनसुन्दर है यशोदाका लाड़ला, इसमें दो मत नहीं हो सकता। उसे देखकर तो मैंने अपनी ललीके सौन्दर्यको समझा है। इस ललीको जिसे मैं प्रसूतिगृहमें अङ्कमें लेकर नाचती रही थी।

'ललिता ! इस कालेको सुन्दर कहकर तू मुझे दिखाने आयी थी ?' मैंने जैसे भाभीसे परिहास किया था, ललितासे भी मिलनेपर किया।

'बुआ !' ललिता तो मेरा मुख देखती रह गयी देरतक।

'क्यों, क्या हुआ तुझे ?' मैंने पूछा।

'कुछ नहीं हुआ; किंतु एक प्रार्थना है।' ललिता रोने-रोनेको हो आयी है, यह मैंने देख लिया। वह बोली—'यह बात अपनी ललीके आगे मत कह देना, नहीं तो वे फिर कभी आपसे बोलेंगी ही नहीं।'

'तू भी उससे यह मत कहना।' मैंने अंचलसे उसके नेत्र पोंछे—'मैं हँसी कर रही थी; किंतु हमारी ललीसे वह अधिक सुन्दर नहीं है।'

'मेरी सखीसे अधिक सुन्दर तो कोई हो ही नहीं सकता।' ललिता प्रसन्न हो गयी। वह उत्फुल्ल स्वरमें बोली—'लेकिन वे इस बातको कभी नहीं मानेंगी। उन्हें तो सब दूसरी ही सुन्दर लगती हैं।'

'सब दूसरियोंसे भी अधिक सुन्दर वह मयूरमुकुटी।' मैं इन लड़कियोंसे भी परिहास कर लेती हूँ।

'वे तो सुन्दर हैं!' ललिता कहकर भी लज्जासे लाल हो उठी।

हमारी लली और वह नीलसुन्दर। मेरे मनकी अद्भुत स्थिति बनादी इस यशोदाके लाड़लेने। मन बेचैन होता है—इसकी वंशी ध्वनिके साथ लली गाती और ललीके साथ यह विवाह करके उसके कण्ठमें भुजा देकर खड़ा होता!

लली और नन्दलाल, नन्दलाल और लली—दोनोंमें अधिक सुन्दर कौन और कम कौन—यह निर्णय कभी नहीं हो सकेगा। लली अपनी, लेकिन यशोदाका लाड़ला ही कहाँ अब पराया लगता है। ये दोनों तो जैसे जन्म-जन्मके अपने हैं।

नानी मोक्षदा—

वृषभानु सदा बच्चा ही रहेगा क्या ? जैसे भोली मेरी कीर्ति है, वैसा ही यह जामाता मिला मुझे । इन दोनोंको अपनी ललीकी कोई चिंता ही नहीं लगती है । ललीको परमात्मा सुख-सुहाग दे । उसके जैसी बालिका मैंने तो सुनी भी नहीं । वह अपनी माँसे अधिक भोली और अभी तो उसने चलना सीखा है; किंतु गोपकन्याका विवाह गोदमें हो जाता है, यह बात वृषभानुके गले ही नहीं उतरती ।

मेरा दोष भी कम नहीं है । कीर्तिने पहले-पहले ललीको मेरी गोदमें दिया तो मैं देखती रह गयी उसे । वह भी एकटक मुझे ही देखे जा रही थी । पता नहीं मुझ बूढ़ीमें उसे क्या देखने योग्य मिल गया था । उसका नन्हा-सा मुख—मेरी पतली अंगुलीके नोक जितना तो बड़ा मुख और अधर ऐसे कि लगता था, मुखके स्थानपर एक अरुण रेखा मात्र है ।

'कीर्ति, तू बहुत भाग्यवान है ।' मैंने अपनी बेटीसे कहा था—'इस ललीको माँगने तो बड़े-बड़े देवता तेरे द्वारपर मस्तक पटकेंगे ।'

पता नहीं मेरे मुखसे कैसे यह बात निकल गयी और बेटी-जामाता दोनोंने उसे गाँठ बाँध लिया लगता है । मैं कुछ कहती हूँ इनसे तो दोनों मुस्करा देते हैं ।

यह लली अब नूपुर रुनझुन करती चलने लगी है । मेरे बुलाते ही मेरी गोदमें आ बैठती है । एक तो वैसे ही मुझे दूरतक देखनेका स्वभाव नहीं, दूसरे यह गोदमें आ बैठती है तो इसके मुखके स्थानपर पतली अरुण रेखा देखती रह जाती हूँ । जी भर इसे देखनेको कितनी बार सोचा; किंतु कहाँ हो पाता है और यह भी पहले दिनकी भाँति मुख उठाकर मुझे ही देखती रहती है ।

मैंने इसे पहले देखा था और तभीसे सोचने लगी थी कि यह किसी राजराजेश्वरकी पुत्रवधू बनेगी । इसके लिए चिन्ताकी मुझे कोई बात नहीं

लगी। तब वृषभानुने एक दिन नन्दरायके बालककी बात की थी। मैंने उस दिन सिर हिला दिया था—'सुनती हूँ कि नन्दका छोरा काला है। हमारी लली.......।'

'मैया, तुम एक बार उसे देखलो, इसमें तो कोई हानि नहीं है।' वृषभानुने बहुत आग्रहसे कहा था।

'नन्दसे तेरी बचपनकी मित्रता है, जानती हूँ।' मैंने कहा था—'उसके छोरेको देखलूँगी; किंतु लली किसी ऐसे-वैसेको देने नहीं दूँगी।'

'मैं कहाँ ऐसे-वैसेको देनेको कहता हूँ।' वृषभानु प्रसन्न हो गया था—'तुम्हारी आज्ञाके बिना दे भी कैसे सकता हूँ।'

सच ही कहूँगी, मैं यह तब समझ ही नहीं सकती थी कि कोई काला होकर भी सुन्दर हो सकता है। वृषभानुको मैंने नन्दका छोरा देखनेको कह तो दिया; किंतु कहकर भूल गयी। भूल न गयी होती तो गोकुल बहुत दूर नहीं था। यशोदा भी मेरे लिए अपनी छोरी ही है। उससे मिलने चाहे जब जा सकती थी।

सुना कि गोकुलमें कंसके भेजे राक्षसोंने बार-बार इतने उत्पात किये कि बेचारे नन्दको अपने बालकके साथ गोकुल त्याग ही देना पड़ा। अपना पूरा व्रज लेकर वह बरसानेके पड़ोसमें नन्दीश्वरपर आ गया।

बिना विपत्तिके तो कोई पिता-पितामहका स्थान छोड़ता नहीं। नवीन स्थानपर आकर बसनेमें कुछ-न-कुछ असुविधा अवश्य होती है। ऐसे समय मुझे लगा कि यशोदाको देख लेना चाहिये और उस छोरीको कुछ देकर निश्चिन्त करना चाहिये कि उसकी एक यह मैया भी अभी है। उसे कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

मुझे बहुत प्रसन्नता हुई थी। नन्दकी व्यवस्था इतनी अच्छी होगी, मैंने नहीं सोचा था। इतनी शीघ्र उसने भवन, गोष्ठ सब ठीक-ठीक बनवा लिये थे और सुना कि बहुत आग्रह करनेपर भी अपने मित्र वृषभानुकी बहुत कम सहायता स्वीकार की नन्दने।

नन्द दो-चार दिन भी वृषभानुका अतिथि क्यों नहीं रहा? नन्दने वृषभानुकी सहायता खुलकर क्यों नहीं ली? यह चोर मेरे मनमें उसी दिन बैठ गया। यशोदा तो मेरी छोरी है। उस दिन भी वह मेरी अपनी छोरी

जैसी ही मिली और रानी रोहिणी बेटी तो रानी है। रानीको शोभा दे ऐसा शील कोई उससे सीखे।

मैं बेटीके घर गयी थी तो खाली हाथ तो जाती नहीं। फिर यशोदा बेटीके घर पहली बार गयी थी। मेरे छकड़ोंके उपहार स्वीकार करनेमें नन्दने भी उत्साह ही दिखलाया। यशोदाने तो मेरे दिये वस्त्राभरण उसी समय पहन लिये। यह सब हुआ, पर उस घर जाकर जो चोर मेरे मनमें बैठा, वह किसी प्रकार निकलता नहीं है।

यशोदाने अपना लाल मेरी गोदमें दे दिया था। गोदमें तो मैंने रानी बेटीके बलको भी स्वयं बैठा लिया था, किंतु बल तो नन्हा सही, राजकुमार है। उसमें राजकुमारकी पूरी गम्भीरता है। वह जितना सुन्दर है, उतना ही गम्भीर।

यशोदाका लाल भी गोदमें आते ही मुख उठाकर मेरी ही ओर देखने लगा था। वह चपल अपने नन्हें करोंसे मेरे श्वेत केशोंमें अंगुलियाँ नचाने लगा।

'नीलमणि !' मैंने यशोदाके मुखसे इतना ही सुना। वह सम्भवतः अपने छोरेको बतला रही थी कि मैं उसकी नानी होती हूँ। लेकिन वह उस समय मेरे केशोंसे खेलनेमें उलझा था और मैं उसके छोटे-से मुखकी अरुण रेखा देखनेमें। ठीक कीर्तिकी लालीके मुखकी अरुण रेखाके समान वह मुख-रेखा।

उस क्षण तो लगता था कि यशोदा ही मेरी अपनी छोरी है और मेरा धेवता मेरी गोदमें बैठा है।

सुना था कि नन्दका छोरा काला है। काला किधरसे है यह ? यह जैसे नीलोज्ज्वल ज्योतिका पुंज। यशोदा इसे नीलमणि कहती है। दूसरा अच्छा नाम छोरी सोच नहीं पाती। कौन-सा संसारका नीलमणि ऐसा शीतल, सुखद प्रकाश देता होगा ? फिर यह अत्यन्त सुकुमार—मणि शब्द इसके लिए बहुत कर्कश लगता है।

'नानी !' तनिक देरमें चपलने मेरी ठुड्डीमें कर लगाये। मेरे कर्णोंमें उसके स्वरका अमृत भर गया।

'लाल !' मैं देरतक उसे अपने हृदयसे लगाये रही ।

उस दिन मैं नन्दभवनसे लौटी तो चोर बैठ गया मेरे मनमें घुसकर । यशोदाका लाल इतना सुन्दर है । नन्द किसी देवता या चक्रवर्ती सम्राट्की कन्या चाहेगा तो वह चक्रवर्ती सम्राट् भी अपनेको उपकृत मानेगा । कहीं नन्दके मनमें मेरी धेवतीके प्रति रुचि कम तो नहीं हो गयी है ?

वृषभानुसे कहती हूँ कि नन्दसे कहकर ललीका शीघ्र विवाह कर दे तो वृषभानु और कीर्ति मुस्करा देते हैं । मेरी ही बेटी कीर्ति मुझसे कह देती है—'माँ, यशोदाका छोरा तो काला है !'

मेरी ही बात ऐसे मुझे कोई सुना दे तो मुझे क्रोध आवेगा या नहीं ? मैंने कह दिया—'तुम दोनों उसे काला कहकर बैठे रहो । नन्द जिस दिन बेमनसे भी किसी चक्रवर्तीकी कन्याके लिए पूछना चाहेगा, उसी दिन उसके द्वारपर चक्रवर्ती नाक रगड़ने दौड़ा आ जायगा ।'

'लेकिन माँ, अपनी लली……।' मैंने बेटीको कुछ कहने नहीं दिया—'लली बहुत सुन्दर सही; किंतु कन्या है या नहीं ? वृषभानु बहुत सम्पन्न है तो भी गोप ही तो है । अभी नन्द अपने मित्रको मानता है; किंतु कलको किसी बड़े राजाका पुरोहित उसके बालकके लिए नारियल लेकर आ जाय तो ?'

'माँ, तब क्या व्रजराय बदल जायँगे ?' मेरी बेटीका भोलापन देखलो । अरे नन्दको कंसका भय है । कंस उनके लालके पीछे एकपर एक राक्षस भेजता है । ऐसेमें कोई बड़ा सहायक मिलता दीखेगा तो नन्द तुम्हारी ललीकी सुन्दरता देखने बैठे रहेंगे ?

'बैठे काहेको रहेंगे माँ !' मेरी भोली कीर्ति तो इस बातपर भी हँसती है—'उठकर खड़े हो जायँगे और उस राजाकी कन्याको भी पुत्रवधू बना लावेंगे । तुम्हारी ललीको सहेली ही मिलेगी ।'

मैं सुनकर ही झल्ला गयी । वृषभानुसे कहा तो वह कीर्तिसे भी दो हाथ आगे । कहता है—'मैंने और नन्द भैयाने भी एक-एकपर ही संतोष कर लिया; किंतु नीलमणिको तो छोटे-से विवाहकी धुन है । वह तो बहुत-से विवाह करेगा ही । लली वहाँ बड़ी बनकर रहेगी तो इसीको सबको सम्हालना पड़ेगा । छोटी होकर जाय तो सबका स्नेह मिलेगा इसे ।'

यह वृषभानु क्या ऐसे ही सदा बच्चा ही रहेगा ? यह तो बच्चों जैसी बातें करता है। इसे नन्दसे अपनी मित्रतापर इतना दृढ़ विश्वास है कि मेरी बातका इसपर प्रभाव ही नहीं पड़ता है।

'माँ, तुमको शीघ्रता है तो ललीको लेकर चली जाओ। वे ना नहीं करेंगे। इसे पहुँचा आओ उनके घर।' वृषभानु पता नहीं किस संसारमें रहता है। ऐसे कहीं कोई अपनी कन्या पहुँचा आता होगा।

मैं इतनी बूढ़ी हो गयी। कीर्ति मेरी कोखजायी कन्या है। कीर्तिके पुत्रोंपर मेरा ममत्व कैसा होगा—यह कोई समझ सकता है और लली तो मेरी प्राण है। इतनेपर भी जबसे यशोदाके यहाँसे लौटी हूँ, लगता है कि उसका नीलमणि गोदमें ही बैठा है और मेरे केशोंमें अपने एक हाथकी अंगुलियाँ नचाता केशोंसे खेल रहा है।

लली गोदमें आ बैठती है तब भी मुझे कई बार चौंकना पड़ता है। लगता है कि मैं नन्दभवन पहुँच गयी हूँ और वही नीलसुन्दर गोदमें बैठा है। कई बार ललीका मुख धीरेसे उठाकर देखती हूँ कि यह मेरी कीर्तिकी लली है या यशोदाका लाल ?

लली मुझे नीलसुन्दर क्यों दीखने लगी है ? इसकी मुखरेखा-अधरोंकी अरुणिमा क्यों मुझे नन्दनन्दन जैसी ही लगती है ? यह तप्त कुन्दन मेरी लली; किंतु मुझे इसमें उस नीलसुन्दर जैसी ज्योति दीखने लगी है। मेरे बुढ़ापेका दोष है यह ?

यशोदाके यहाँसे लौटनेपर मुझे तो अब लली भी बहुत अधिक स्मरण आने लगी है। पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ करता था। मैं ललीके लिए कोई वस्त्र, कोई आभरण बनाने-सजानेमें लग जाती थी और तन्मय होकर लगी रहती थी। मेरा यही एक व्यसन रह गया था; किंतु अब लली स्मरण आते ही यशोदाका लाल स्मरण आता है। कर शिथिल हो जाते हैं। नेत्र भर आते हैं। अब कुछ किया नहीं जापाता मुझसे।

यशोदाके लाड़लेके उस नन्हें करको पकड़नेको कई बार मैं अपने सिरतक कर ले जाती हूँ; किंतु लगता है कि तभी गोदमें आकर लली बैठ गयी है। ऐसा क्यों हुआ करता है ? मुझे यह आजकल क्या हो गया है ?

'आप इन दोनोंके लिए दहेजके वस्त्राभरण बनानेमें लगो।' मैंने

भगवती पूर्णमासीसे अपनी दशा सुनायी तो वे भी हँस गयीं। दहेज तो मैं सजाऊँगी; किंतु वृषभानु मेरी सुने तो सही। वह ललीका सम्बन्ध पक्का कर दे तो मेरे मनमें बैठा चोर निकल जाय। मैं कितनी सुखी, कितनी प्रसन्न बनूँगी यह सौभाग्य आनेपर, स्वयं भी सोच नहीं पाती हूँ।

'नानी !' बरसानेके सब बालकोंकी मैं नानी तो हूँ ही। बालक इस प्रकार मुझे कोई आजसे पुकारते हैं। उन्हें तो बोलना आया तबसे उनकी माँने यही सिखलाया है।

'नानी !' लली जब कहती है, लगता है कि वीणाकी सबसे मधुर झंकार गूंजी है। मैं तो ललीके मुखसे नानी सुननेके लिए उसकी पुकार जैसे न सुनी हो, ऐसी कई बार बन जाया करती हूँ।

'नानी !' लेकिन अब कोई बालक या लली ही पुकारती है तो मुझे लगता है कि गोदमें बैठा यशोदाका लाल ही पुकार रहा है। पुकारनेवालेकी ओर देखनेके स्थानपर मेरा सिर नीचे झुकता है और मेरे नेत्र गोदमें उसे देखना चाहते हैं।

'नानी !' लली पुकारती है सम्मुख खड़ी और जब मेरे मुखसे निकलता है 'लाल !' तो खिल-खिलाकर हँस पड़ती है। कई बार कहती है—'नानी, सुबल भैया नहीं है। मैं राधा हूँ।'

'राधा है मेरी !' ललीको गोदमें लेकर इसका मुख देखने लगती हूँ तो यह और भी खिलखिलाती है। इसकी हास्यध्वनि, लगता है कल-हंस-शाविका कूजन करती है।

'लली है ?' मैं अपने आपसे कहकर भी कहाँ संतुष्ट हो पाती हूँ। नेत्रोंके सम्मुख प्रत्यक्ष लली है और मुझे लगता है कि यशोदाका लाल आकर गोदमें बैठ गया है। मैं बार-बार दुहराती हूँ—'लली है।' फिर भी मेरा मन तो जैसे इसे मानता ही नहीं।

यशोदाके लालमें यह कोई जादू है ? उसे मैंने केवल एक बार गोदमें लिया और यह मेरी लली—मेरी कीर्तिकी कन्या मेरी जन्मसे लाड़लड़ायी।

अब यह लली यशोदाके लालके साथ हो जाय तो मेरे मनका चोर भागे। मेरा भ्रम मिटे।

भगवती पूर्णमासी–

वाराणसी भगवान् विश्वनाथकी पुरी है; किंतु जब वहाँका विप्रवर्ग लौकिक वैभवके चाकचिक्यसे भ्रमित होकर विशुद्ध मङ्गलायतन वैदिक पथसे विमुख हो गया और तन्त्रके राजस-तामस अभिचार उसे प्रिय होगये, भाई सान्दीपनिके लिए काशी-त्यागके अतिरिक्त उपाय ही नहीं था। उन्होंने महाकालकी सन्निधि स्वीकार की।

मैं एकाकिनी तो नहीं थी। यह मधुमङ्गल मुझे व्रज ले आया। इसीको धुन थी—'मेरा सखा आ रहा है। मैं उसके साथ ही रहूँगा।'

मैं व्रज आयी और धन्य हो गयी। नन्दराय और उनके गोपोंकी, गोपियोंकी श्रद्धाकी सीमा नहीं है। इन लोगोंने तो मुझे योगेश्वरी, महाशक्ति—पता नहीं क्या-क्या मान लिया है।

मुझे बहुत संकोच हो तो होता रहे। महर्षि शाण्डिल्य भी नहीं मानते कि मैं उनकी छोटी बहिन हूँ। वे कहते हैं—'आप मुझ छोटे भाईको स्नेह देंगी, यही मेरा बड़ा सौभाग्य ! ब्राह्मणोंमें आयुसे ज्येष्ठत्व नहीं माना जाता। त्याग और तप श्रेष्ठ माने जानेकी परम्परा है।'

मैं कुछ भी कहूँ, महर्षि मानते ही नहीं कि मैं उनके अनुगतोंकी समता भी त्याग-तपमें नहीं कर सकती। नन्दरायने, गोपोंने, गोपियोंने तो मुझे भगवती ही मान लिया है और जब कोई श्रद्धा-सहित विनम्र बना पदोंमें प्रणत हो तो उसीके आश्रय एवं अन्नसे जीवित रहनेवाली ब्राह्मणी उसे क्या आशीर्वाद भी नहीं देगी ?

'मेरा सखा आया !' मधुमङ्गल तो कृष्णचन्द्रके जन्मदिनसे ही आनन्दमग्न हो गया। वह अवधूत तो जन्मसे है। व्रजमें आकर मेरी अपेक्षा उसे रही नहीं थी। कभी भूले-भटके मेरे उटजमें आ भी जाता था, सो अपने सखाको पाकर वह भी उसका छूट गया। उसे तो नन्दभवन भी रहनेका आग्रह नहीं। चाहे जिस घरमें हो, निद्रा आने लगे तो उसी घरकी स्वामिनीको कह देता है—'माँ, मैं सोऊँगा। झटपट मेरी शय्या बना, नहीं

तो तुझे ही मुझे भूमिपरसे उठाकर शय्यापर ले जाना पड़ेगा। तनिक थपका मुझे।'

चाहे जिसके लिए भोजन परसा गया हो, उसे रुच जाय तो थाल खींचकर बैठ जायगा और जिसके लिए थाल परसा है, उससे कहेगा—'इतने भुलक्कड़ मत बनो। आज तुम्हारे व्रतका दिन है। कौन-सा व्रत, यह स्वयं स्मरण करो। कोई व्रत न हो तो भी ब्राह्मण-भोजन करानेका व्रत है।'

'माँ, मेरे पैर गोबर सने हैं।' चाहे जिसे कह देगा—'आज तू ही इन्हें धोकर चरणोदक लेनेका सौभाग्य प्राप्त कर।'

मधुमङ्गल तो अब यहाँ सबका प्रिय हो गया है और मैं ही कहाँ अवकाश पाती हूँ। मैंने सोचा था—'श्रीव्रजराजकुमारकी धाय बन जाऊँगी तो यशोदा यह मुझे भगवती कहना–मानना बन्द कर देंगी और अपने लालकी सेवा करनेका अवसर देंगी।'

कहाँ हुआ यह। मैंने अपनी ओरसे प्रथम दिन जब उसे गोदुग्ध पिलाना था, माँगकर गोदमें लिया। प्रथम दुग्धपान धाय कराती है, सीधी बात थी; किंतु गोपों-गोपियोंने तो उसको भी व्रजपर, व्रजराजकुमारपर भगवतीका महान् अनुग्रह मान लिया। मेरा सम्मान-सत्कार उलटे बढ़ ही गया। अपनेको नन्दनन्दनकी धाय कह सकूँ यह अवसर भी मुझे किसीने नहीं दिया।

'भैया, आप तो सर्वज्ञ हो!' मैंने महर्षि शाण्डिल्यसे एक दिन प्रार्थना की—'आपके यजमानके कुमारकी चरण रज भी दुर्लभ है सृष्टिकर्ताको। भगवान् शशांकशेखर उसके चरण स्पर्शके लोभसे ही गोकुल पधारे थे, यह आपसे तो अज्ञात नहीं है।'

'भगवान् आशुतोषने अनुग्रह करके मुझे गौरव दिया है कि मैं अपनेको उनका शिष्य कह सकूँ।' महर्षिका स्वर भर आया—'वे यहाँ पधारे तो शाण्डिल्यसे अप्रत्यक्ष नहीं रहना था उन्हें; किन्तु उनका संकेत भी अनुल्लंघनीय था। बहिनको मैं उनका दर्शन नहीं करा सका।'

'वह उपालम्भ नहीं दे रही हूँ। भाईके परिचय दिये बिना भी अपनी इस चरणाश्रिताको वे कृतार्थ कर गये।' मैंने अपनी बात कही—

'लेकिन आपके यजमान अपनी गृहस्वामिनीके साथ इसके चरणोंमें सिर रखते हैं, अपने लालको इसके पैरोंपर ही रख देते हैं, इस संकोचसे आप बहिनको बचा सकते हैं। मैं तो उस नन्हेंकी धाय हूँ। आप यह पद मुझे........।'

'असम्भव माँग करके भाईको लज्जित करेंगी आप ?' महर्षिने मुझे बोलने नहीं दिया—'धाय तो उसने पूतनाको बना लिया और अपने धाम भेज दिया। वह तनिक चलने लगे तो स्वयं आपके चरणोंपर मस्तक रखेगा। शाण्डिल्यको भी यह संकोच सहना है। अतः बहिन भी सहेंगी।'

'कितना सुकुमार है !' मैंने कहा—'अङ्कमें लेते भी हिचक होती है और यशोदा पैरपर ही धर देती हैं।'

'वे ठीक ही करती हैं।' महर्षिने कहा—'उनके लालको मेरी योगेश्वरी बहिनका आशीर्वाद तो चाहिये ही।'

'उसे आशीर्वाद ? वह स्वयं समस्त लोकपालोंको आशीर्वाद और संरक्षण देनेवाला है।' मैं कह गयी।

'सचमुच जब उसे आप चरणोंसे उठाती हैं; यह स्मरण रहता है ?' परम गम्भीर महर्षिने मेरी ओर देखा।

'उसे देखकर मुझे, आपको या किसीको भी यह स्मरण रह भी सकता है ?' मैंने भी सत्य ही कहा। महर्षिसे संकोच क्यों करूँगी—'वह तो है ही ऐसा कि उसके सम्मुख रहनेपर अपनी सत्ता भी उसीमें विलीन हो जाती है। उसे अङ्कमें लेकर जो वात्सल्य सागर उमड़ता है—जैसे समस्त सृष्टि अपनी शिशु हो गयी हो।'

मेरी क्या अवस्था होती है उस नन्हे यशोदाके लालको अङ्कमें लेनेपर, किसी भी प्रकार कह नहीं सकती। सचमुच तब मैं जगद्धात्री, जगन्माता हो जाती हूँ और जगत्में कोटि-कोटि रूपोंमें एक ही शिशु दीखता है यही नीलसुन्दर। दूसरा तब कोई मुझे दीखता ही नहीं।

उस समय मुझे कौन पद-वन्दन करता है, यह कुछ पता नहीं होता। यह भी नहीं कि वह स्त्री है या पुरुष। जैसे किसी मन्दिरकी प्रतिमा हो, कोई मेरी उस समय पद-वन्दना या पूजा कर सकता है। उस समय मेरे

रोम-रोमसे आशीर्वाद झरता है—आशीर्वाद झरता है अङ्कमें स्थित व्रजराजकुमारके लिए और वही तो अनेक-अनेक रूपोंमें पद वन्दना करता होता है।

मैं बहुत बचती हूँ कि महर्षि शाण्डिल्य अथवा कोई वृद्ध ऋषि-मुनि हों नन्दसदनमें तो वहाँ न जाऊँ। जाऊँ भी तो किसी ऐसे अवसरपर जब व्रजरानीके लालका कोई संस्कार हो रहा हो। यशोदा उसे मेरे पैरोंपर रखनेका अवसर न पा सकें। यशोदाको भी धुन है अपने लालको मेरे पैरोंपर ही रखनेकी और तब क्या उसे अङ्कमें उठाये बिना रहा जायगा ?

मेरे अङ्कमें आकर वह कुछ नहीं करता। पता नहीं क्यों यशोदा उसे चपल कहती हैं। मेरे अङ्कमें तो वह अपने कर या पद भी नहीं हिलाता। चुपचाप मेरी ओर देखता रहता है। बहुत हुआ तो नन्हा-सा मुख खोलकर किलकेगा।

घुटनों सरकने लगा तो स्वयं भी मेरे समीप सरक आता था। मैं समझती हूँ कि बालक पैरके समीप आवेगा तो पैरपर कर रखेगा ही। मैं उसे स्वयं गोदमें उठा न लूँ, यह मुझसे नहीं हो पाता।

'माँ !' यह नन्दनन्दन बोलने लगा तो उसने पुकारा और मैं धन्य हो गयी। मैंने उल्लासपूर्वक महर्षि शाण्डिल्यको बतलाया 'श्रीव्रजराजकुमार मुझे माँ कहने लगा है। अब तो आप मानेंगे कि मैं उसकी धाय माँ हूँ।'

'बहिन भूल कर रही हैं।' महर्षि बोले—'वह ऐसी धृष्टता कभी नहीं करेगा कि जो पद एक राक्षसीको दिया उसने, वह अपनी योगेश्वरी माँको देनेकी बात भी सोचे।'

सचमुच वह तनिक पैरों चलने लगा तो मुझे देखते ही लद्बद् दौड़ा आता था और मैं कितना भी उसे हाथोंमें उठाना चाहूँ, मेरे पैरोंपर सिर रखे बिना मानता नहीं था। मानता तो अब भी नहीं है; किंतु अब उठानेसे उठ जाता है। छोटा था तो उठानेपर भी गोदसे नीचे उतरनेको मचलता था और उतारनेपर पैरोंपर सिर रखे देरतक पड़े रहना चाहता था।

घुंघराली काली अलकोंसे घिरा नन्दनन्दनका नन्हा शशिमुख। मैं दोनों हाथोंमें लेकर वह मुख अब भी देखती हूँ, देखती रह जाती हूँ।

गोपियाँ ही नहीं, यशोदा और रोहिणी रानीतकने मुझे अनेक बार बड़े संकोचसे वारित करना चाहा था तब जब मैं नन्हें व्रजराजकुमारको पालनेसे उठा लेती थी। सब कहती थीं—'आपके वस्त्र अपवित्र कर देगा !'

अन्तत: गोपियाँ ही तो हैं सब। उनका संकोच, चेतावनी उचित। उन्हें कहाँ पता है कि उनके लालके स्मरणसे अपवित्रतम व्यक्ति भी पवित्र हो जाता है। इस नन्हें आनन्दकंदमें अपवित्रता कहाँसे आवेगी ? यह तो लीलामय है, लीलासे स्वजनोंको आनन्द देनेके लिए यह क्रीड़ा भी करता है।

एक दिन यशोदाने कई बार नम्रतापूर्वक निषेध किया तो मैंने पूछ ही लिया—'व्रजेश्वरी, तुम्हारे लालने कभी किसी ब्राह्मण या विप्रपत्नीकी गोद पवित्र की है ?'

यशोदा जैसे चौंक गयीं। लेकिन इसे भी वे अपने लालका प्रभाव माननेके स्थानपर मुझसे कहने लगीं—'भगवती, मैं गँवार ग्वालिनी हूँ। मेरी धृष्टता और अपराध क्षमा कर दिया करें। मैं आपकी बालिका हूँ। आपके ही आशीर्वादका प्रभाव है कि अबोध नन्हेंसे किसी पूजनीयके प्रति ऐसा अपराध नहीं होता। अन्यथा यह तो अनजान शिशु है। आपका ही आशीर्वाद इसकी रक्षा करता है।'

पता नहीं उस दिन यशोदा किस-किससे मेरे इसी चमत्कारकी चर्चा करती रहीं। ब्रजमें मेरे नामपर यह एक और चमत्कार बढ़ गया। मैं गोप-गोपियोंकी भगवती तो पहलेसे थी, अब यह नन्हा नन्दलाल और क्या-क्या बनानेवाला है।

यह घुटनों सरकना छोड़कर खड़ा होने लगा, पैरों चलने लगा और फिर अपने सखाओंको लेकर नन्द-भवनसे निकलने भी लग गया।

उस दिन सब बालक सहसा मेरे उटजके सम्मुख आये। बालकोंका कलरव सुनकर मैं उटजसे निकल आयी। देखा कि सब बहिर्द्वारके समीप संकोचसे सिमटे खड़े हैं।

मैं पूछने ही जा रही थी कि बालक क्या चाहते हैं कि एक ओरसे बल आगे बढ़ा। मैं उसे देखूँ देखूँ तबतक तो दोनोंने मेरे पैरोंपर म तक

रख दिया और फिर तो मैं उन शतश: बालकोंसे घिर गयी। एकको मैं स्नेहसे उठाती थी तो दूसरा मेरे पैरोंपर सिर रख देता था। मैं किसी ओर हिल भी नहीं सकती थी।

'मेरे सब सखा माँको प्रणाम करेंगे।' मधुमङ्गल ताली बजाते दूर खड़ा हँस रहा था।

'प्रणाम करनेको तुम अकेले पर्याप्त नहीं थे ?' मैंने तनिक खीझकर कहा—'इन सब शिशुओंको साथ ले आये।'

'मैं कहाँ ले आया। मुझे भी कृष्ण पकड़ लाया है।' मधुमङ्गल बोला—'माँ उसे क्यों डाँटती नहीं हैं ?'

यह अच्छी रही, प्रणाम करनेवाले बालकके मुखमें कुछ दे नहीं सकती तो डाँटूँगी मैं ?

'आज मेरे सब शिष्य भगवतीकी पदवन्दनाके अभियानपर आये लगते हैं।' सहसा महर्षि शाण्डिल्य पधारे और मुझे अवकाश मिल गया।

'मामा !' मधुमङ्गलने कहा; किंतु तबतक तो राम-श्यामने उनके पदोंपर सिर धर दिया था। बालक उनकी ओर दौड़ पड़े थे। मैं धीरे-से गोप भवनोंकी ओर निकल जानेको स्वतन्त्र हो गयी।

नन्दरायने गोपोंके साथ गोकुल त्यागा तो मैं और दूसरे सब ऋषि-मुनि कैसे गोकुल रहते। नन्दरायने सबको प्रथम चलाया छकड़ोंमें बैठाकर।

नन्दीश्वरपुरमें आकर मेरे यजमानोंकी संख्या द्विगुणित हो गयी। ब्राह्मण इसीलिए नगर-ग्रामसे बाहर सरिताके समीप आश्रम बनाते हैं कि उनका भजन-पूजन तो निर्बाध चले ही, उनके समीप आनेमें किसीको संकोच न हो। मेरे समीप अधिकांश गोपियोंको आना होता है, अतः मेरी इच्छानुसार मेरी पर्णकुटी नन्दीश्वरपुर और बरसानेसे लगभग समान दूरीपर बनायी गयी।

अब बालक मेरी पर्णकुटीपर कम ही आते हैं। वे सब अब गोचारणको जाने लगे हैं; किंतु बरसानेकी बालिकाओंको मैं वारित तो कर नहीं सकती। वे मुझे घेरे ही रहती हैं। मुझसे ही अपने मनकी सब बात वे निःसंकोच कह सकती हैं। मुझसे ही उन्हें प्रत्येक बातमें सम्मति लेनी है।

ये सब भोली बालिकाएँ और इनमें भी कीर्तिरानीकी लली। वह जब पदोंमें प्रणत होकर अङ्कमें आ बैठती है—मैं वैसे ही जगन्माता हो जाती हूँ अपनेको भूलकर, जैसे ब्रजराजके लाड़लेको गोदमें लेकर हो जाती हूँ। लेकिन अब वह मेरी गोदमें बैठता नहीं और ललीने तो जैसे मेरी गोदको अपना स्वत्त्व मान लिया है। यह संकोचमयी अपने आप अपनी माताकी गोदमें भी बहुत नन्हीं होगी तभी स्वयं चढ़ी होगी; किंतु मेरी गोदमें तो यह सीधे आ बैठती है।

लली गोदमें आ बैठती है तो मैं अपनेको तो भूल जाती ही हूँ, इस ललीको भी भूल जाती हूँ। मुझे गोदमें बैठा ही नहीं, सब कहीं खड़ा, खेलता नन्दनन्दन ही दीखता है। लली उससे अभिन्न जो है।

भाभियाँ–

अहोभाग्य अपना कि नन्दव्रजमें आ गयी। यहाँ तो सब स्नेह देना ही देना जानते हैं। अभावकी बात सोचनी ही पड़े तो मेरे जीवनमें एक ही अभाव है कि मुझे सेवाका सौभाग्य नहीं मिलता। किसी कामको हाथ लगाते ही सासजी डाँटती हैं—'तू अभी नन्ही बच्ची तो है और अभीसे काम। कोई सुने देखेगी तो सीधे व्रजेश्वरी जीजीसे जा कहेगी और वे मुझे बहुत डाँटेंगी। मैं व्रजेश्वरीके भाइयोंमें छोटी हूँ तो जीजी मुझे ही कुछ करने नहीं देतीं, 'तू मेरी गति बनाने लगी है। अभी खेल खा। हम सब तो जोवित ही बैठी हैं।'

वे पूरा उपदेश दे डालेंगी। उनकी चरणसेवा भी नहीं मिला करती। चरण छूते ही मेरे कर चूम लेती हैं। पता नहीं उन्हें मेरे इन करोंपर इतना प्यार क्यों आता है।

गोपकन्याका विवाह गोदमें ही हो जाता है। मुझे तो अपने विवाहकी स्मृति भी नहीं है। लगता है कि इसी गृहकी हूँ और यहीं खेलती-खाती बड़ी हुई हूँ। माँ कभी-कभी आती हैं। पिताजी और भाई भी मिलते हैं। ढेरों उपहार दे जाते हैं मुझे; किंतु उस घरकी स्मृति कठिनाईसे आती है।

यहाँकी बात तो एककी ही बात है, अपने व्रजयुवराज लालजीकी बात। वे ही तो प्राण हैं सबके। मुझे तो यहाँ छोटा-बड़ा कोई नहीं लगता जो रात दिन उन्हींको चर्चा और चिन्तनमें न लगा रहता हो।

सब जेठानियाँ भी कहती हैं कि वे मेरा संकोच करते हैं। वे और संकोच ? संकोच उनसे सौ कोस दूर कहीं रहता हो तो भले रह पाता होगा। इतना अवश्य है कि मुझे तंग नहीं करते हैं। उस दिन श्रीव्रजराज-सदन गयी थी। वह सदन तो सदा भरा रहता है और लालजी सदनमें हों तो उनके सब मित्र, व्रजके अधिक घरोंकी बड़ी-बूढ़ियाँ, सासुओंका समूह वहीं रहता है। गोप भी भीतर आते ही रहते हैं। ऐसेमें कोई बहू खुले मुँह जा सकती है।

मैंने श्रीरानी माँ और व्रजेश्वरी माँकी पद-वन्दना की। इतनेमें लालजीको जाने क्या सूझा, वे मेरे सामने ही आ खड़े हुए। वे मेरे अपने आँगनमें होते तो मैं कोई उनसे घूंघट करती हूँ; किंतु वहाँ उनके अग्रज ही सामने बैठे थे। मैंने लज्जासे सिर झुका लिया। दूसरा करती भी क्या। लालजीकी ओर देखनेपर तो फिर अपनी ही सुध नहीं रह जाती।

वे झुककर मुख उठाकर मेरे घूंघटमें ही झाँकने लगे। श्रीव्रजेश्वरी माँने टोका भी उन्हें कि क्या करते हैं, तो बिना उनकी ओर देखे कह दिया– 'भाभीको देख रहा हूँ।'

भाभी कोई उनकी अनदेखो है या इसमें कोई नयी पंख निकल आयी है कि वे इस प्रकार देखने लगे थे। उनके सब सखा नटखट हैं। कई उनके समीप आ गये। किसीने कहा भी—'देखले, भद्र कहींसे कोई और तो परिवर्तित नहीं कर लाया है।'

मैंने नेत्र बन्द कर लिये। सबने घेर रखा था। आगे जा सकती नहीं थी और लालजी तो घूंघटमें झुके देखते ही जा रहे थे। उन्होंने अपनी एक अंगुलीसे मेरी नासिका टटोली, नेत्र पलकपर अंगुली रखी। बोले—'भाभी गूँगी हो गयी है।'

'अब इसकी चिकित्सा करानी पड़ेगी।' पता नहीं किसने कहा, किंतु मैं भयसे काँप गयी कि पता नहीं अब ये लोग क्या करनेवाले हैं। मैंने बहुत अनुरोध भरे स्वरमें धीरे-से कहा—'लालजी !'

'भाभी तो हंसिनी जैसा कूजती है।' कहकर ताली बजाकर हँसने लगे। मुझे छुट्टी मिल गयी। रानी माँने तनिक झिड़क भी दिया था— 'बेचारी बहूको तंग मत करो सब।'

लेकिन तंग तो इन्होंने मुझे कभी नहीं किया। ये जो कुछ करते हैं, उससे कोई तंग होती होगी, यह तो मुझे नहीं लगता है। अपने घरमें ही हम आठ हैं। मुझसे छोटी हेमा बहिनको तो कोई तंग क्या करेगा। वे पूजा-पाठमें ही लगी रहती हैं। लालजीने उनका नाम पुजारिन भाभी क्या रख दिया, सासजी भी उन्हें पुजारिन बहू ही कहने लगीं।

उनसे छोटी कनकाने एक दिन कहा—'स्वर्णा जीजी, लालजी केवल तुम्हारा संकोच कर लेते हैं।'

कनका कभी-कभी मेरा नाम ले लेती है। नहीं तो सासजी भी मुझे 'बड़ी' ही कहती हैं और लालजीको चिढ़ाना होता है तो चारों ओर घूम-घूमकर देखेंगे, कहेंगे—'भाभी, तुम किधरसे बड़ी हो ?'

'तुमसे तो छोटी हूँ।' मेरी यह बात कभी नहीं मानी उन्होंने। सिर हिलाते हैं और उनका वह घुंघराली अलकों भरा चन्द्रमुख जब सिर हिलानेसे अलकोंसे घिर जाता है, कपोलोंपर कुण्डल लहरा उठते हैं, वह उनकी छटा।

मैं वयमें सचमुच उनसे छोटी हूँ; किंतु कहते हैं—'भाभी छोटी नहीं होती। मैया कहती है कि भाभी बड़ी होती है।'

'इसीलिए घूम-घूमकर चारों ओरसे देखते हो कि मैं किधरसे बड़ी हूँ ?' मैंने बात भी पूरी नहीं की थी—

'वैसी बड़ी नहीं, बड़ेवाली बड़ी !' हँसना-ताली बजाना, कूदना तो उनका सहज स्वभाव है ! उनकी इस बातपर मुझे, मेरी बहिनोंको ही नहीं, सासजीको भी हँसी आ गयी।

कनकासे छोटी शुभ्राको चिढ़ाते हैं—'तुझे भद्र दादाके समीप ले चलूँ ?' वह बेचारी लाजसे लाल-लाल हो उठती है।

'इसे क्या वनमें ले जानेवाले हो ?' मैंने हँसते टोक दिया।'

'हाँ' लालजी भला कहीं झेपते हैं। उलटे उसीसे पूछने लगे—'भाभी, वनमें चलेगी ?'

'तुम्हारे साथ गाय चराने ?' शुभ्रासे छोटी काञ्चनाने पूछ लिया।

'तुम्हें नहीं ले जाऊँगा।' सिर हिला दिया।

'इसने कोई अपराध किया है ?' मैं बीचमें बोली। लगा था कि काञ्चना इनकी बात सुनकर हतप्रभ हो गयी है।

'यह भाभी वहाँ भी मुझे पकड़कर बैठा लेगी।' कहने लगे–'यहीं मुझे छोड़ती नहीं, कभी अलकोंमें फूल लगाना है, कभी तिलक ठीक करना है। वहाँ इसे ढेरों पुष्प-पंख मिल जायेंगे तो यह मानेगी।'

'तुम्हारा और तोकका भी शृङ्गार करूँगी।' काञ्चनाने कहा।

'और भद्रका भी ?' चिढ़ाना तो इनका स्वभाव ही है।

'अच्छा, तुम ले तो चलो !' इस बार हिरण्या समीप आ गयी।

'भाभी, तुम तो वहाँ खो जाओगी।' ऐसा मुख बनाया कि सब हँसीसे दुहरी होने लगीं।

इन्होंने हिरण्याका नाम हरिणियाँ कर दिया है। उसे कहते हैं—'भाभी, वनमें बहुत-बहुत हरिणियाँ हैं। भद्र उनमें तुम्हें कहाँ ढूँढ़ेगा ? तुम कहीं छलाँग लगाकर भाग जाओगी तब ?'

हिरण्या तनिक चपल है और उसकी इस चपलतापर ये बार-बार व्यंग करते हैं; किंतु सबसे अधिक तंग करते हैं सबसे छोटी खर्वाको। वह दुबली-पतली है, नाटी है, अतः इनकी खिलौना भाभी है। उससे भी इनके साथ खेले बिना रहा नहीं जाता।

खर्वाको सासजी ह्रस्वा कहती हैं तो वह सबके लिए ह्रस्वा ही है और वह लालजीको देवर ही कहती है। मैंने कहा भी—'लालजी कहना चाहिये।'

'बड़े लालजी' वह अधर फड़का लेती है—'मुझे तंग कर लेते हैं। मैं नहीं कहती लालजी।' बहुत बच्ची है। लालजीसे तो बहुत ही छोटी है। अभी उसे ठिकानेसे वस्त्र पहिनने भी कहाँ आता है। ऊँचाईमें छोटी, पतली होनेसे नन्ही बच्ची ही लगती है।

लालजी भी मुझे तो बालक ही लगते हैं। खर्वाको दोनों भुजाओंमें उठाकर गोल-गोल नाचने लगते हैं। उसे उठाकर ही एक दिन चल पड़े। वह तो रोने-रोनेको हो आयी। मैंने पूछा—'इसे कहाँ ले जा रहे हो ?

'बाबाके पास।' ऐसे कह गये जैसे कोई बात ही नहीं है।

'क्यों ?' मैं चौंक गयी।

'बाबाको दिखाऊँगा भाभी।' बोलते ही गये—'ताऊको, चाचाको, माँको, मैयाको—सबको दिखाऊँगा।'

'अब दया करो। सबने तुम्हारी यह भाभी देखी है।' मैंने कहा—'तुम अपनी बहू ले आओ तो इस प्रकार गोदमें उठाकर सबको दिखा आना।'

'तू ले आ उसे।' इनको तो किसी बातसे हिचकना ही नहीं आता।

'उसे तो बाबा और श्रीव्रजेश्वरी माँ लावेंगो।' मैं और क्या कहूँ 'मैं माँसे तुम्हारी बात कह दूँगी।'

सचमुच मेरा हृदय उमड़ उठता है। बड़ी उमंग उठती है–लालजीका विवाह हो जाता झटपट। इनकी बहू आ जाती। वह बहू—उन श्रीकीर्ति-कुमारीको अपने बीच पानेको तो जी तरस-तरस जाता है। वे लालजीसे सटकर खड़ी होंगी इनके बायें भागमें, जैसे मन उस छविको देखते ही रहना चाहता है।

हममें सबसे छोटी और बच्ची होनेपर भी खर्वा मुझे सबसे अधिक भाग्यशालिनी लगती है। लालजी से रूठ भी वही सकती है। जो सबसे अधिक स्नेहभाजना है, वही तो रूठ सकती है। उसे गुदगुदाकर, भुजाओंसे पकड़कर गोल-गोल घुमाकर मना भी लेते हैं और चोटी खींचकर खिझा भी देते हैं ये।

'मैं अपनी खिलौना भाभीके साथ खेलूँगा।' दिन भर वनमें सखाओंके साथ खेल-कूदकर जी नहीं भरता होगा, सायंकाल अपने सदनसे कलेऊ करके चाहे जब भाग आते हैं। आते हैं तो हम सभीको आनन्द देने; किंतु नाम खर्वाका ही लेते हैं।

यह खर्वा भी सबेरे-से उदास हो जाती है। सबेरे-से कई-कई बार गवाक्षपर जाती है। सायं वंशीध्वनि सुनते ही दौड़ती है गवाक्षकी ओर। हम सबकी दशा इससे कुछ अच्छी नहीं है। सबके नेत्र प्रतीक्षा करते रहते हैं सायंकाल मयूर-मुकुटकी लहरान देखनेको।

'लालजी, तुमने आज बहुत देर कर दी।' शुभ्राने कह दिया एक सायंकाल—'स्वर्णा जीजी और तुम्हारी खिलौना भाभी जाने कबसे तुम्हारा मार्ग देख रही थीं।'

'तुम तो भद्रका मार्ग देखती होगी।' चिढ़ा दिया बेचारीको और

चिढ़ा तो दिया खर्वाको भी। उससे पूछने ही लगे—'खिलौना भाभी, तुम सब दादाका मार्ग नहीं देख रही थीं ?'

'हम तो किसीका मार्ग नहीं देख रही थीं।' खर्वा झल्ला लेती है इनसे। 'गवाक्षपर तो हम गायें देखने बैठती है। बछड़े कूदते बहुत भले लगते हैं।'

'दादा भला नहीं लगता ?' भला इनके मुँह लगकर कोई जीत सकती है; किंतु कितने स्नेहमय, कितने ममतामय। सबके लिए कोई-न-कोई पुष्प, फल आदि इनको प्रतिदिन लाना है। सबको हँसाकर, प्रसन्न करके फिर ऐसे दौड़ जायँगे कि पुकारती रहो, पीछे भी नहीं देखेंगे।

मैं तो अपने घरकी ही कहती रह गयी। उस दिन उत्पला जीजी कह रही थीं—'लालजी बहुत नटखट हैं। ऐसे छेड़ते हैं कि पूछो मत।'

उत्पला जीजी सबसे बड़ी हैं। हमारे सबसे बड़े जेठजीकी बहू और जेठजीके समान ही सीधी। जेठजी अपने नाम (अर्जुन) के समान सरल, सीधे भोले बाबा और उत्पला जीजी भी उन्हें वैसी ही मिली हैं। इन्हें भला लालजीने क्या छेड़ा होगा ?

'चपल तो हैं; किंतु अपनी सबसे बड़ी भाभीको भला क्या छेड़ेंगे।' मैंने कहा—'तंग तो वे किसीको नहीं करते।'

'तंग तो नहीं करते; किंतु उनका भोलापन कभी-कभी बहुत तंग करता है।' जीजी हँस भी रही थीं और खीझ भी रही थीं—'भरे घरमें सबके सामने, सासुजी और उनके दादा भी थे, मेरा आँचल ही खींचने लगे।'

'बुरी बात है।' मैं सचमुच गम्भीर हो गयी। 'लालजी ऐसे बुरे तो नहीं हैं।'

'बुरे ही होते तो सबके सामने ऐसा करते।' जीजी हँस भी रही थीं—'कहने लगे, दूध पीऊँगा।'

अब हम सबके लिए हँसी रोकना कठिन हो गया। मैंने किसी प्रकार कहा—'अभी बालक ही तो हैं।'

'मैंने सासजीकी ओर संकेत कर दिया—'दूध तुम्हारी ताई पिला सकती हैं।'

'बूढ़ा दूध पीकर तो दादा बूढ़ा हो गया है।' अब उन्हें कोई कैसे समझावे कि दूध बूढ़ा-जवान नहीं हुआ करता।

सब बड़े जेठजी को बूढ़ा दादा कहते हैं, यह जानती हूँ; किंतु लालजीने उनके बूढ़े होनेका यह अटपटा कारण निकाल लिया। उनका ठिकाना नहीं है। सुना है कि वे बछड़ियोंके थनोंमें मुख लगाते हैं तो वे अजातवत्सा भी दूध झरने लगती हैं। उत्पला जीजी हम सबके समान ही हैं। अभी उनके आँचलमें दूध कहाँ; किंतु लालजीने मुख लगाया ही होता तो ?

उत्पला जीजीका स्वर भरा-भरा था और आँचल तो मुझे अपना भारी लगने लगा था। लालजी दूध पीना चाहें—किसके आँचल भीग नहीं उठेंगे।

हम सबका सौभाग्य तो दुगुना है। हमारा देवर तोक उनकी दूसरी मूर्ति है। अनेक बार भ्रम हो जाता है उसमें। वह भी पीताम्वर ही पहनता है और उसकी अलकोंमें मयूर पिच्छ तो वे ही लगाते हैं। तोक उनका सबसे छोटा भाई, सबसे अधिक स्नेह-भाजन। उसीसे तो हम सबोंको उन मयूर-मुकुटीकी दिन भरकी वन-क्रीड़ा प्रतिदिन सुननेको मिलती है।

रात्रिके प्रथम प्रहरमें हमारा आँगन भर जाता है। तोककी दूसरे घरोंकी भाभियाँ भी आ जुटती हैं। बड़ी-बूढ़ियोंको तो गोदोहनके पश्चात् दूध गरम करना, दही जमाना, घरके पुरुषोंको भोजन कराना रहता है। हम सबोंको कोई कुछ करने नहीं देता, अतः हम एकत्र हो जाती हैं।

तोक सबसे छोटा है, दुर्बल है। दिनमें दौड़-धूपकर थक जाता होगा। हम उसे फुसला भी लेती हैं। वह हममें किसीकी गोदमें बैठकर, बीच-बीचमें खड़े होकर दिनभरकी वनचर्या सुनाता है।

वही कहता है—'दाऊ दादा तो चुपचाप बैठा रहता है। वह किसीको कुछ नहीं कहता। कोई झगड़े तो उसे अपने पास बुला लेता है। कन्हाई

दादा सबसे दुर्बल है। वह तो मुझसे भी लड़ता है तो मैं उसे पटक लेता हूँ; किंतु वह सब खेलमें आगे कूदता है। प्रायः हारता भी वही है और अपनी हार भी कठिनाईसे मानता है।'

'उसे कोई डाँटता नहीं ?' तोकको उत्साहित करनेको कोई कुछ कह देती है।

'उसे कौन डाँटेगा ?' तोकका अपने उस अग्रजपर उचित गर्व है— 'वह हमारा युवराज है। केवल भद्र दादाको वह मानता है। उससे श्रीदाम झगड़ता है; किंतु उसे तो कन्हाई दादा चिढ़ा दिया करता है।'

तोक हमारे मध्य बैठकर बोलता है तो लगता है कि लालजी स्वयं बैठकर अपना गुणगान कर रहे हैं। वे हमारे मध्य न भी बैठे हों तब भी हमारे हृदयमें तो वे नाचते, हँसते ही रहते हैं। उन्हें क्या क्षण भरको भी भूला जा सकता है।

पितृवर्ग

महर्षि शाण्डिल्य–

विश्वका एक विधान है और विश्वस्रष्टा भी उस विधानका वशवर्ती है। लेकिन वह विधान ऐसा अद्‌भुत है कि स्वयं स्रष्टा भी उसे समझ नहीं पाता। उस विधानका अनुवर्तन ही किया जा सकता है। उसका अतिक्रमण तो सम्भव ही नहीं है, उसे समझने जाकर भी अपनी विडम्बना ही होती है।

यह विडम्बना नहीं है कि भगवान् धूर्जटिके साक्षात् शिष्य, जनपदोंसे अत्यधिक दूर अगम्यप्राय हिमदेशमें आश्रम बनानेवाले शाण्डिल्यको लोकालय प्रिय हो गया। मानवोंके मध्य आकर मैं भागवत धर्मका प्रवर्तक बना। लुप्तप्राय पाञ्चरात्रागमका पुनरुद्धार करने लगा।

इससे भी बड़ी विडम्बना कि देवर्षि नारदके परमप्रिय तथा भागवत धर्मके पुनरुद्धारक आचार्यको विश्वस्रष्टाने पौरोहित्य दे दिया। सामान्य त्यागी ब्राह्मण भी किसीका पुरोहित बनना स्वीकार नहीं करता और शाण्डिल्य किसी सम्राट्‌का नहीं, गोपोंका पुरोहित बना।

यहाँतक गिरता आया शाण्डिल्य; किंतु स्वयं विश्व-विधाता जिस सौभाग्यकी कल्पनातक न कर सकें, वह अत्यन्त सहज सुलभ हो गया शाण्डिल्यके लिए। इसीलिए श्रुति कहती है कि परमपुरुष ही एकमात्र सत्य हैं। वह सर्वमय, सर्वरूप हैं। शाण्डिल्यका अनुभव है कि वे लीलामय हैं। बहुत विनोदी हैं।

क्योंकि वही सर्वरूप हैं, उनके लिए तुच्छ-महान् कुछ है ही नहीं। वे तृणसे भी अपना शृङ्गार कर लेते हैं, उसे भी मुकुटाभरण बना लेते हैं और विश्वस्रष्टाओंको भी तृणतुच्छ करते रहते हैं।

वे परमपुरुष—अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डोंके संचालकोंके भी परमाराध्य क्रीड़ाप्रिय न होते तो नन्दनन्दन बनकर व्रजमें पधारते और अपना आचार्य बनानेको शाण्डिल्य ही मिलता उन्हें। गोप-पौरोहित्यको उन्होंने शाण्डिल्यके लिए ब्रह्मासनसे भी विपुल वन्दनीय बना दिया।

नन्दव्रज उनका, व्रजके पशु-पक्षीतक उनके नित्यलोकके शाश्वत सहचर, अतः वे इनके मध्य तो सदा रहते ही हैं। व्रजमें वे व्यक्त हुए, यह कोई अलौकिक या अनहोनी बात नहीं; किंतु भगवान् ब्रह्मा भी जहाँ तृण-तरु कुछ होनेकी आकांक्षा करें, उस व्रजका आचार्य बना दिया शाण्डिल्यको ? ऐसा तो कोई तप, कोई साधना मेरी नहीं थी।

उन्हें तप—कितना भी युगान्तव्यापी कठोर तप आकर्षित नहीं कर पाता। कोई कैसी भी साधना उनके अनुग्रहकी अधिकारिणी बनपानेमें अक्षम है।

शाण्डिल्यकी एक ही योग्यता कि भगवान् गंगाधरने इसपर अनुग्रह किया। इसे अपना शिष्यत्व प्रदान किया। वे नीलकण्ठ सदासे श्रीकृष्णके प्राण हैं। दोनों परस्पर अभिन्न हैं। उन आशुतोषको सम्मान देनेके लिए ही शाण्डिल्यको उन्होंने अपना, अपने व्रजका आचार्य बना लिया।

अब वे लीलामय जो करा रहे हैं, उसे चुपचाप करते जाना है शाण्डिल्यको। वे तो मयूर पिच्छ मस्तकपर धारण करते हैं, शाण्डिल्य तो फिर भी ब्राह्मण है और इसे उन्होंने अपना आचार्य बनाया है। इसे अस्वीकार करनेका अधिकार नहीं है। वे जो सम्मान देते हैं, इसे स्वीकार ही करना है।

अत्यन्त अशोभनीय होता यदि मैं सम्पूर्ण विप्रवर्ग एवं गोपोंके मध्य खुलकर हँसता और हँसता ही चला जाता। बड़ी कठिनाईसे अपने भीतर उमड़ते हास्यको मैं तब रोकपाया जब मुझे श्रुति स्मरण आयी—'अणोरणीयान् !'

अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड जिसके भीतर हैं, उसे अपनी अञ्जलिमें सम्हाले थे नन्दराय जन्मसंस्कारके समय। इन्दीवर इतना मृदुल कभी नहीं होता। उस इन्दीवरसे तो राशि-राशि ज्योति किरणें निकल रही थीं। वह जो अपने अंशसे वामन बना तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी छोटा पड़ गया उसे तीन पदमें मापनेको। वह साक्षात् था मेरे और इतना नन्हा, इतना मृदुल।

जातकर्म संस्कारके लिए कुशाग्रसे जलसीकर भी उसपर डालते हाथ काँपे नहीं, यह सावधानी रखनी थी मुझे। वह तो अपने नेत्रोंकी पलकें भी नहीं झपकाता था। देख रहा था, एक टक देखे जा रहा था।

भूम्योपवेशमें भी कोई विशेष बात नहीं हुई। वह नन्दरायके करोंमें ही रहा। विशेष बात तो तब हुई जब बैठने लगा था। तब भी प्रायः लेटा रहता था। पेटके बल थोड़ा खिसकता था। मैं नन्दभवन गया तो व्रजेश्वरीने बालको मेरे पैरोंके समीप बैठा दिया। रोहिणीजीने कृष्णचन्द्रको पैरोंपर लिटा ही देना चाहा। मैंने बाधा दी तो पैरोंके समीप भूमिपर लिटा दिया और आग्रह किया—'दो क्षण इसे अपने श्रीचरणोंके समीप पड़े रहने दें। सम्भव है, स्वयं चरणस्पर्श कर ले। यह इसके सौभाग्योदयका प्रथम दिन होगा।'

बाधा देनेका मेरा स्वत्व नहीं है, जानता था। नेत्र तो कहीं अन्यत्र जा नहीं सकते थे; किंतु ब्राह्मण अपने श्रौतज्ञानको भूल भी तो नहीं सकता। बल—साक्षात् अनन्त मेरे दाहिने चरणके समीप शान्त बैठे थे। वे तनिक और पास खिसके तो मेरी दृष्टि उधर चली गयी। हृदय हिचका—'भगवान् महेश्वरके भी गुरु ये मेरा चरणस्पर्श करेंगे ?'

मैं उन गौरसुन्दरकी ओर देखता हिचक—संकोचमें पड़ा था कि चरण उठा लूँ ऊपर या नहीं, इतनेमें लीलामय नन्दनन्दन कब पेटके बल तनिक सरक आया, मैं देख नहीं सका। उसने तो अपना नन्हा दक्षिण कर मेरे पदपर रखा और पदकी कनिष्ठिका अपने छोटे मुखमें ले ली। पादांगुष्ठ तो उसके मुखमें आ नहीं सकता था।

मेरा सम्पूर्ण शरीर जड़के समान हो गया। उस समय मैं अपने नेत्रपलक भी नहीं हिला सकता था। अपने इस नन्हें लीलामय यजमानको अङ्कमें उठा लूँ—बड़ी तीव्र कामना; किंतु कर उठानेमें भी असमर्थ ! सहसा शरीरसे स्वेदकी धारा चलने लगी। नेत्र बरसने लगे। रोम-रोम उत्थित हो गया और देह ऐसे काँपने लगा जैसे किसी तीव्र ज्वरार्तका भी नहीं काँपता होगा।

रोहिणीजी व्रजेश्वरीसे कुछ कहकर प्रसन्न हो रही थीं। दोनोंका ध्यान मेरी दशाकी ओर कुछ देरसे ही गया। दोनों नन्दलालको देखनेमें तल्लीन थीं और वह नन्हें मुखमें मेरे पदकी कनिष्ठिका लिये उसे चूसनेमें दत्तचित्त था।

लीलाभिनय सही; किन्तु बल विश्वगुरु हैं। जीवोंके उन परमाचार्यको

मुझपर दया आयी होगी। उन्होंने अपना दक्षिण कर मेरे दाहिने पदपर धीरे-से रखा और मेरी ओर दृष्टि उठाकर अपने बाल स्वरमें केवल कुछ ध्वनि की। साथ ही वामकरसे अपने अनुजकी ओर संकेत किया।

सम्भवत: वे कहना चाहते थे—'इसकी लीलामें बाधक मत बनो! अपनेको स्थिर करो और आचार्य बने रहो। यह अश्रु, स्वेद, कम्प आचार्यके अनुरूप नहीं है।'

मैं उनकी दृष्टिका संकेत समझ गया। उनके स्पर्शने मुझे शक्ति दी। उनका तो संकल्प ही अनन्त शक्ति है, उनके उस दिनके संकेतने इस शाण्डिल्यको इतनी शक्ति दे दी कि यह फिर कभी विचलित नहीं हुआ। उनके स्पर्शकी ही शक्ति कि मेरी वाणी आगे कभी मन्त्रपाठके समय कण्ठ भर आनेसे स्खलित नहीं हुई। किसी कर्ममें मुझसे कोई त्रुटि आगे नहीं बनी।

यद्यपि ऐसे अवसर तो अब आये दिन आते रहते हैं। श्रीनन्दराय परम श्रद्धालु हैं और जो ब्रह्मण्यदेव उनके कुमार बनकर प्रगट हुए हैं, जीवमें उनके अनुग्रहसे श्रद्धा आती है। अत: शाण्डिल्यको तो उनकी प्रगति तथा सेवा आये दिन स्वीकार करनी है। स्वस्थ स्वरमें उनके अलकमण्डित मस्तकपर कर रखकर आशीर्वाद देते रहना है। उनके लिए स्वस्ति पाठ करते उनको जल-सिंचित करना है।

जो करना है, करना तो पड़ता ही है; किंतु अब भी शाण्डिल्य एक क्षणको हिचक जाता है जब अनन्त प्रभु अपने इस शिशु रूपमें इसके पदोंपर मस्तक रखते हैं और उनके मस्तकपर कर रखकर आशीर्वाद देनेका अवसर आता है।

इतनेसे ही छुटकारा नहीं है। लीलामय हैं श्रीकृष्ण और श्रद्धाकी मूर्ति हैं श्रीव्रजेश्वरी। मैं नन्दसदन गया। संकोचके कारण अपनी पादुका मैंने कक्ष-द्वारपर छोड़ दी। उस कक्षमें पादुका लेकर जानेकी बात सोचना ही अपराध लगा। सुरेन्द्र नन्द-पौरिपर मस्तक रखनेका भी सौभाग्य नहीं पाते। मेरे साक्षात् गुरु भगवान् वृषभध्वजको एक बड़ी सुविधा है, वे पादुका धारण ही नहीं करते। जिस द्वारपर वे देवदेवेश नग्न चरण पधारे थे

भिक्षुक बनकर, उस भवनमें मैं पादुका पहनकर चला गया, यही बहुत धृष्टता थी। जाना पड़ा, इसलिए चला गया, पर कक्षमें पादुका—यह साहस नहीं कर सका।

मेरा पूजन तो होना ही था। पूजन-सत्कारके पश्चात् मैंने चलनेकी इच्छा प्रकट की तो श्रीनन्दरानीने कृष्णचन्द्रसे कह दिया—'नीलमणि, महर्षिकी पादुका तो उठा ला लाल!'

अब मेरा मना करना कोई सुनता? श्रीव्रजेश्वरीका वह नन्हा दिगम्बर नीलमणि तो सुनते उठकर दौड़ गया। दो वर्षसे भी कमका वह सुकुमार। उसने एक करसे पहले एक पादुका उठाकर अपने मस्तकपर रखी और फिर दूसरे करसे उठाकर दूसरी पादुका रखली सिरपर। दोनों करोंसे सिरपर रखकर पादुकाओंको पकड़े वह उठा और जब आने लगा, मुझे लगा कि पादुकाएँ उसके लिए बहुत भारी हैं। उसका नन्हा मुख लाल हो उठा था। उस कमल मुखपर स्वेद सीकर झलमला आये थे।

शाण्डिल्य न उठ सकता था, न रोक सकता था। उसे केवल देखते रहना था। व्रजेश्वरीने पुत्रको प्रशंसा भरी दृष्टिसे देखा। वह भी मैयाकी ओर ही देखता आ रहा था। समीप आकर भी उसने मुझे अपनी पादुकाएँ करसे स्पर्श नहीं करने दीं। मैंने हाथ बढ़ाया तो वह दो पद हट गया।

व्रजेश्वरीका अनुरोध माननेके अतिरिक्त उपाय नहीं था। मैंने हाथ समेट लिया तो वह वैसे ही मस्तकपर पादुका लिए ही मेरे सम्मुख बैठ गया। एक-एक करके उसने पादुकाएँ भूमिपर रखीं और मेरे पैरमें पहनायीं। दोनों करोंसे मेरे पैर उठाकर उन्हें पादुका पर धरता रहा।

यह सब शाण्डिल्यको अनेक-अनेक बार सहना पड़ा है। अनेक बार दोनों भाई दौड़ पड़ते हैं पादुका लेने। मैं इससे बचनेके लिए कक्षमें पादुका पहने जानेकी धृष्टता भी करने लगा; किंतु ब्राह्मणको तो चरण-प्रक्षालन कराने ही पड़ते हैं। चपल बालक पादुका दूर हटा देते हैं। उसे स्वयं उठाकर लानेकी क्रीड़ा उन्हें प्रिय हो गयी है।

अनेक बार राम-श्याम सखाओंके साथ मेरे आश्रम अचानक आ गये। गोकुलसे नन्दीश्वरपुर आनेपर तो उन्होंने क्रम ही बना लिया प्रातः-सायं

प्रणाम करने आनेका। वे आते हैं तो उनके सखा भी आवेंगे। जब वे पुरुषोत्तम साक्षात् पधारते हैं—शाण्डिल्यका कौन-सा आह्निक कृत्य ऐसा है कि वह उसके करनेमें व्यस्त बना रहे ? उनका आगमन ही तो समस्त कृत्योंकी परिपूर्णता है।

वे आते हैं। उनके सखा आते हैं। शाण्डिल्यकी यही अर्चा कि वह उन सब बालकोंकी प्रणति स्वीकार करे। उनको आशीर्वाद दे।

ब्राह्मणको रिक्तहस्त प्रणाम नहीं करना चाहिये, यह बात मेरे इन नन्हें यजमानोंको भी समझानेकी आवश्यकता नहीं है। प्रातःकाल ये आते हैं तो माताओंसे इतना कुछ लेकर आते हैं, जिससे आश्रम धेनुओंतककी तृप्ति हो जाती है और सायंकाल वनसे लौटते हैं तो आश्रमको पुष्पों, फलोंसे परिपूर्ण कर जाते हैं।

अनेक ऋषि-मुनियोंने शाण्डिल्यके समीप अपने आश्रम बना लिये, यह किसकी विशेषता है, शाण्डिल्य जानता है; किंतु शाण्डिल्यके यजमान इतने उदार, सावधान हैं कि शाण्डिल्यके लिए कोई अवसर नहीं समीप वसे किसी ब्राह्मणको कोई उपहार देनेका।

व्रजमें तो पशु-पक्षीतकको एक हो के करका उपहार चाहिये और शाण्डिल्यका वह नन्हा यजमान इतना उदार, इतना सावधान कि किसी छुद्रतमको भी भूला नहीं करता। उससे अपेक्षा करनेवाला कभी निराश हो नहीं सकता।

अग्रजके साथ कृष्णचन्द्र जबसे वनमें जाने लगे, हमारे आश्रम भी दिन भर सुनसान ही रहते हैं। पशु-पक्षीतक भाग जाते हैं उस भुवन-मोहनके साथ।

शाण्डिल्यको तो व्रजनव-युवराजने सब ओरसे परिपूर्ण कर दिया है। देवर्षि तो विनोदी हैं ही, परम गम्भीर कुमारोंने कह दिया—'महर्षि, हम चारों सदा इसीलिए अल्पवयस्क बालक बने रहते आये हैं कि परम पुरुषके आचार्य तो कृपा करके हम बालकोंको पादाभिवादनका अवसर और आशीर्वाद दें।'

अब मैं उन भवाग्रजोंको आशीर्वाद देनेवाला बन गया। ये लीलामय जिसे जो चाहें बना दें। इन्हींको प्रतिदिन दोनों समय शाण्डिल्यका आशीर्वाद आवश्यक लगता है तो उस आशीर्वादको ब्रह्मपुत्र भी महान् मानें, यह अत्यन्त सहज है।

सब सदा सुशोभन नहीं होता; किंतु श्रीकृष्णकी सन्निधि मिले तो अत्यन्त अशोभन भी सुशोभन हो जाता है। पवित्र भूमि भारतमें एक भी मुनि-आश्रम ऐसा नहीं मिलेगा, जहाँ पक्षियोंका कोलाहल न गूंजता हो; जहाँ मृग तथा वन पशु घूमते, खेलते, विश्राम करते न मिलें; किंतु भारतके भी हृदयस्थल इस व्रजमें शाण्डिल्यका, इसके समीप बसे ऋषि-मुनियोंका आश्रम प्राय: सुनसान रहता है। आश्रम धेनुओंके अतिरिक्त कोई पशु तो दूर, भृङ्ग और मक्षिका भी कभी इधर भूल-भटककर आते नहीं। यह कोई सुशोभन स्थिति है ?

मेरे नीलसुन्दर यजमानने इसे भी अत्यन्त गौरवशालिनी स्थिति बना दी। वह सखाओंके साथ आता है तो पशु-पक्षियोंका समुदाय भी आता है; किंतु गौरव तो उसने शाण्डिल्यको यह दे दिया है कि मेरे आश्रमके आस-पास पहुँचे कीट-पतङ्गतकको वह अपनी सन्निधिका अधिकारी मान लेता है। अविलम्ब उन्हें अपना सामीप्य दे देता है।

विप्रवर्ग–

वेदाध्ययन, दानग्रहण और अध्ययन ब्राह्मणके लिए केवल तब प्रशस्त है, जब वह अध्यापन भी करता हो और दान देता भी हो। अन्यथा उसे शिलोञ्छ वृत्ति बनकर तप-मनन निरत एकान्तसेवी होना चाहिये।

नन्दव्रज आकर हम सबके लिए न अध्यापनकी सुविधा है, न किसीको कुछ भी देनेका अवसर है। गोपबालक बहुत छोटी वयसे गोचारण करने लगते हैं। गोप और गोपनायकोंकी उदारता, सावधानी तथा श्रद्धाकी सीमा नहीं है। हम चाहें या न चाहें, उनके दानने हमें परिग्रही बना दिया है। हमारे आश्रमोंमें नन्दराय विभिन्न वस्तुएँ तब भी भेजते रहते हैं, जब दानका कोई अवसर नहीं होता।

कहीं भी कभी ब्राह्मणने संकोच नहीं किया। सुरेन्द्रके समीप भी हम दो क्षण नहीं टिकते यदि ऐसी परिस्थिति बनती कि हमारे लिए त्याग-तपका अवसर ही नहीं हो; किंतु नन्दव्रज छोड़कर हम कहीं एक दिनको भी जा नहीं पाते।

त्याग-तितीक्षा, व्रत-संयम, ज्ञान-ध्यान, योग-यज्ञका परम फल श्रीनन्दनन्दनके चरणोंकी झाँकी। इसे छोड़कर तो ब्रह्मलोकका निवास भी व्यर्थ है।

कोटि-कोटि जन्मोंके योग-यज्ञ, जप-तपके पश्चात् भी कहीं मयूर-मुकुटी हृदयमें एक पलको आ जाय तो बहुत बड़ा लाभ मिला। जीवके किसी भी और कितने भी दीर्घकालीन साधनका फल तो यह श्रीव्रजेन्द्रनन्दन बनता नहीं। यह तो कृपा करके ही किसीके अन्तःकरणमें आता है। यह जहाँ नेत्रोंके सम्मुख है, उस स्थल, उस अवसरको त्यागकर कोई कहाँ जायगा? जाकर जो कुछ करेगा, वह सुरसरि त्यागकर किसी अपवित्र आबिल, शूकर-स्नानोदकमें निमज्जन जैसा ही तो होगा।

सम्पूर्ण साधनोंका परम फल श्रीकृष्णके चारु चरणोंका चिन्तन और

यहाँ तो वे हर-हृदय-मन्दिर-धन-मंजु-चरण प्रत्यक्ष प्राप्त होते हैं, अतः नन्दव्रजका निवास ही निखिल भुवनमें सर्वश्रेष्ठ साधन हो गया है। ऐसा न होता तो देवर्षि नारद, सनकादि कुमार और भगवान भूतनाथ क्या भंगकी तरंगमें ही अपने दिव्य धाम त्यागकर बार-बार व्रजके धूलि भरे पथमें भटकने आया करते ?

यह अचिन्त्य अतर्क्य सौभाग्य हमें यहाँ सुलभ है, इसीसे केवल परिग्रही, दानजीवी, ब्राह्मण-धर्मच्युत, तप-ध्यान विमुख बने रहनेको विवश होकर भी व्रजसे कहीं अन्यत्र जानेकी बात मनमें भी लाना अपराध लगता है। यह तो ऐसा होगा जैसे कोई बैकुण्ठ त्यागकर यमपुरीके नरक-निवासकी कामना करे।

तप-ध्यानको अवसर तो यहाँ नहीं है। कोई साधारण एक दिनका व्रत भी कठिन हो जाता है। गोप श्रद्धालु हैं, गोपियाँ भी व्याघात नहीं बनेंगी; किंतु बालकोंको कोई कैसे रोकेगा ? यहाँके किसी भी बालकके मुखसे गिरा अन्नकण प्राप्त हो तो तप और जनलोकके महातापस भी अपनी युगान्त व्यापी तपस्या त्याग पारण कर लेना परम सौभाग्य मानेंगे उस प्रसादसे और यहाँ तो स्वयं श्रीनन्दनन्दन चाहे जब कुछ लिये आ जाते हैं। श्रद्धा सहित पदोंमें मस्तक रखकर अपने करोंसे मुखमें देने लगते हैं वह अमृतोपहार। तब कोई मुख बन्द करके व्रती बना रह सकता है ? किसीको तब क्या व्रतका स्मरण भी रह सकता है ?

गोप सब सात्विक हैं। राजस-तामस वृत्तिका ही व्रजमें प्रवेश नहीं; किंतु कभी कोई बालक कुछ निषिद्ध ही ले आये—सुना है कि बालक एक बार राम-श्यामको लेकर तालवनमें गये थे। पक्वतालोंकी सुरभिने उन्हें आकृष्ट किया था; किंतु ताल फल केवल उनकी कन्दुक क्रीड़ा बनकर रह गये। उन कठोर फलोंमें कुछ आस्वाद्य भी है, यह जाननेका भी प्रयत्न उन्होंने नहीं किया। अब मानलें कि उन फलोंको लिये वे आ ही जाते, कौन-सा तापस, कर्मनिष्ठ है जो उनके करोंसे बढ़ाये जानेपर उन तालफलोंसे मुख हटा लेता ? त्रिभुवनमें कोई शौचाचार परायण है जिसके मुखसे लाला न टपक पड़े नन्दनन्दनके करोंसे ऐसे भी पदार्थ पानेका अवसर देखकर ? लेकिन बालक तो परम पावन पदार्थ ही ले आते हैं।

भोले बालक और कृष्णचन्द्र जब कहते हैं—'बाबा, हमें तो मैयाने कहा है कि मुखके एक ओरसे व्रत करले, दूसरी ओरसे खाले ! तुम भी एक ओरसे व्रत कर लो । अथवा अब इसे ग्रहण करो, रात्रिमें व्रत कर लेना । मैं भी रात्रिमें प्रतिदिन व्रत करता हूँ ।'

जैसा पंगु यहाँ व्रजमें आकर व्रत बन गया है, उससे भी असहाय हो गया है ध्यान। नेत्र भी बन्द करो तो मनमें नीलसुन्दर नृत्य करता दीखता है। व्रजराज कुमारकी वंशी ध्वनि तो सनकादिको तपोलोकसे ध्यानोत्थित कर देती है। उनके मणिनुपूरोंकी रुनझुन सुननेकी प्रतीक्षाको आप ध्यान कहें तो बस यह ध्यान यहाँ चलता रहता है—अजस्र और परिपूर्ण तल्लीनतासे चलता है।

विडम्बना साधन वञ्चित रहनेतक ही सीमित नहीं है, असाधनको अकल्पित सीमातक अपनाये रहनेको विवश बने रहनेकी है। ब्राह्मणके लिए पूजा-सत्कार स्वीकार करना कोई शोभास्पद नहीं है। यह तो उसकी विवशता है। अन्यथा यह असाधन है। सम्मानसे बचना चाहिये और अपनेसे बड़ेके द्वारा सम्मानित होना तो अपराध ही है—इसमें भी क्या दो मत होनेवाले हैं ?

किस सुर या सिद्धमें साहस है जो अपनेको श्रीकृष्णचन्द्रके स्वजनोंसे श्रेष्ठ सिद्ध करेगा ? सुरेन्द्रने किया था यह दर्प और उसे सात वर्षके नन्दनन्दनने वामकरकी कनिष्ठिकापर गोवर्धन उठाकर दलित कर दिया। सृष्टिकर्ता स्वयं इन गोपराज-तनयके श्रीचरणोंके सम्मुख शतशत प्रणिपात करते रहे। अब स्वयं इनसे और इनके स्वजनोंसे जब सत्कार, अर्चन-स्वीकारका अवसर आता है—आता ही रहता है, कोई उपाय है उससे बचनेका ?

महर्षि शाण्डिल्य महत्तम हैं। वे भगवान पुरारिके प्रत्यक्ष शिष्य हैं। उनका तप अकल्पनीय है। वे गोपराज तथा उनके तनयकी अर्चा स्वीकार करते हैं, शोभनीय है उनके लिए; किंतु हम सब साधनहीन, तपोवंचित ब्राह्मण—किया क्या जाय, कोई उपाय नहीं है। महर्षिका अनुगमन और और उनकी आज्ञाको शिरोधार्य करना ही हमारा सौभाग्य।

ये श्रीनन्दनन्दन भी लीलामय हैं। श्रुति इन्हें ठीक ही ब्रह्मण्यदेव

कहती है। श्रीनन्दरानीको तो अपने लालके लिए सबका आशीर्वाद चाहिये। उन वात्सल्य मूर्तिको समझाया ही नहीं जा सकता कि ब्रह्मा और शिव भी जिसकी कृपाकी कामना करते रहते हैं, वह निखिल ब्रह्माण्ड नायक उनकी गोदमें आया है। अतः हमें स्वयं उन लोक महेश्वरीका आशीर्वाद अपेक्षित है। वे तो अपने लालको हमारे पदोंमें रखकर हमारा आशीर्वाद उसे दिलाना चाहती हैं। उसे दिलाना चाहती हैं। उनके ये लाल भी ऐसे कि नवजात शिशु थे तब भी मैया द्वारा पदोंके समीप पहुँचाये जानेपर अपने नन्हे करोंमें पदका अंगुष्ठ अथवा कोई अंगुली पकड़ लेते थे और फिर उसे छोड़ना ही नहीं चाहते थे। इन्हें पकड़ना ही आता है, छोड़ना तो आता ही नहीं है।

श्रीनन्दनन्दनको गोप, गोपियाँ कहें चपल या नटखट। वे उनके परम स्नेह भाजन; किंतु हम विप्रोंको तो वे शील सिन्धु लगते हैं शैशवसे। ऐसा तो नहीं है कि हमको कभी उन्हें अंकमें उठानेका सौभाग्य ही न मिला हो। व्रजमें एक दिनको आये अतिथिके भी वे अपने हो जाते हैं, हम तो उनके हैं ही। वे शिशु थे, घुटनों सरकते थे तब अनेक बार हमने उन्हें अङ्कमें उठाया। श्रीनन्दराय और व्रजेश्वरी भी कहती थीं—'भगवन्; बालक अबोध है। अपराध कर दे तो क्षमा करेंगे। इसे पता नहीं क्यों उज्वल केशोंमें बहुत आकर्षण है। उनमें अंगुलियाँ उलझा लेता है या उन्हें मुट्ठीमें लेकर किलकता है।'

हमने देखा था नन्दनन्दनको वृद्ध गोपके श्मश्रु नन्ही मुट्ठीमें लेकर प्रसन्न होकर किलकारी लेते। इसमें अपमान या शिशुपर रुष्ट होने जैसी तो कोई बात नहीं है। गोपोंसे हमारी श्मश्रुके केश अधिक ही दीर्घ हैं। अवश्य यज्ञधूमने उन्हें उज्ज्वल नहीं रहने दिया, पीताभ कर दिया है। कदाचित् इसीलिए श्यामसुन्दर इनकी ओर कभी भी आकर्षित नहीं हुए। हमें तो शैशवमें भी ये शील निधान लगे। इन्होंने हममें किसीकी जटा या श्मश्रुका स्पर्श नहीं किया। हमारे ये केश इनके कर स्पर्शसे वञ्चित ही रहे।

श्रीव्रजेशनन्दनने अङ्कमें लिये जानेपर भी कभी न तो हमारे यज्ञोपवीतको मुखमें लेकर उच्छिष्ट बनाया और न कण्ठमें पड़ी रुद्राक्षकी मालापर ही अधर रखे। हमें भय इसीका लगता था कि यदि इन्होंने मालाके

दाने मुखमें लेना चाहा तो बहुत कष्ट होगा इन्हें। इनके अत्यन्त सुकुमार श्रीमुखमें रुद्राक्षका स्पर्श बहुत उत्पीड़क होगा। लेकिन ये तो केवल अपनी नन्ही अरुण मृदुल अंगुलियोंसे, प्रायः दो अंगुलियोंसे मालाका कोई दाना पकड़ लेते थे और उसीको देखनेमें लग जाते थे। हमारे समीप इन्हें वही सबसे आकर्षक वस्तु लगती थी। इनकी सुकुमार अंगुलियोंको पीड़ा नहीं होती होगी ?

तनिक बड़े हुए और हमारा यह सौभाग्य जाता नहीं। अङ्कमें आनेके स्थानपर पदोंपर मस्तक रखना और देरतक वैसे ही पड़े रहना इन्हें प्रिय हो गया। पुचकारने, उठानेपर उठते भी थे तो फिर वैसे ही सिर रखनेको झुक जाते थे।

अनेक बार गोमय-गोमूत्र सने सर्बाङ्ग, गोमय-गोमूत्र सने करपद ही भागे आते थे। नन्दराय अथवा श्रीनन्दरानी या रोहिणी माँ रोकती-पुकारती रहती थीं—'अरे, हाथ तो धो लेने दे। ऐसे महाराजके चरण भी तू मलिन बनावेगा।'

हम हो गये बड़े महाराज और ये निखिलेश्वर—कुछ कहते भी नहीं बनता था। सरलतासे ही कहना पड़ता था—'बालक भगवत्स्वरूप होते हैं। नित्य शुद्ध माने गये हैं और गोमय-गोमूत्र तो परम पवित्र है।'

बालक भगवत्स्वरूप या ये साक्षात् परम पुरुष बालस्वरूप ? पर मैया यशोदा यह सब सुने तो सिर पीट लेगी कि यह ब्राह्मण उसके लालको क्यों इतनी अटपटी उपाधियाँ देकर बिगाड़ना चाहता है।

ये श्रीनन्दनन्दन कुछ ही दिन माताके अङ्कमें एकाकी रहे। फिर तो प्रांगण-भूमिपर भी समान वयके सखाओंसे घिरे ही रहते थे। हमें इनकी और इनके सखाओंकी, सबसे अधिक इनके अग्रजकी प्रणति न स्वीकार करनी पड़े, इस संकोचसे नन्दसदन नहीं जाना चाहते थे। हृदय मचलता रहता था इनकी भुवन सुन्दर छटाकी झलक पानेको और संकोचसे पद उठते नहीं थे। कोई अर्चन अवसर हो तो महर्षि शाण्डिल्यका अनुगमन करना ही पड़ता है, अन्यथा नन्दसदन जानेमें संकोचकी बाधा बहुत बड़ी है।

यह सुविधा भी अधिक दिनों नहीं रही थी। नन्दनन्दन चलने दौड़ने

लगे और हमारे उटज उनके लिए दूर नहीं रह गये। वे सखाओंको संग लिये चाहे जब आ जाते थे और तब केवल महर्षि शाण्डिल्य अथवा भगवती पूर्णमासीकी पद-वन्दना करके ही क्यों जाते। एक बार भी किसी ब्राह्मणकी कुटिया उन्हें छोड़ना नहीं था। अवश्य ही कोई नियम क्रम बालकोंमें बना नहीं करता। एक उटजमें अधिक भीड़ लगी तो बहुत बालक अन्य कुटियोंकी ओर चल पड़े। उन्हें कोई शीघ्रता नहीं होती थी।

बात केवल पादाभिवन्दनतक होती तो भी कुछ संतोष होता। बालकोंके आगमनका निश्चित समय न हुआ, न हो सकता था। वे कभी सूर्योदयके तनिक पश्चात् ही आ जाते और कभी मध्याह्नके लगभग या तृतीय प्रहरमें। एक ही बार दिनमें आवेंगे, यह भी नियम नहीं। कभी तीन या चार फेरे भी।

कितना कष्टदायक है यह कि जीवोंके परमाचार्य संकर्षण स्वयं अथवा श्रीनन्दनन्दन उटज भूमि स्वच्छ करने लगें, गोमय उठाने लगें अथवा अन्य कोई कठोर सेवा निकाल लें अपने लिए। हम सभी ब्रह्ममुहूर्तमें ध्यान-चिंतन त्याग कर अपने आश्रम तथा समीपकी भूमि भी स्वच्छ कर लिया करते हैं। प्रतिदिन गोमयोपलिप्त कर लेते हैं। यह हमारी दैनिक आराधना; क्योंकि इसमें प्रमाद हो तो बालक ये कार्य आते ही प्रारम्भ कर देंगे। उनके सुकुमार कर क्या इस योग्य हैं। पात्रोंको भी यमुनाजलसे पूर्ण हम रख लेते हैं। मैंने देख लिया था कि व्रजेन्द्रनन्दन ही एक दिन पात्रोंको देखने लगे थे। एक भी रिक्त मिलता तो अवश्य वे उसे उठाकर यमुनाकी ओर चल पड़ते।

लताओंसे, वृक्षोंसे पुष्पदल, शीर्णपत्र झड़ते ही रहते हैं, बालकोंके लिए यह विनोद है। सबके सब आते ही ये गिरे पत्र या शीर्ण पुष्पदल उठाने दौड़ते हैं। शिशुओंका अग्रिम दल ही सम्पूर्ण स्वच्छता सम्पन्न कर देता है।

कपि, मृग या पक्षी तो कभी किसी ब्राह्मणके आश्रमको अपवित्र करते नहीं। उनमें सहज यह वृत्ति आ जाती है कि आश्रम भूमिसे दूर अस्वच्छता की जानी चाहिये। अतः ऐसी कोई समस्या नहीं है; किंतु ब्राह्मणके समीप यज्ञीय कार्य सम्पन्न करनेके लिए एक होमधेनु तो रहेगी ही। श्रीनन्दराय यहाँ भी हम सबको परिग्रही बना चुके हैं। उनके गोदानका क्रम ही रुकनेको नहीं आता है।

अपने गोष्ठ हमें स्वच्छ नहीं करने पड़ते। करने पड़े तो हमारा सौभाग्य। गो-सेवा पुण्योदय होनेपर प्राप्त होती है। गोपोंका वह स्वत्व है। गोप तो ब्रह्ममुहूर्तसे भी पूर्व हमारे गोष्ठ स्वच्छ कर जाते हैं; किंतु गायों, वृषभोंका गोमूत्र या गोमय त्यागका समय तो नहीं होता। हम प्राय: कुछ-कुछ समयपर गोष्ठ स्वच्छ करते हैं; किंतु बालकोंको यह श्रम न करना पड़े, ऐसा हो नहीं पाता। वे मानते भी कहाँ हैं।

अवश्य अब इस संकोचसे भी परित्राण मिल गया है। श्रीनन्दनन्दन सखाओंके साथ वनमें गोचारण करने जाने लगे हैं। लेकिन अब वे नहीं आते तो उनके बिना किसी आह्निकमें चित्त नहीं लगता। उनके दर्शन करने पद स्वयं वनकी ओर चल पड़ते हैं।

'मुनि महाराज पधारे !' देखते ही बालक सब क्रीड़ा छोड़कर दौड़ेंगे। पदोंपर मस्तक रखेंगे, यह पता है; किंतु वनमें गये बिना भी रहा नहीं जाता।

'आपके आश्रममें समिधा नहीं रही ?' श्यामसुन्दर पूछने ही लगते हैं–'कुश समाप्त हो गये ? आज कोई विशेष पुष्प या फल अर्चामें लगते हैं ?'

समिधा ये स्वयं उठाकर लावें, यह हृदय स्वीकार कैसे करेगा। कुश उत्पाटन करने योग्य हैं इनके कर ? गोप ही ऐसा कोई अभाव नहीं होने देते; किंतु वनमें जाओ तो कुछ पुष्प, फल तो इनके उपहार स्वरूप लेने ही पड़ेंगे।

नन्दबाबा—

विश्व-विधायकने मुझपर अनन्त कृपा की। बड़ोंका आशीर्वाद सफल हुआ। मैं तो तभी आश्वस्त हो गया जब भाभी रोहिणीके श्रीचरणोंसे गोकुल सनाथ हुआ और भगवती पूर्णमासी तो साक्षात् महाशक्ति हैं। वे आ गयीं तो सब आ गया गोकुलमें। नीलमणि अकस्मात् तो नहीं आया। इन सबके तप, तेज, आशीर्वादके प्रभावसे आया। नहीं तो नन्दकी क्या योग्यता और क्या विशेषता ?

महर्षि गर्ग नामकरणके समय कह गये—'नन्द, तुम्हारा पुत्र गुणोंमें भगवान नारायणके समान है।'

जीव कोई कैसे नारायणकी समानता कर सकता है ? लगता है कि नीलमणिपर अनुग्रह करके नारायणने इसे अपना तेज दिया होगा। यह रूप-रंगमें तो कुछ-कुछ उनके समान है और इसके अङ्गोंसे जो ज्योति निकलती रहती है—व्रजमें केवल बलके श्रीअङ्गसे ज्योति निकलती है। ऋषि-महर्षिके मुख मण्डलसे ज्योति निकलनेकी बात तो ठीक है। देवता सब ज्योति शरीर होते हैं; किंतु मानव शिशुके सम्पूर्णाङ्गसे प्रकाश झरनेकी बात तो कभी नहीं सुनी।

बलकी बात दूसरी है। भाई वसुदेवजी मुझे तो साक्षात् योगीश्वर लगते हैं। उस दिन मथुरामें मिलनेपर उन्होंने सावधान किया मुझे कि गोकुलमें उत्पात हैं, सो आँखोंके आगे आ गया। हम सब मथुरासे गोकुल पहुँचे भी नहीं थे कि मार्गमें ही वह योजनदीर्घा राक्षसी मरी मिली थी। नीलमणिको वह उठा भागी थी, यह गोकुल आकर हमने सुना। ऐसे योगीश्वरका कुमार है बल और रोहिणी भाभी जैसी पतिव्रता, तपस्विनीका उदरजात है। वह तो बहुत बड़ा देवता होगा ही। उसके अङ्गोंसे प्रकाश झरता है—उचित है।

जातकर्मके समय मैंने नीलमणिको अञ्जलिमें उठाया, मेरे कर कम्पित नहीं हुए; यही बहुत हुआ। एक कमल-पुष्प जितना भी तो भार

नहीं था उसमें और लगता था कि वह ज्योतिके ही सघन होनेसे बना है। मैं तो अपनेको भूल ही गया था। कैसे मैंने संस्कारके कर्म सम्पन्न किये, यह मुझे ही पता नहीं लगा।

उस समय भी बल मुझसे सटा बैठा था। नीलमणिको ही देखनेमें लगा था। बलका अत्यन्त स्नेह इसपर, इसके बिना बल दो पल भी रहना नहीं चाहता और यह भी अपने बड़े भाईके सामीप्यके बिना हाथ-पैर उछाल कर पलनेमें भी रोने लगता था।

महर्षि शाण्डिल्य और ऋषि-मुनि नीलमणिको देखकर विभोर हो उठते हैं। ऋषि-मुनियोंमें किसी गोपकुमारके प्रति भला क्या आकर्षण? पहले तो मैं कुछ समझ ही नहीं पाता था, ऋषि-मुनि जो ज्ञान-ध्यानकी बातें करते हैं, वह कहाँ हम संसारी लोगोंकी समझमें आती हैं। ऋषियोंका तो स्वभाव होता है सबको ही नारायण कहनेका। उनको सबमें नारायण ही दीखते हैं। नीलमणिके सम्बन्धमें वे जो कुछ कहते हैं, वह उनका स्वभाव है।

महर्षि गर्गने जब नीलमणिको नारायणका अंश बतलाया, तब बात मेरी समझमें आयी। भगवान नारायणने इसे कृपा करके अपना तेज दिया होगा। वही तेज इसके अङ्गोंसे प्रकाशके रूपमें प्रगट है। बल कोई बहुत बड़ा देवता है। इस नीलमणिपर उसका स्नेह उसी तेजसे है। क्या ठिकाना कि बलने ही स्नेहवश नीलमणिको वह तेज दिया हो।

नीलमणि छः दिनका ही था जब वह राक्षसी पूतना इसे उठाकर भागी थी। रोहिणी भाभी कहती हैं कि बल तब नीलमणिके समीप पालना पकड़े खड़ा था जब राक्षसी आयी। आयी तो वह बहुत सुन्दरी बनकर थी; किंतु उसे देखते ही बल पलना छोड़कर एक ओर बैठ गया था और बहुत प्रसन्न होकर ताली बजाने लगा था।

राक्षसी नीलमणिको लेकर भागी तो किसीका ध्यान ही तब बलकी ओर नहीं जा सकता था। मुझे तो लगता है कि ये जो असुर नीलमणिके द्वारा मारे गये, वे मरे तो बलके सङ्कल्प-प्रभावसे ही। वह राक्षसी भी बलके सङ्कल्पसे ही मरी होगी। छः दिनका नन्हा शिशु था नीलमणि तब तो

और अब भी जब गोचारण करने जाने लगा है, बहुत सुकुमार है। बहुत दुर्बल है। यह भला राक्षसी या राक्षस कैसे मार देगा ? बलका अपने इस छोटे भाईपर बहुत स्नेह है। वही इसकी रक्षा करता है। वही अपने सङ्कल्पसे राक्षसोंको मार देता है और सबको भ्रम होता है कि नीलमणिने मारा।

बल तो शैशवसे गम्भीर है। वह है ही ऐसा कि उसका सबको आदर करना पड़ता है। ऋषि-मुनि भी उसका चरण-स्पर्श करते हैं और वह चुपचाप उनका सम्मानदान,स्तुति सुनता रहता है। लेकिन नीलमणिपर उसका इतना स्नेह कि कोई ऋषि उसका आदर करने लगता है तो वह नीलमणिकी ओर बार-बार संकेत करता था शैशवमें और बोलने लगा तो कह देता है—'इस मेरे अनुजका आदर करो। इसे प्रसन्न करो।'

बल साथ रहता है तो नीलमणि सुरक्षित है, यह मेरा हृदय बहुत प्रारम्भसे मानता है। लेकिन बल भी तो बालक ही हैं। इन दोनोंके ही शरीरसे जो तेज प्रकट होता है, अवश्य वह नारायणका ही तेज होगा। तब भगवान नारायण ही अपने तेजसे असुरोंको मार देते हैं। उनके तेजका स्पर्श करके असुर कैसे बचे रह सकते हैं।

नीलमणि चपल है। महर अनेक बार कहती है कि मैं इसे रोकूँ—समझाऊँ या तर्जन करूँ; किंतु मैंने तो कह दिया है—'महर, यह सब तू ही कर लिया कर। तेरे ही पुण्यप्रतापसे यह तेरे अङ्कमें आया। मेरे तो ऐसे भाग्य थे ही नहीं।'

बहुत भोली है महर। वह मेरे पैर पकड़ती है। मेरे मुखपर हाथ रख देती है। लेकिन उसकी बात कि मैं नीलमणिको तर्जन करूँ—मेरे वशकी नहीं है। मेरे स्वभावमें ही कठोरताका नाटक करना भी नहीं है। मैं कभी किसीको डाँट नहीं पाया और नीलमणिको देखकर तो मुझे अपनी सुधि ही नहीं रहती।

नीलमणि मेरे अङ्कमें आ बैठता है और मेरे श्मश्रुमें अंगुलियाँ हिलाता रहता है अथवा मेरी नाभिमें अपनी पतली सुकुमार अंगुली डालकर खेलता रहता है। मुझे तो उसका मुख भी पूरा देखनेका स्मरण नहीं रहता। कभी

उसकी अलकें, कभी भाल, कभी भ्रू और कभी कुछ कहते, हिलते अधरवाला उसका तनिक-सा मुख देखता रह जाता हूँ।

महर उलाहना देती है, नेत्रोंमें अश्रु भर लाती है। बात उसकी ही ठीक है कि नीलमणि वनमें जाने योग्य नहीं है; किंतु मैं क्या करूँ—मेरी बात तो दूर, महर्षि शाण्डिल्यतक नीलमणिकी बातको ही हाँ कर देते हैं। महर्षि जब किसी बातका अनुमोदन कर देते हैं, उसे टाल पाना तो सम्भव नहीं है।

मैं शैशवसे अपने अग्रजका अनुगत रहा हूँ। उपनन्द दादाकी इच्छाकी मैंने कभी बचपनमें भी अवगणना नहीं की। वैसे भी हम गोपोंमें कहावत है—'सहस्र गोपोंके समुदायमें भी दो मत नहीं होते और उन सहस्रोंमें कही बात भी एकके पेटमें ही रह गयी-जैसी रहती है।'

इन बालकोंमें जितनी प्रीति उपनन्द दादाकी है,मुझमें तो उसका लेश भी नहीं। बालकोंपर बार-बार संकट आते हैं, यह चिन्ता उन्हींको प्रथम हुई। उन्होंने ही घूम-भटक कर वृन्दावनमें, वृहत्सानुपुरके समीप नन्दीश्वर गिरि ढूँढ़ा और उनके सुझावपर हम सब गोकुल त्याग कर यहाँ आ बसे। उन्होंने ही मुझे गोपराज बनाया और मेरी, गोपोंकी भी सब समस्याएँ तो वही सुलझाते हैं। उन्होंने जब मुझे आज्ञा दे दी—'नन्द! नीलमणिकी हठ मान लेनी है।' तब मेरे समीप कोई उपाय रह गया?

नीलमणि हठी तो है; किंतु नन्हा बालक है। बड़ा होगा तो बड़ोंके सामने स्वयं हठ नहीं करेगा। अभी भी कभी बड़ोंकी अवमानना नहीं करता; किंतु बड़ोंका समर्थन पा लेनेकी युक्तियाँ इसे आती हैं। किसीकी गोदमें जा बैठता है और उसके कानसे मुख लगाकर कुछ कहता है तो कोई इसकी बात टाल नहीं पाता।

बालक बड़ोंका स्नेह-भाजन है, यह हमारा सौभाग्य। इसकी हठ भी बड़े रख लेते हैं, इसीसे तो यह बछड़े चराने लगा और अब गायें चराता है। इसकी हठके कारण इसके साथ वनमें कोई बड़े गोप इसके साथ भेजे नहीं जा पाते।

'नन्द! नीलमणि ठीक तो कहता है।' मैं उस दिन हक्का-बक्का रह गया जब उपनन्द दादाने इसका समर्थन कर दिया—'सूखे इन्द्रध्वजके

काष्ठमें रखा भी क्या है। हम लोग नीलमणिके देवता गिरिराज गोवर्धनका पूजन करेंगे।'

पिता-पितामहसे चली आती इन्द्र-पूजाको त्याग देने जैसी बात इस नन्हें बालकके कहनेसे मान ली जाय? मेरा हृदय इसे माननेको ही प्रस्तुत नहीं था; किंतु नीलमणि सखाओंके साथ चला गया तो दादा बोले— 'नीलमणि ताली बजाता, हँसता-कूदता कितना प्रसन्न गया है। इसकी प्रसन्नता ही तो हमारे सब पुण्य कर्मोंका फल है।'

'बालक हठी है। कल इसकी बात न मानकर इन्द्र-पूजा करने लगे और यह सब बालकोंको लेकर कोई उत्पात कर बैठे, देवताका अपमान हो तो?' दादा कभी बिना विचार किये कुछ नहीं कहते। उनकी बातने किसीको बोलनेका अवसर ही नहीं दिया। उन्होंने कहा–'बालक गो-ब्राह्मण-पूजन, यज्ञ-हवनको तो कहता ही है। केवल इन्द्रध्वजके स्थानपर गोवर्धन-पूजनको कहता है। सूखे खम्भेसे तो गोवर्धन बहुत विशाल हैं ही।'

नीलमणिकी बात सत्य ही होती है। इसने कहा था कि खूब वर्षा होगी सो ऐसी वर्षा हुई कि कभी व्रजमें हुई नहीं होगी। वह वर्षा हम गोपोंके तो हितमें ही हुई। हम कोई कृषक तो हैं नहीं कि अतिवृष्टिसे हमारे खेतोंका अन्न नष्ट होगा। हमें गायोंके लिए तृण चाहिये। वर्षा जितनी अधिक होगी, तृण उतने बढ़ेंगे।

नीलमणिने पर्वत उठा लिया था। गोपोंने भी नहीं देखा, मैंने भी नहीं देखा। वर्षामें यह चंचल पहले ही भागा था। मैं और दूसरे गोप पीछे दौड़ गये थे; किंतु हमारे पहुँचनेतक तो यह पर्वत उठाये खड़ा था। सरिता, गिरि सब देवता होते हैं। इसने कहा होगा और देवता स्वयं उठ गये होंगे। गिरिराजने तो प्रकट होकर सबको दर्शन दिये थे। वे अपने पर्वत देहको उठाकर गगनमें निराधार क्यों नहीं रख सकते? नीलमणि तो अपनी वीरता दिखलानेको उनसे एक हाथकी कनिष्ठिका सटाये खड़ा था। इससे कामदाका बछड़ा तो उठता नहीं, पर्वत उठेगा?

मुझे एक ही चिन्ता इधर हो गयी है। कोई उपाय नहीं सूझता है। नीलमणिको कुछ पढ़ना भी चाहिये। यह अनपढ़ रहेगा तो इसके साथ सब

गोपबालक अनपढ़ रह जायँगे। बल भी नीलमणिके साथ गायें चरानेमें लगा है। उसे तो राजकुमारके लिए उचित शिक्षा मिलनी चाहिये।

गोपकुमारोंका उपनयन बारह वर्षकी आयुतक भी हो जाय तो कोई हानि नहीं है; किंतु बलका उपनयन ? भाई वसुदेवजीने सन्देश भेज दिया है—'बलका संस्कार करनेकी शीघ्रता नहीं है।'

मैंने महर्षि शाण्डिल्यसे भी पूछ लिया; किंतु ऋषि-महर्षि कब क्या कहेंगे, क्या ठिकाना। महर्षि कहते हैं—'पढ़ानेमें उनकी रुचि नहीं है और नीलमणिको कोई सामान्य विद्वान पढ़ा नहीं सकता। उसके योग्य आचार्यका अभी उन्हें पता नहीं है।'

महर्षिकी पढ़ानेमें रुचि नहीं है, यही बात ठीक है। अन्यथा नीलमणि कोई बहुत चतुर तो नहीं है। हाँ, गोपकुमार है और गोपालनमें उसकी चतुराईपर मुझे गर्व है। मैं गोपराज हूँ। बचपनसे गायोंके ही मध्यमें रहा हूँ। मानता हूँ कि गायोंकी प्रकृति और संकेत मुझसे कहीं अधिक छोटे भाई सनन्द समझते हैं। उनके जितनी गौ प्रकृति जाननेकी विद्या तो पूरे व्रजमें किसीको नहीं आती; किंतु नीलमणिकी वे भी प्रशंसा करते हैं।

'व्रजराज दादा ! गायोंकी भाषा मनुष्य भले समझले; किंतु गायें मनुष्यकी भाषा नहीं समझतीं, केवल थोड़े संकेत समझती हैं, मैं अबतक यही जानता था।' भाई सनन्दने कहा—'लेकिन मैं ठीक-ठीक जानता हूँ कि नीलमणिकी पूरी बात गायें समझ लेती हैं। यह हमारा व्रजयुवराज किसी गाय, वृषभ या बछड़े-बछड़ीसे कुछ कहता है तो वे इसकी बात समझते हैं और इसे उत्तर देते हैं। तुम कभी नीलमणिको गायोंसे बातें करते ध्यानसे देखो।'

यह गाय-बछड़ोंसे बातें तो करता है। उनसे चाहे जो कहता रहता है; किंतु सनन्द भाईकी भाँति मुझे तो गायोंकी भाषा आती नहीं। पशु अपने कान, पूँछ, सिर हिलाकर क्या कह रहे हैं—यह मैं भी दूसरे गोपोंके समान थोड़ा अनुमान ही कर पाता हूँ। सनन्द भाई कहते हैं तो नीलमणि अवश्य अपने चाचाके समान इन पशुओंकी भाषा समझता होगा। जन्मसे

ही यह गोपाल है, अतः गोपोंके उपयुक्त विद्या इसे सिखलानेकी आवश्यकता नहीं रही है।

सब गायें, वृषभ, बछड़े-बछड़ियाँ इससे सीमातीत स्नेह करती हैं। किसीके भी गोष्ठके किसी भी पशुसे इसकी सहज मित्रता है। भद्र तो कहता है कि—'कन्हाई वनके सब कपियों, मृगों, व्याघ्रोंतकसे मित्रता कर लेता है। सब इसका संकेत समझते हैं।'

भगवान नारायण सब प्राणियोंके हृदयमें निवास करते हैं। नीलमणि-पर सदय होकर उन्होंने इसमें अपना तेज स्थापित किया है। इसीसे सब प्राणियोंकी प्रीति यह प्राप्त कर लेता है। यह सब ठीक होनेपर भी तो इसे कुछ पढ़ना चाहिये। कौन पढ़ावेगा इसे ?

'तुमने नीलमणिको गोचारणमें लगा दिया।' महर अब भी मुझे उलाहना ही देती है—'अब इसे पढ़ानेके नामपर कहीं भेज देनेकी बात सोचने लगे हो। यह अभी है ही कितना बड़ा कि किसी गुरुकुलमें जायगा ? यहाँ मेरे बार-बार मनुहार करनेपर तो मुख जूठा करता है, गुरुकुलमें भूखा रहकर तपस्या करने भेजोगे इसे ?'

सचमुच अभी नीलमणि बहुत छोटा है। अपने समवयस्क ही नहीं, अल्पवय सखाओंसे भी दुर्बल है। बहुत अधिक सुकुमार है। अभी इसकी शिक्षाकी चिन्ता अनावश्यक है। अपने व्रजके समीप ही कोई ऋषि ऐसे आकर बस जाते जो इसे पढ़ा पाते। मैं महर्षि शाण्डिल्यसे कहूँगा कि वे ऐसे किसी ऋषिको आमन्त्रित करलें। सब गोपबालक यहीं एक साथ उनके श्रीचरणोंमें कुछ सीख लें। मैं यथाशक्ति उनकी सेवा करनेमें सदा लगा रहूँगा। मेरे गोप तथा भाई भी सेवा करेंगे।

नीलमणि गोचारणको चला जाता है तो मैं बैठा-बैठा उसके ही विषयमें इसी प्रकार कुछ-न-कुछ सोचता रहता हूँ। यह भी स्मरण नहीं रहता कि कल क्या सोचा था। वह सायंकाल आ जाता है तब तो मैं अपने शरीरका ही ध्यान नहीं रख पाता।

अब बल और नीलमणि तथा भद्र भी रात्रिमें मेरे समीप ही अपनी-अपनी शय्याओंपर सोने लगे हैं। बालक पहले मेरे पास सटकर सो जाते हैं। उनको उनकी शय्याओंपर मैं तब पहुँचाता हूँ। रात्रि उनको देखने, सम्हालनेमें कैसे बीत जाती है—कभी पता नहीं लगता। लेकिन प्रात: मैं चाहता हूँ कि बालक थोड़ी देर से उठें। यह भी हो नहीं पाता। बल या भद्र उठ ही जाते हैं और नीलमणिको उठा देते हैं। वह प्रतिदिन सायं मुझसे हठ करता है कि मैं उसे पहले उठा दिया करूँ।

उपनन्द ताऊ—

अपनी रुचि कभी सेवामें नहीं रही और अधिकार तो सेवाके लिए लिया जाता है। बचपनसे मुझे एकान्त प्रिय रहा है। उलटा-सीधा जो बने सो कुछ भजन स्मरण कर लिया श्रीनारायणका और चुपचाप बैठे रहे। अतः अच्छा ही हुआ कि गोपराजकी पगड़ी नन्दके सिरपर बाँधी गयी। नन्द ही इसके सबसे उपयुक्त थे और हैं। उन्हें तो दूसरोंकी सुख-सुविधा देखनेमें अपने भोजन-शयनकी भी चिन्ता नहीं रहती।

एक ही बात अब नन्दकी मुझे अच्छी नहीं लगती, वे दूसरोंकी चिन्तामें नन्हे बालकको भी भूले रहते हैं। नीलमणिकी ओरसे भी उदासीन बने रहना क्या उचित है ? वही तो हम सबका, पूरे व्रजका प्राण है। उसीकी सुरक्षा पूरे व्रजकी सुरक्षा है, यह बात नन्दको समझना चाहिये।

मैं पिताके आदेशसे गृहस्थ तो हो गया; किंतु मुझे घरकी चिन्ता कभी नहीं हुई। गोप अब भी कह देते हैं—'तुंगी भाभी न होतीं तो उपनन्द दादाको तो अपनी क्षुधा भी कभी स्मरण आती या नहीं, पता नहीं।'

मुझे चिन्ता नहीं हुई कभी कि मेरे यहाँ कोई संतान नहीं हुई। चिन्ता तो हुई और मैंने महर्षि शाण्डिल्यसे प्रार्थना की, स्वयं व्रत, अनुष्ठान किये इसलिए कि नन्दके भी सन्तान नहीं हुई। हम पाँचो भाइयोंके ही आँगन सूने थे। पिताकी वंश परम्परा ही लुप्त होती लगती थी। मेरे और अभिनन्दके कोई पुत्र भले नहीं हुआ; किन्तु नन्दको पुत्र मिलता तो व्रजको युवराज मिलता। सनन्द और नन्दन छोटे थे, उनकी आयु थी। उनके लिए चिन्ताका कारण नहीं था।

मेरी तो नारायण क्या सुनते। एक गोपकी श्रद्धा, पुण्य, प्रार्थनामें बल ही कितना; किन्तु भगवती पूर्णमासी गोकुल आ गयीं। उन योगीश्वरी महाशक्तिने एक ओरसे हम सबकी पत्नियोंको सन्तानवती होनेका आशीर्वाद दे दिया।

भगवतीका आशीर्वाद, अन्यथा मैं वृद्ध और तुंगी तो निवृत्त रजस्का

थी। महाशक्तिका संकल्प सब कुछ कर सकता है, यह प्रत्यक्ष हो गया। मेरे और मुझसे छोटे अभिनन्दके घरमें दो-दो बालक होंगे—पहले कोई कहता तो मैं भी उसका उपहास ही तो करता।

भगवतीके आशीर्वादसे हमें युवराज भी मिला। ऐसा युवराज मिला जैसा संसारके किसी चक्रवर्तीको भी कभी नहीं मिला होगा। यह सब भगवतीका आशीर्वाद और रानीवहू रोहिणीके गोकुलमें चरण रखनेका पुण्य परिणाम।

मुझे घर-परिवारकी चिन्ता न पहले हुई थी और न पुत्र हो जानेपर हुई। गोप-शिशुकी चिन्ता क्या करनी। उसे जन्मसे गोरज, गोमूत्र, गोबरमें घूमने सरकनेको मिलता है। उसकी सब अलाय-बलाय गायें पूंछ फटकार कर झाड़ती रहती हैं। घुटनों सरकते ही उसे लकुटसे खेलना आ जाता है। मैं चिन्ता करता भी तो क्यों? मेरे चार छोटे भाई मेरे घर-परिवार तथा शिशुओंकी सम्हाल करनेवाले, उन्हें स्नेह देनेवाले तो हैं।

संसारकी चिन्ता और मोह अपने स्वभावमें नहीं थी। लेकिन नीलमणि आया नन्दभवन और मेरा स्वभाव पता नहीं कब पूरा ही परिवर्तित हो गया। वह नवघन सुन्दर सुकुमार—नहीं सौन्दर्यकी बूँद जैसे किसी दिव्यलोकसे भटक कर हमारे गोकुलमें आ गयी।

'तुम अपनी देवरानीको तनिक डाँट दो!' मैंने अनेक बार पत्नीसे कहा—'नीलमणि क्या ऐसा शिशु है कि उसे भूमिपर धूलि, गोमूत्र, गोबरमें घिसटनेको छोड़ा जाय। कितने मृदुल हैं उसके अङ्ग। नन्दके यहाँ सेविकाओंका अभाव हो गया है?'

'तुम्ही अपने छोटे भाईको क्यों नहीं डाँट देते?' पत्नी प्रायः कहती है—'मैं तो अब ऐसी हो गयी कि मुझे कुछ स्मरण ही नहीं रहता। यशोदासे अनेक बातें कहनेकी सोचकर घरसे चलती हूँ; किन्तु उस नन्हेको देखते ही सब भूल जाता है। वहाँ उसे देखने, गोदमें लेने, उसीमें रस मिल जानेके अतिरिक्त दूसरा कुछ स्मरण नहीं रहता।'

बात पत्नीकी ठीक है। मेरी भी अवस्था इससे भिन्न नहीं है। मैं तो नन्दभवन होऊँ या कहीं अन्यत्र, मुझे सदा वह नीलसुन्दर सम्मुख ही लगता

है। अब तो किसी नन्हें शिशुको दूर भी धूलिमें खेलते, बैठे देखता हूँ तो दौड़ पड़ता हूँ उठानेके लिए। लगता है कि नीलमणि ही है।

'यह यहाँ आ गया? इतना बड़ा हो गया?' पैरों चलते बालकोंमें भी मुझे भ्रम होता है। अपने पुत्रको भी पहचानना पड़ता है।

'बड़ा नहीं होगा। नीलमणिसे ग्यारह महीने तो बड़ा है।' पत्नी जब कहती है तो उसे कहाँ पता होता है कि मैं अपने पुत्रको नीलमणि समझकर चौंका था।

मुझे लगता ही नहीं कि श्यामसुन्दर भूमिपर उतारने योग्य है। मेरी बात सुनी जाती, मुझसे पूछा जाता तो मैं तो उसका भूमि स्पर्श संस्कार भी अभीतक नहीं होने देता। लेकिन संस्कारका निर्णय तो महर्षि शाण्डिल्य करते हैं।

'दादा, आप जितने वृद्ध होते जाते हैं, शिशुओंका मोह उतना बढ़ता जाता है?' नन्दनने एक दिन कह दिया। वह सबसे छोटा है और मल्ल होनेसे तनिक खुला मुँह भी है। उसे आश्चर्य होना भी चाहिये था। अतः कह रहा था—'आप तो अपने अर्जुनको भी कभी गोदमें नहीं उठाते थे और अब........। गोप बालक धूलि, गोमयमें नहीं खेलेंगे तो उनके अङ्ग पुष्ट कैसे होंगे? गोपकुमार छुईमुई नहीं होते।'

मैंने नन्दनके तोकको नीलमणि समझ लिया था। वह है भी नीलमणिकी दूसरी मूर्ति। स्वयं नन्दन कहता है कि उसे भी अनेक बार यह भ्रम हो जाता है।

मैंने तोकको भूमिपर बैठे देखा तो गोदमें उठाने लगभग दौड़ पड़ा था। नन्दनको मैंने डाँट दिया था—'यह पृथ्वीपर ऐसे बैठाने योग्य है?'

नन्दनको व्यसन है कि सब उसकी भाँति दण्ड-बैठक करें और अखाड़ेमें उतरें। मुझे लगा कि यह मेरा छोटा भाई अभीसे नीलमणिको अपने जैसा मल्ल बनानेकी धुनमें लग गया है।

तोक है यह जान लेनेपर मुझे संतोष हुआ; किन्तु अपनी झेंप भी तो मिटानी थी—'तोक नीलमणिसे दस महीने छोटा है। यह सुकुमार नहीं है? तुम सब शिशुओंको जन्मसे अपने समान मल्ल बना देना चाहते हो?'

लेकिन मैं जानता हूँ कि बालकोंके प्रति मेरा यह ममत्व स्वाभाविक नहीं है। दूसरे किसी बालकके, अपने पुत्रोंके प्रति भी मुझमें ममत्व नहीं जागता; किन्तु नीलमणि तो सदा नेत्रोंके आगे ही लगता है।

'बाबा !' नीलमणि चलने लगा, बोलने लगा और मेरा एकान्त छूट गया। मैं नन्दकी पौरिपर ही रहने लगा। मैंने सोचा था कि मेरे रहनेसे नन्द और बहू यशोदा भी संकोच करेगी। नीलमणिको ये दोनों भूमिपर घूमने नहीं देंगे; किन्तु मैं ही इस चपलको रोक नहीं पाता तो दूसरा कोई कैसे रोकेगा। इसे गोदमें उठाता हूँ तो यह मेरे मुखकी ओर देखता, मेरे श्मश्रुसे खेलता मुझे बाबा कहता है। मुझे भूल जाता है कि मैं कहाँ बैठा हूँ। यह कब गोदसे उतर कर गोष्ठमें या भवनमें चला गया, यह भी पता नहीं लगता।

'बाबा !' अनेक बार नीलमणि स्वयं आकर फिर गोदमें बैठ जाता है और उसकी सुधामधुर ध्वनि मुझे जगाती है।

पत्नी कहती है—'तुम्हें ध्यान ही करना रहता है तो यहीं घरपर कर लिया करो। वहाँ देवरकी पौरिपर बैठकर ध्यान करनेका तुमने यह क्या नया ढंग पकड़ा। तुम्हें पता भी है, अनेक बार मैं या देवरानी हँसकर नीलमणिको भेजती हैं कि वह अपने ताऊको जगादे, जिससे उन्हें कलेऊ कराया जा सके।

मुझे तो प्रायः पता नहीं लगता कि नन्दभवनसे कब कलेऊ मेरे सम्मुख किसने रखा। यह तो नीलमणि आकर गोदमें बैठता है और अपने नन्हे करसे, कभी दो अंगुलीसे तनिक-सी कोई वस्तु मेरे मुखमें देता है। मेरे करसे दिये पदार्थ तो कदाचित ही वह मुखमें लेता है; किन्तु हमारे इस नन्हे युवराजको अभीसे सबको खिलानेकी चिन्ता हो गयी है। यह मेरी गोदमें बैठा बैठा भी कभी बलके, कभी भद्रके मुखमें कुछ देता है या किसी मयूर अथवा कपिको देना चाहता है।

मयूर, कपि कोई इसके कोमल करोंमें मुख लगा दें तो ? मैं उन सबोंको आहार दूर फेंककर देना चाहता हूँ; किन्तु उन्हें भी इसीके करसे तनिक-सा कण लेना रहता है। मैं उनको हटानेमें लगता हूँ और नीलमणि गोदसे उतर कर कहीं भाग लेता है।

आशंका इन पशु-पक्षियों अथवा कपियोंसे कम है। ये सब भी नीलमणिको स्नेह करते हैं। बालक बहुत सुकुमार है और इनसे अनजानमें कुछ लग सकता है। यह तो मयूरके पंखका स्पर्श भी सहने योग्य नहीं है। आशंका है दूसरी ओरसे। मथुरामें क्रूर कंस बैठा है। पता नहीं उसकी इन बालकोंसे क्या शत्रुता है। उसके असुर गोकुल आये ही रहते हैं।

'नन्द ! मथुरा और गोकुलके मध्य केवल यमुना हैं।' मैंने छोटे भाईसे कहा एक दिन—'कंसके असुरोंके लिए यमुना साधारण नाली जैसी हैं। वे पैर उठाकर ही इन्हें पार कर लेते हैं।'

'दादा ! आप सिरपर हैं तो मुझे क्या चिन्ता है।' नन्द सदासे ऐसा ही सीधा। उसने मेरे ऊपर ही डाल दिया—'आपकी आज्ञा हम सबने कभी टाली है ?'

सुना है कि कंसने देवताओंको भी पराजित किया है। वसुदेव-देवकी मथुरामें न होते तो मैं अपने गोपोंको कहता कि एक बार कंसको भी गोपोंकी लाठियोंका स्वाद समझा आओ। लेकिन रानी बहू यहाँ हैं, बल है और यह नीलमणि है। कंसके पास मायावी असुर हैं। इस समय अपना हाथ बहुत दबा है।

क्या किया जाय ? नन्द तो भोला है। उसे सदा दूसरोंकी ही चिन्ता रहती है। पूतना आयी थी, मुझे तो छकड़ा उलटनेमें भी लगा कि वह भी कंसके किसी मायावी असुरका उत्पात था। फिर तृणावर्त नीलमणिको लेकर आकाशमें ही उड़ गया था।

बिना आँधी झंझाके अर्जुनके दोनों वृक्ष जड़से उखड़ कर गिर गये। नारायणने नीलमणिकी रक्षाकी; किन्तु यह भी क्या कोई माननेकी बात है कि उस सुकुमारने वृक्ष गिरा दिये। वह ऊखल भी क्या खींच सकता था ? नन्दकी पौरिमें ढलान हैं। ऊखल झटपटा रखा होगा। तनिक-से झटकेसे लुढ़का और लुढ़कता चला आया। वृक्षोंमें अटक कर रह गया। बालककी तो श्रीहरिने ही रक्षाकी। इतनी भी कोई मूर्खता करता है जितनी उस दिन नन्दकी बहूनेकी। बालक चपलता पूर्वक आगे न बढ़ता गया होता घुटनों सरकता तो ऊखल उसके ऊपर ही आ जाता या नहीं ?

मुझे क्रोध तो बहुत आया था; किन्तु समय क्रोध करनेका था नहीं। अवश्य कंसके ही किसी असुरने बालकको वृक्षोंके मध्य देखकर वृक्ष गिराये होंगे। कंस किसी क्षण कुछ कर सकता है। उससे दूर होना अत्यन्त आवश्यक हो गया था। मैं निकल पड़ा ऐसा स्थान ढूंढ़ने जहाँ हम सब अपने गोधनके साथ जाकर बस सकें।

वृषभानुसे सम्मति लेनेके विचारसे गया था; किन्तु नन्दीश्वर गिरि देखकर चित्त प्रसन्न हो गया। वृन्दावन सभी प्रकार अनुकूल लगा। पड़ोसमें बरसाना-वृषभानु अपने हैं। हमारा बल वहाँ दो गुना हो जाता था। कंसको भी कोई असुर वहाँ भेजते सोचना पड़े ऐसा स्थान।

मुझे कोई विकल्प नहीं था। यह तो निश्चित था कि कोई प्रस्ताव मैं करूँगा तो सबके सब हाँ करेंगे। मैं तो फिर भी नन्दका बड़ा भाई हूँ, कोई सामान्य गोप भी प्रस्ताव करता तो हममें दो मत होना नहीं था। गोकुल त्याग कर हम सब वृन्दावन आ गये। नन्दीश्वर गिरिपर नन्दको भवन बनानेको कह दिया।

बालक यहाँ आकर प्रसन्न ही हुए। उन्हें भी बहुतसे नवीन सखा मिल गये। सबने पीछे भी मेरे स्थानान्वेषणकी प्रशंसा ही की। कोई प्रशंसा करेगा या निन्दा, इसकी मुझे चिन्ता नहीं थी। बालक सुरक्षित रहें तो भले सारा संसार मेरी निन्दा ही करता रहे।

नीलमणि चपल है और बहुत हठी है; किन्तु उसका शशि मुख उदास तो मुझसे नहीं देखा जायगा। उसकी किसी बातको पता नहीं कैसे नन्द ना कर पाता है। नीलमणिने गाचारणकी हठ की—गोपोंके युवराजका यह उत्साह हम सबका सौभाग्य। बालकको तो समझाकर प्रसन्न किया जा सकता है। नीलमणि गायोंके स्थानपर गछड़े चरानेकी बात सुनकर ही प्रसन्न हो गया था।

वह ताली बजाकर जब खिलखिलाकर हँसता है, मेरे लालके हास्यके साथ उसकी दंत ज्योतिसे दिशाएँ चमक उठती हैं। उसके हास्यमें, स्वरमें जो माधुरी है—उसकी तुलना करनेको कहीं कुछ नहीं है। लेकिन जब वह उछलने-कूदने लगता है, मेरा हृदय धक्धक् करने लगता है। उसके चरण अत्यन्त कोमल हैं। पता नहीं क्या बात है, वह उत्पन्न हुआ तबसे अबतक

उसके चरणोंकी सुकुमारता और अरुणिमा बढ़ती ही जाती है। वह पृथ्वीपर पद धरने लगता है तो वहाँकी धरापदोंकी कान्तिसे अरुणाभ बन जाती है। ऐसे चरणोंसे वह कूदता है।

उसकी हठ थी। न माननेपर उसका कमल मुख उदास हो जायगा, यह समझकर मैंने ही नन्दको कह दिया कि बालकका उत्साह मत तोड़ो। वह कितना प्रसन्न हुआ था जब उसे बछड़े चरानेकी स्वीकृति मिली थी। उसका आनन्द उत्फुल्ल श्रीमुख देखकर जीवन धन्य-धन्य हुआ लगता है।

लेकिन वह बहुत सुकुमार है। जब वनसे लौटता है, लौटता तो सुप्रसन्न ही है। उसकी इसी प्रसन्नताके लिए तो उसे वनमें जाने देना पड़ता है; किन्तु उसका स्वेदस्नात, अरुण हो आया मुख, गो-रज सनी अलकें-पलकें लगता है कि अत्यन्त थका है। दिन भर वनमें खेल-कूदमें लगे रहकर श्रान्त हो गया है।

'बाबा !' नीलमणि अब बहुत विनम्र हो गया है। नन्दके साथ मार्ग देखते खड़े मुझे देखकर दौड़कर आकर मेरे सामने पहले झुकता है मेरे पद पकड़ने। उसे अङ्कमें लगाकर भी तत्काल कहना पड़ता है—'लाल, अब अपनी मैयाके पास जा, वह तुझे स्नान कराके झटपट कुछ खिलादे !'

अभिनन्द ताऊ-

विश्व-विधाता भी विचित्र है। पहले तो उसके समीप नन्दव्रजको देनेके लिए बालकोंका अभाव हो गया था। लगता था कि उसने हमारे गोपकुलके उन्मूलन का ही निर्णय कर लिया है। हम पाँचो भाई तो सन्तानहीन थे ही, हमारे सब गोपोंके आँगन शिशु-कीड़ासे सूने पड़े थे। नेत्र तरस गये नन्हें शिशुको देखनेके लिए और जब वह बूढ़ा विश्व-स्रष्टा निद्रासे जागा, उसने एक साथ सब गोपोंके आँगन भर दिये। उसने तो बूढ़े-बुढ़िया कुछ देखा ही नहीं। एक ओरसे सबकी गोद भरता गया।

तुंगी भाभी जैसी वृद्धावस्थाके समीप पहुँचीको सन्तानकी आशा जब सुनायी पड़ी तो मैंने अपनी मोटी पत्नीसे परिहास ही किया था—'अब तुम भी आशा कर सकती हो। लगता है कि बूढ़ा ब्रह्मा नींदसे जाग गया है और उसे हमारे व्रजका स्मरण हो आया है।'

पत्नीका मुख तो लाल हो गया। वह नव-वधूके समान लज्जित होने लगी और उस दिन पता लगा कि मैं भी पिता बनने वाला हूँ। कोई प्रसन्नता नहीं हुई। व्रजराज भाई नन्दका आँगन सूना रहे तो हमारे घर बालक आकर भी कौन-सा सौभाग्य।

विधाता या तो विनोदी है या भीरु। बिना भयके वह कुछ नहीं करता होगा। हम सबकी रात-दिनकी प्रार्थना उसने अनसुनी कर दी थी; किन्तु भगवती पूर्णमासीने आकर जब गोपियोंको उनकी गोद भरनेका आशीर्वाद देना आरम्भ कर दिया, उसे भी डर लगा होगा। जो इतनी उदारतापूर्वक सबको वरदान दे सकती हैं, वे उसे शाप भी देने में अवश्य समर्थ हैं।

इतनेपर भी हम सबको पर्याप्त प्रतीक्षा करनेको उस बूढ़ेने विवश किया; किन्तु वह करता भी क्या, नीलमणि जैसा शिशु जुटाने, ढूंढ़नेमें उसे भी बहुत श्रम करना पड़ा होगा। पता नहीं वह भी अपने किस आराध्यके हाथ-पैर जोड़कर ऐसा रत्न पा सका और वह रत्न उसने हम गोपोंको दे दिया। हम उसके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

अपने औरस पुत्रसे ही पितृत्व प्राप्त हो जाता है, यह भ्रम मुझे भी था दूसरोंके समान। यह तो नीलमणिपर जब पहले दृष्टि पड़ी, तब जाना कि पितृत्वका अर्थ क्या होता है। उस अकेली नीलरत्नकी सुकुमार नन्ही मूर्तिने एक साथ हम सब गोपोंका पितृत्व सार्थक, सफल धन्य धन्य बना दिया।

पत्नी शरीरसे मोटी है तो स्वभावसे सदा प्रसन्न। मुझे भी कभी कोई चिन्ता नहीं हुई। छोटा भाई नन्द व्रजराज क्या बना, उसे सदा दूसरोंकी ही चिन्ता लगी रहती है। हम सबकी, सबके घर-गोष्ठकी रक्षा, वृद्धि-समृद्धिकी चिन्ता वह करता ही रहता है तो मैं चिन्ता क्यों करूँ। एक तो चिन्ता कोई आवश्यक काम नहीं, दूसरे यह इतना बड़ा काम तो है नहीं कि इसमें अनेक लोग लगें। हमारा व्रजराज कुशली रहे। सबकी चिन्ता कर लेनेको वह अकेला बहुत है।

अब तो व्रजयुवराज आ गया। ऐसा युवराज कि उसपर दृष्टि जानेकी बात बहुत दूर, उसका स्मरण आता है तो सब चिन्ताएँ स्वयं किसी दूसरी सृष्टिमें छिपने भाग जाती हैं। वह हमारा युवराज कितना भी नन्हा हो, सुकुमार तो इतना कि कोई तुलना नहीं; किन्तु जातकर्म संस्कारके समय उसे देखकर महर्षि शाण्डिल्य बोल उठे—'आ गया त्रिलोकीको आनन्दोल्लास देनेवाला। हम ब्राह्मण-देवताओंका यह परम परित्राता!'

ऋषि-मुनियोंकी बात वे जानें, मैं यह सीधी बात जानता हूँ कि व्रजको अपना युवराज मिल गया है और वह तनिक बड़ा हो जाय तो सारे व्रजकी रक्षा कर लेगा। अभी तो वह सबको परमानन्द देने-बाँटनेमें लगा है। उसे स्मरण करते ही हृदय आनन्द विभोर बनता है।

उसको देखने तो दूर-दूरके ऋषि-मुनि आते रहते हैं। मैं तो उसका ताऊ हूँ और कभी भी मेरे पास समयका अभाव नहीं रहा है। कहना यह चाहिये कि कभी भी मैंने अपने लिए कोई काम आवश्यक ही नहीं माना। सब गोप जानते हैं कि अभिनन्द अपने आपमें ही लीन रहनेवाला है। कभी कहीं घूम आये या कुछ कर दिया तो ठीक, अन्यथा तो मुझपर कोई दायित्व किसीने छोड़ा नहीं। सब जानते हैं कि दायित्व निभाना मेरे वशमें नहीं है। अतः अब मेरा व्यसन बन गया है नन्दके गोष्ठमें या उनके चौपालपर बैठे रहना। नन्द वहाँ न भी उपस्थित हों तो मुझे क्या बाधा पड़ती है।

नीलमणिने घुटनों सरकते किसी प्रकार नन्दसदनकी बाहरी देहरी पार की और मुझे नन्दकी चौपालपर बैठनेका व्यसन लगा। यह कोई मेरा अकेला व्यसन नहीं है। बहुतसे गोपोंको, मुनियोंको भी कभी-कभी यह व्यसन लग जाता है। मुझे अकेले तो वहाँ कभी बैठनेको ही नहीं मिला।

हम सब वहाँ बैठे क्या करते हैं ?

यह भी कोई पूछने जैसा प्रश्न रह गया है। अब वहाँ बैठनेका प्रयोजन ही है नन्दके द्वारकी ओर देखते रहना। दृष्टि उधर लगी रहती हैं और परस्पर व्रजराज कुमारकी चर्चा चलती रहती है।

बाधा पड़ती लगती है जब नन्दसदनसे आकर कोई सेविका जलपान धर जाती है अथवा कुछ आहार या जल लेनेका आग्रह करती है। रानी-बहूको पता नहीं हम सबकी ही क्यों चिन्ता रहती है कि वे बार-बार किसी-न-किसीको भेजती ही रहती हैं।

'नीलमणि क्या कर रहा है ?' पूछनेका प्रश्न ही एक है। मैं सेविकासे एक दिन यह पूछ ही रहा था कि नन्दने अपना लाल लाकर मेरी गोदमें रख दिया।

नीलमणि तो मेरे मुखकी ओर ही देखता रहा एकटक देरतक और फिर हाथ-पैर उछाल कर किलकने लगा। उसे अङ्कमें लेकर कहीं कोई सावधान रह पाता है। मैं तो उसके वक्षपर जो स्वर्णिम विन्दु जैसा चिह्न है, उसे देखता रह गया। बहुत धीरे-से मैं उसे पोंछ देना चाहता था। हाथमें पटुका लेकर भी साहस नहीं कर पाता था उस सुकुमारके वक्षको पोंछनेका।

'दादा, यह तो इसके जन्मसे है।' नन्दने ठीक ही समझा था कि मैं समझता हूँ कि लालके वक्षपर कुछ लग गया है। इसकी मैया या रानीवहूके करमें लगा केशर लगा होगा जब भगवान नारायणका अर्चन करके इसे आशीर्वाद देने लगी होंगी, यह मेरा अनुमान था।

'जन्मसे है ?' मैंने भाई नन्दकी बात सुनकर सिर झुकाकर नेत्र बहुत समीप ले जाकर देखा। इतना सुन्दर, इतना आकर्षक लांछन इसके वक्षपर। तभी ध्यान गया कि इसके वक्षपर तनिक दाहिने भी एक श्याम लांछन है और उसकी शोभा भी कम नहीं है।

नीलमणि पैरों चलने लगा, गाष्ठमें जाने लगा; किन्तु मुझे पता नहीं क्या हो गया उसी दिनसे। जब यह दीखता है, मेरी दृष्टि इसके वक्षपर ही जाती है और मैं वहाँ इसके दोनों लांछन एक-एक करके देखता हूँ। उन्हें ही देखता रह जाता हूँ। नीलमणिको अङ्कमें लेकर भी मेरी दृष्टि वहीं जाती है। सिर झुकाकर देखता हूँ। अंगुलीसे स्पर्श करके देखता हूँ। नेत्रोंको उन लांछनोंको देखनेसे तृप्ति ही नहीं होती। कितना आकर्षण है उनमें।

नीलमणि चपल तो है ही। नन्दद्वारकी देहरी पार करने लगा तबसे गोष्ठमें पहुँच जाता था। इसके पीछे ही व्रजेश्वरी बहू या रानीबहू अथवा दोनों निकलती थीं इसे ढूँढ़ने। ऐसेमें मेरा या किसी गोपका गोष्ठमें जाना उचित नही था। नीलमणिके पीछे जानेकी उत्सुकता दबाये रहनी पड़ती थी। यह नटखट भी कहाँ अकेले रहता था। इसके सैकड़ों सखा हो गये शैशवमें ही और उनको इसके बिना कहाँ चैन पड़ती थी।

'बाबा !' अचानक गोष्ठमें-से भागता आकर मेरी गोदमें बैठ गया एक दिन। तब चलने-भागने लगा था। मैया इसे गोदमें उठाकर ले जाने आयी थी। उससे बचने भागा था और समझता था कि इसकी मैया मेरे पास नहीं आवेगी। इतना चतुर हो गया मेरा यह व्रजयुवराज, मुझे यह सोचकर बहुत प्रसन्नता हुई।

यह तो इसका विनोद बन गया। गोष्टमें मैयाको देखते ही भागकर चौपालमें आता और हममेंसे किसीकी गोदमें बैठ जाता। ऐसे निश्चिन्त बैठता है जैसे देरसे यहीं गोदमें बैठा है। बैठते ही नासिकासे, श्मश्रुसे या केशोंसे खेलना प्रारम्भ कर देता है।

गोमय सने कर पद। अनेक बार कपोल, अलकें, उदर, भुजा, पीठ सबपर गोबर लगाये आता है। यह हमारा लाल तो अङ्गोंमें गोबर लगाकर भी ऐसा शोभित होता है, जैसे कोई बहुत यत्नसे अङ्गराग लगाकर भी नहीं हो पाता।

'बाबा !' यह अङ्कमें आकर बैठकर पता नहीं क्या-क्या कहने लगता है। इसे अपने दाऊ दादाकी, सखाओंकी, किसी गाय या वृषभकी अथवा किसी कपि, मयूरकी कितनी ही बातें करनी रहती हैं। यह कुछ कहता

रहता है, वह स्वरका अमृत कान पीते रहते हैं। मैं तो इसके शब्दोंका अर्थ कभी समझ नहीं सका।

इसके साथ इसके सखा आवेंगे ही। गोबरसे सने बालक जिससे लिपटेंगे उसके वस्त्र, अंग देखने योग्य तो हो ही जायेंगे; किन्तु हममें कोई अब न स्नान करते दौड़ता और न उन वस्त्रोंको स्वच्छ करानेकी चिन्ता करता। उपनन्द दादा ठीक कहते हैं—'गोबर, गोमूत्र तो गोपके शृंगार हैं और बालकोंके अङ्गमें लगा गोबर अपने अङ्गमें लगे, यह सौभाग्य सबको सहज नहीं मिला करता।'

नीलमणि जब सखाओंके साथ चौपालमें भाग आवे और अपने इस ताऊकी गोदमें आ बैठे, व्रजेश्वरी बहू वहाँ आ नहीं पाती। उसे भवनमें जाकर मेरी पत्नी या तुंगी भाभीको ही भेजना है; क्योंकि नीलमणि सेविकाके मनानेसे कदाचित ही उठता है।

तुंगी भाभी सीधी हैं। नीलमणि भी उन्हें मानता है। वे मेरे अङ्कसे भी उसे उठा ले जायँ तो अधिक ऊधम नहीं करता; किन्तु मेरी पत्नी आ जाय तो अपनी उस मोटी ताईको दौड़ाने, खिझानेमें उसे भी आनन्द आता है। वह दौड़ पाती नहीं और यह चंचल एककी गोदसे दूसरेके कन्धे या गोदमें कूद जाता है। उसके समीप जाता भी है तो प्रायः उसके कन्धेपर बैठता है।

'इसे स्नान कराना है। अभी इसने कलेऊ नहीं किया।' पत्नी प्रायः मुझसे सहायता करनेका अनुरोध करती है—'इसने तुम्हारे शरीर और वस्त्रोंकी क्या दशाकी है, तनिक अपनी ओर भी देखो। स्नान नहीं करोगे तुम ?'

मैं कुछ कहूँगा यह अपेक्षा पत्नीको नहीं होती। नीलमणि भी उसे यह अवसर नहीं देता। यह कब भागकर ताईके कन्धेपर बैठ जायगा, उसके आँचलसे बहुत शीघ्रतापूर्वक मुख या हाथ पोंछने लगेगा अथवा वहीं उसके आँचलमें मुख छिपाकर स्तनपानको मचलेगा, इसका तो कुछ ठिकाना होता नहीं।

कंसके उत्पात बढ़ते जा रहे थे। उपनन्द दादाने उचित स्थान ढूँढ़ लिया। हम सब गोकुलसे आकर बरसानेके पड़ोसमें बसे और मेरी

नन्दरायकी चौपाल छूट गयी। नीलमणिको नये सखा क्या मिले, भवनमें उसका टिकना ही कठिन हो गया। उसे और उसके सखाओंको यमुना-पुलिन प्रिय हो गया।

अभिनन्दके समीप तो कोई काम था नहीं; किन्तु बालकोंके समीप जाऊँ तो उनकी क्रीड़ामें बाधा पड़ती। उनके समीप तो मुझे जाना था, बार-बार जाना था, किन्तु तब जब आतपमें यमुना-पुलिनकी रेणुका उष्ण होने लगे। बालक खेलमें लगनेपर कहाँ समझ पाते हैं कि धूप और तप्त रेणुकासे उनको कष्ट हो रहा है।

बालक धूम तो करेंगे ही। बालिकाओंको भी इन सबोंके समीप ही यमुनामें जल भरनेकी हठ। नीलमणि और उसके सखा, मेरे पुत्र भी कम उत्पाती नहीं। सब बालिकाओंको छेड़कर झगड़ेंगे, घड़े फोड़ेंगे और इस अपने पौरुषपर प्रसन्न होंगे, उछले-कूदेंगे। ताली बजाकर हँसेंगे। हम बड़ोंको बच्चोंके खेलमें क्यों बाधा देनी चाहिये। दूरसे, जहाँ इनका ध्यान अपनी ओर न जाय बैठे-बैठे इन्हें देखते रहो।

समीप जानेपर सबके सब लिपट जाते हैं। वहीं रेतमें बैठा या लिटा लेते हैं। इनकी न मानो, इनको प्रसन्न न करो तो ये अपने साथ वहाँसे हटकर छायामें आना स्वीकार करेंगे? ये प्रसन्न होते हैं। नीलमणि और उसके सखा अपनी नन्ही मुट्ठियाँ भर-भरकर ऊपर रेणुका डालते हैं अथवा लिटाकर ढकनेका प्रयत्न करते हैं।

'बाबा, अपना उदर मत हिलाना।' नीलमणि दोनों कोमल करोंसे उदर थपथपाता है। रज ठेलकर लाकर अङ्ग ढकता मेरे। इससे क्या अधिक आनन्द आता होगा योगियोंको समाधिमें।

'तुम तो अब बुढ़ापेमें बालक बनने लगे हो।' पत्नी कभी हँसती उपालम्भ देती है—'देवरानी हँस रही थी। कहती थी कि जाकर देखो, जेठजी बालकोंमें कौन-से हैं, ढूँढ़ना पड़ेगा तुमको भी।'

मेरा यह सुख भी कहाँ टिक सका। नीलमणि वनमें बछड़े चराने जाने लगा। मैं नन्दको रोक दे सकता था; किन्तु महर्षि शाण्डिल्य और उपनन्द दादाने अनुमति दे दी तो मुझे बोलनेका अधिकार ही नहीं रह गया।

बालक ही नहीं चाहते कि कोई बड़ा गोप उनके साथ वनमें जाय। अब नीलमणि बछड़े चराना छोड़कर गायें चराने लगा तो भी मुझे क्या अन्तर पड़ना था। दिनभर वनपथकी ओर दृष्टि लगाये चुपचाप बैठे रहो। सायंकाल भी वह थकाथकाया लौटता है। व्यालू करके बहुत थोड़ी देर चौपालमें हम सबोंके मध्य बैठता है और फिर किसीकी गोदमें ही लेटकर सो जाता है। वह सो जाय तो सबको धीरेसे उठकर विदा ही तो लेनी है। दिनभरके थके बालककी निन्द्रामें बाधा तो नहीं पड़नी चाहिए।

इतनेपर भी नीलमणि बहुत प्रिय तो है ही, बहुत ममतामय है। वह कभी सायं लौटते ही कोई गुञ्जा या वनधातु दिखलाने अपने इस ताऊके समीप दौड़ आता है। तब दौड़ आता है जब मैं उसके चौपालपर जानेमें कुछ क्षणका विलम्ब इसलिए करता हूँ कि उसे स्नान करके व्यालू करनेका समय मिल जाय।

कभी प्रातः उठते ही दौड़ा आता है। उसे सदा शीघ्रता रहती है। अपनी ताईसे कुछ कहेगा, पूछेगा और मैं गोष्ठमें गो दोहन भी करता होऊँ तो आकर दोहनी हाथसे लेकर धर देगा पृथक कि पहले इसकी बात सुनलो। बात भी क्या ? वनमें कहीं किसी वनपशुकी चेष्टा या किसी पक्षीके नीड़की, नन्हें शावककी सूचना देनी है इसे। अपनी बात कहेगा और दौड़ जायगा। इसे तो सबको आनन्द ही देना है। आनन्द ही बाँटता रहता है यह।
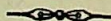
सन्नन्द चाचा

असीम प्रतीक्षाके पश्चात् अपने ब्रजराज दादाके युवराज आगमनकी आशा हुई। अन्ततः वह आत्या जिसे जाने कबसे हम सबके प्राण पुकार रहे थे। उसे जन्म-संस्कारके समय देखा तो लगा, इसकी प्रतीक्षाके लिए तो कोटि-कोटि जन्म भी कम हैं। हम ब्रजवासियोंका तो पुण्य ही कितना, सृष्टिके सब देवता, ऋषि-मुनि और धर्मात्माओंका पुण्य एकसाथ सिमटकर जैसे मूर्ति बनकर आगया था। पुण्यके समान ही सुखद, सुन्दर, सुकुमार और पुण्य सिमटेगा तो बहुत अल्प ही तो बनेगा। वह तो अपने छोटे दादाकी अंजलिमें आ गया था और अपने बड़े-बड़े लोचनोंसे हम सबको चकित देख रहा था।

मुझे कुछ स्मरण नहीं कि जातकर्म-संस्कार कब सम्पन्न हुआ और कब मैं हर्ष-विहवल उठकर नृत्य करने लगा। कब मैंने दधि-दूध नवनीतके भाण्ड उलटने और किसीपर भी निक्षेप करने प्रारम्भ कर दिये।

रानी भाभी कहती थीं—'सन्नन्द तो गायों और वृषभों तक से लिपट-लिपट जाता था। महर्षि शाण्डिल्यको भी इसने नहीं छोड़ा। उन्हें भी दधि-स्नान करा दिया। बड़े-बूढ़ोंको भी उठा-उठाकर नचाने लगा। यह तो पूरा पागल होगया था।'

पागल ही तो हो गया था और पागल तो आज भी हो जाता हूँ। आज भी नीलमणि गोदमें आता है तो उसे उठाकर नाचने लगता हूँ। उसे देखकर पता नहीं कैसे लोग अपनी सुध-बुध बनाये रखते हैं। वह तो जैसे आनन्दका उमड़ता-घुमड़ता महासमुद्र है। उसका स्पर्श मिलता है तो अपने शरीरका पता किसे रह जाता है।

नीलमणि जानता है कि वह गोदमें आवेगा तो उसका यह चाचा उसे लेकर नाचने लगेगा। उसे जब ऐसा आनन्द लेना होता है, तो वह मेरी गोदमें आ जाता है। तब वह क्या करता है, यह मुझे तो पता होता नहीं; किन्तु भाभी कहती है कि 'वह तुम्हारी गोदमें चढ़कर ताली बजा-बजाकर

हँसता है और दूसरोंको भी अंगूठा दिखाकर कह देता है, मेरा चाचा तुझे लेकर ऐसे नहीं नाचेगा।'

भाभी तो हँसी ही करने लगीं—'सन्नन्द, तुम सचमुच कभी कुवलाको ऐसे लेकर नाचे हो ?'

'उस बन्दरियाके साथ तुम नाच लेना।' मैंने भाभीको कह दिया—'मुझे तो बचपनसे नाचना कभी आया नहीं। दूसरे गोपोंने कभी भी किसी महोत्सवमें हाथ पकड़कर उठाया तो सन्नन्द भाग गया। ब्रजराज दादासे पूछ लेना, अनेक बार उनका ही अनुरोध मैं पूरा नहीं कर सका हूँ। भाभी, मैं तो तुम्हारे विवाहके समय भी नहीं नाचा, यद्यपि तब बहुत छोटा ही था।'

पता नहीं इस नन्हे नीलमणि ने मुझे क्या कर दिया है। यह तो पदों चलने लगा तबसे ठुमकने लगा और इसको नाचते देखकर तो नाचते मयूर ठमक जाते हैं। नृत्य होता क्या है, इसे नाचते देखे बिना स्वर्गकी अप्सरायें भी समझ नहीं सकतीं। हम गोप और उनमें भी मैं तो केवल उछलता कूदता हूँ; किन्तु हमारे श्यामको नृत्य करते देखकर अप्सराओंको अपना नृत्य बन्दरियाकी उछल-कूदसे अधिक उत्तम नहीं लगता होगा।

यह जब केवल गूं-गां कर पाता था, तब भी गाता था और अब तो गाता है तो वृक्ष भी झूमने लगते हैं। नटराजेश्वर तो हमारा नीलमणि है। जन्मसे है। इसीसे इसक स्पर्शको पाकर मेरे पद स्थिर नहीं रह पाते, अन्यथा मैं नृत्य क्या जानूँ।

'नीलमणि गा रहा है।' कहीं आस-पास भी यह होता है तो मुझे इसका साधारण स्वर भी गायन लगता है। यह तो किसीसे खीझ रहा हो, किसीको खिझा रहा हो तब भी लगता है कि गा रहा है। संगीत इसके स्वरसे प्राण पाता है।

वैसे हम गोपोंका संगीत—कानमें अंगुली लगाकर इतने उच्च स्वरसे चिल्लाकर आलाप लेना कि चार गाँव दूर तक सुनायी पड़े, यह मुख्य विशेषता है गोप-संगीत की। जिसे सहस्र-सहस्र निकट-दूर गयी गायोंको पुकारते रहना है, वह गोपकुमार कोकिल कण्ठ रहेगा क्या ? कोमल संगीत स्त्रियोंको शोभा देता है; किन्तु हमारा नीलमणि गाता हा तो तुम्बरू भी वीणा पटक देगा। उसका संगीत भी गोप-संगीत लगेगा।

नटखट है नीलमणि ! यह तो अनेक बार भाभीको ही चिढ़ा देता है जब वे गाती होती हैं। गोपियाँ—वधुएँ गाती हैं तो यह उनके समीप उन्हींके समान गाने लगता है। सुना तो यह भी है कि वे जो गाती हैं, वही गाने लगता है और यह गाता है तो सब हँसकर, खीझकर ही तो अपनी झेंप मिटा सकती हैं। इसके स्वरके साथ तो सबकी बेसुरी लगने लगती हैं।

अब इसने पता नहीं कहाँसे वंशी पा ली है। वंशी मैंने बहुत सुनी है। वंशी, वेणु, अलगोजा बजानेका व्यसन रहता है हम गोपकुमारोंको। हमारी गायें प्रसन्न होती हैं वेणुवादनसे। मुझे तो बालक था तबसे यह वाद्य प्रिय रहा है। गोप मुझसे आग्रह करके वंशी सुनते-सीखते रहे हैं; किन्तु नन्हे नीलमणिने जिस पहले दिन अधरोंसे वेणु लगाया, मैंने समझ लिया कि वंशी-वादक सृष्टिमें यह पहली बार आया है। मैंने तो वंशी हाथसे नहीं छुई तबसे। दूसरा कोई बजानेका मन करता है तो मुझे क्रोध आता है। बेसुरे ढङ्गसे बाँसकी नलीमें फूंक मारनेसे उसे न छूना अच्छा नहीं है ? मैं स्वयं यही तो करता रहा था। वंशी तो हमारा यह नीलमणि बजाता है। केवल यही बजा पाता है।

हम गोप जन्मजात कवि होते हैं। कानमें अंगुली लगाकर हम अत्युच्च स्वरसे नवीन-नवीन पद बनाते गाते जाते हैं। यह कोई चमत्कार नहीं है हमारे मध्य और गोपोंमें मुझे तो इसके लिए बहुत बार लोगोंने प्रशंसा दी है; किन्तु हम सब तुक भिड़ानेके अतिरिक्त और कुछ कर पाते हैं ? हमारे पदोंमें भी क्या कविता या लालित्य होता है ? गोप लाठी बजाना जानता है। इसीसे उसके पदमें भी लाठीकी खटाखट रहा करे तो आश्चर्य नहीं।

कविता अवश्य हमारे घरोंमें पलती है। किसीको कविता सुननी हो तो व्रजेश्वरी भाभी जब अपने लालके गुण-चरित दधि-मन्थन करते या अकेलेमें गुनगुनाने लगती हैं तो छिपकर सुनले। वैसे तो वे ऐसी संकोचशीला हैं कि मैंने एक दिन बहुत नम्र होकर अनुनयकी तो बोलीं—'लालजी, तुम तो मुझे चिढ़ाते हो। तुम व्रजमण्डलके प्रशंसित कवि हो, मैं भला क्या जानूँ कविता।'

भाभी ही नहीं, हमारे सब घरोंकी वधुएँ भी अब कवि हो गयी हैं; किन्तु कवि सबको बनाया नीलमणिने ही है। यह आया हमारे गोकुलका

युवराज बनकर और सबके कण्ठोंमें भगवती सरस्वतीने आसन जमा लिया। सबको इसीका वर्णन तो अपने गीतोंमें करना रहता है। सब इसीको तो गाया करती हैं। भाभी तो जब पालनेमें पड़े अपने लालको लोरी गाकर सुनाने लगीं तब मैंने जाना कि वे कितना मधुर गाती हैं और कितनी शीघ्रतासे लोरीकी ललित शब्दावली जोड़ती जा सकती हैं।

कविकुल गुरु तो यह हमारा नन्हा नीलमणि है। इसकी स्मृति लोगोंमें काव्य स्फुरण करती है। यह स्वयं तो जब बोलता है, सहज ही कुछ कहता है, पुकारता है तो उसमें भी संगीत, स्वर और काव्य एक साथ आ जाते हैं।

पता नहीं ऐसी कोई कला कहीं है भी या नहीं जो नीलमणिको अपनाकर, इसका आश्रय पाकर सनाथ न हो चुकी हो। अब तो यह गोचारण करने लगा है। वनमें इसने अपने सखाओंको भी वन धातुओंसे एक-दूसरेके अङ्गोंपर चित्रांकन करना सिखला दिया है। गैरिक, खड़िया, रामरज, मन:शिला जैसी सूखी वस्तुएँ क्या चित्रांकन योग्य हैं ? कौन-सा चित्रकार इनकी रेखाओंको बोलता बनावेगा और उनमें कोमलता ला पावेगा ?

मैंने एक दिन सायं लौटे अपने देवप्रस्थके पृष्ठदेशको देख लिया। बालकको समीप बैठाकर देखता रह गया। पूछा—'पीठपर यह पद्म और उसपर बैठा भ्रमर, उसके समीप नाचती तितली किसने बनायी है ?'

'कन्हैयाने !' देव हँसकर बोला—'उसने तो मेरे उदर, भुजा, कपोलपर भी चित्र बनाये थे। वे सब मिटमिटा गये खेलनेमें। मैंने भी उसकी छातीपर एक पुष्प बनाया। उसने खूब मोटा कपि बनाया आज मधुमङ्गलके उदरपर।'

देव तो पता नहीं कितने विवरण देने लगा। अब ये सब बालक चित्रकार हो गये हैं। मैंने पूछा—'तुझे चित्र बनाना किसने सिखलाया ?'

'इसमें सीखना-सिखलाना क्या ?' नन्हा देव भोलेपनसे कहने लगा—'पुष्प देखा और बना दिया। कपि, मयूर, गिलहरी और बछड़ी बनानेमें

थोड़ी कठिनाई होती है। ये सब चुपचाप खड़े नहीं रहते। कितना भी कहो, हिले बिना मानते नहीं। कभी तो दूर भाग जाते हैं।'

देव नहीं समझता कि नीलमणिकी समीपताने उसे और उसके मित्रको चित्रकला सिखला दी है। अब तो मैं सायंकाल इन बालकोंके अंग मार्गमें ही देखता हूँ। जिसके अंगके जिस चित्रको देखकर चौंकता हूँ, निकट जाकर पूछता हूँ—'यह किसने बनाया ?'

'कन्हाईने।' प्राय: एक ही उत्तर मिलता है। नीलमणिके हाथका रेखांकन छिपता नहीं है।

यह बैठने ही लगा था। बालकोंके साथ धूलिमें बैठा अपनी नन्हीं सुकोमल तजनीसे रेखाएँ खींचनेमें लगा था। इसके सब साथी सिर झुकाये रेखाएँ खींचते थे या एक-दूसरेकी खींची रेखाओंको झुककर देखते थे। दूरसे देखकर लगता था कि ये सब नन्हें आज ही महापण्डित बन जानेकी धुनमें हैं। अन्धाधुन्ध लिखनेमें जुटे हैं।

सबके अंग धूलिसे सने थे। नीलमणिकी घुंघराली अलकें लटक कर इसका चन्द्रमुख घेरे थीं। मैं समीप चला गया। झुकनेसे पहले मैंने पूछा—'तुम सब क्या कर रहे हो ?'

मैंने भूलकी। न बोलता तो बहुत कुछ देख पाता; किन्तु एक ही दृष्टिमें देख सका कि नीलमणिकी अटपटी रेखाओंमें भी अत्यन्त भव्य चित्रांकन है। मेरा स्वर सुनकर इसने सिर उठाया और फिर दोनों कर उठा दिये मेरी गोदमें आनेको। इसे गोदमें लेकर तो मेरे पद स्थिर नहीं रह पाते। उस दिन मेरे नाचते पदोंने ही वह सब रेखांकन मिटा दिया; किन्तु पीछे मैं सावधान हो गया। धूलिमें, पुलिनकी रेणुकामें नीलमणिके द्वारा खींची रेखाएँ मैंने व्रजेश दादाको, उपनन्ददादाको तथा अनेक दूसरे गोपोंको दिखलायी हैं।

रानी भाभी भी कहती हैं कि मुझे अपना यह नीलमणि इतना प्यारा है कि मैं इसकी प्रत्येक बातमें जाने क्या-क्या कल्पना करने लगता हूँ। भाभी तो कहती ही हैं—'मेरे इन कवि देवरको नीलमणिके सम्बन्धमें कविता करनेका रोग हो गया है।'

'भाभी, इस नन्हें नीलमणिने तुमको कवि नहीं बना दिया है ?' भाभी मेरी यह बात भी नहीं मानती हैं। भाभी ही क्या, मेरी बात मानता तो कोई नहीं है। मैं ही कहाँ मानता हूँ लोगोंकी बात कि मुझे सचमुच कोई नृत्य आता है और मैं नीलमणिको गोदमें लेकर जो उछलता कूदता हूँ, वह कोई सचमुचका नृत्य होता होगा।

नन्हा था यह–नन्हा तो अब भी है; किन्तु वनमें जाने लगा है, यही इसकी हठ मुझे प्रिय नहीं लगी। बालकोंके साथ भवनमें न सही, गोष्ठमें, यमुना पुलिनपर खेलनेको स्थान क्या कम है ? यह छोटा था तभी बहुत अच्छा था। नेत्रोंके सम्मुख तो रहता था। अब पूरा दिन इसके वनसे लौटनेकी प्रतीक्षा करते नेत्र थक जाते हैं।

नन्हा था नीलमणि, गोपियाँ और भाभी भी कहती थीं कि बहुत चपल, बहुत ऊधमी हो गया है। अब सब दिन भर बैठी रहो पथपर नेत्र लगाये। तब कोई मेरी मानता नहीं था। मुझे तो यह हमारा नन्हा व्रज-युवराज तब भी अत्यन्त उदार, सदय ही लगता था।

शिशु था, समझ नहीं पाता कि इसकी नन्ही मुट्ठीमें जो धूलि है, वह क्यों सिरपर या मुखपर नहीं डालनी चाहिये। देता ही तो था, हाथपर ही दिया जाय यह क्या शिशु समझ सकता है। सखाओंके, गोपियोंके भी सिरपर धूलि डाल देता था तो बुरा क्या करता था ? यह तो तब भी देता ही था और देकर दूर भाग जाता था।

अब भी यह देता ही देता है। किसीकी अलकोंमें पुष्प लगा देता है, किसीको फल या गुंजा देता है। किसलय अथवा मयूर पिच्छ वनसे ढूँढ़कर सम्हालकर लाता है देनेके लिए और आनन्द तो जन्मसे बाँट रहा है।

यह नन्हा है, स्नेहपात्र है। इसे दिया जाना चाहिये; किन्तु मैं तो सोच ही नहीं पाता कि इसे कोई क्या दे सकता है। इसके योग्य कोई वस्तु मुझे लगती ही नहीं। भाभी इसे आभूषण धारण कराती हैं तो अनेक बार मेरा जी करता है, उन्हें उतार दूँ। इसके अङ्ग इतने सुकुमार हैं कि पुष्पाभरण भी इसे पीड़ा ही देते होंगे और लाभ क्या मणि काञ्चन आभूषण इसे धारण करानेसे ? इसके अंगपर आकर वे आभूषण ही चमक पाते हैं, शोभा पाते हैं, इसकी शोभा तो वे क्या बढ़ावेंगे।

अब इसने व्रजकी रक्षा भी प्रारम्भ कर दी। कालिय नाग जैसे विषधरके सिरपर नाचता रहा। उस नागको निकाल भगाया इसने यमुनाके ह्रदसे और गोवर्धन सुकुमार करपर उठाकर पूरे व्रजको इसने महावृष्टिसे बचा लिया। व्रजका यह नन्हा युवराज—कंस भी मथुरामें सिर ही पीटता होगा। उसके जो मूर्ख असुर भूले भटके हमारे आस-पास आ निकलते हैं, उन्हें यह सीधे यमपुर भेज देता है। हम इसकी रक्षा-चिन्ता तो क्या करते, इसने हम सबको निश्चिन्त कर दिया है।

हमारा यह नन्हा नीलमणि, व्रजका यह युवराज है ही ऐसा कि इसे सोचने लगो तो मन और कुछ सोचता नहीं। इसे छोड़कर दूसरा कुछ सोचने योग्य भी तो संसारमें नहीं है।

नन्दन चाचा—

अपने शैशवसे ही मैं सबका स्नेहभाजन रहा। सबसे छोटे होनेका लाभ मुझे भरपूर मिला। पिता-माता जब परलोक पधारे, भाइयों और भाभियोंने उनका स्थान ले लिया। उन्होंने कभी जानने ही नहीं दिया कि संसारमें कोई समस्या भी कभी होती है।

मेरी रुचि मल्लशालामें और सब भाइयोंने मुझे इसके लिए पूरा स्वतन्त्र कर दिया। गोपगृहमें दूध-दही माखनकी कीच रहती है। मेरे साथी और अनुगतोंतकने नहीं समझा कि अपने गृह भी जाकर भोजन और जलपान करना आवश्यक होता है। मुझे चाहनेपर भी किसीने कभी न गोचारण करने दिया, न गोष्ठ सेवा करने दी।

विवाह हुआ तो हम दोनों और अधिक स्नेह पाने लगे। मैं तो मल्ल होनेसे अपनी मल्लशालामें व्यस्त रहता लेकिन पत्नी उलाहना देती थी कि उसे सबने गुड़िया मान लिया है। उसे सजाकर, खिला-पिलाकर सब प्रसन्न होते हैं और उसकी व्रजेश्वरी जीजीतक उसे अपनी चरणसेवा नहीं देती।

रानी भाभी आयीं हमारे गोकुल और भगवती पूर्णमासी पधारीं—इनके श्रीचरण पड़े तो गोपोंके आँगन बालकोंकी किलकारियोंसे गूंजने लगे; किन्तु भले दो पुत्र पाये मैंने, उनके लालन-पालनका भार पत्नीपर पड़ा ही नहीं।

'तुम तो अब भी नववधू बनी रहती हो।' मैंने पत्नीको एक बार चिढ़ाया—'तुम्हारे वस्त्र पुत्रोंके कारण कभी मलिन नहीं देखे मैंने।'

'पुत्रोंको तो पाया व्रजेश्वरी जीजीने।' पत्नीने हँसकर कहा—'मुझे तो उनकी धाय होनेका भी सौभाग्य नहीं मिला। लेकिन मेरे नीलमणिको तनिक बड़ा होने दो, वह तुम्हारे भी श्मश्रु खींचेगा और तुम्हें भी भली प्रकार पवित्र करेगा। मेरे वस्त्र तो गीले करता ही रहता है।'

पत्नीने बिना संकोच उल्लासपूर्वक कहा—'मेरे आँचलका दूध उसीने

सफल किया। तुम्हारे भद्रने तो कम ही मेरी गोद जानी और तोक भी व्रजेश्वरी जीजीके अंकमें ही तृप्त होता है; किन्तु नीलमणि गोदमें आते ही आँचल ढूंढ़ता है और वह आता है तो रानी जीजीके रामको और दूसरे शिशुओंको भी मेरी गोदकी ललक लगती है।'

व्रजेश्वरी भाभी आरम्भसे ऐसी ही हैं। उनके लिए पूरे व्रजमें कोई कभी पराया नहीं हुआ। मैंने तो मल्लशालामें जानेके दिनसे उन्हें ही माँ जाना है। अब वे हम सबके शिशुओंकी मैया हो गयी हैं।

'तुम कभी जीजीको देखना अपने प्रांगणमें बैठी।' पत्नी हँसती है; किन्तु मैंने तो उन्हें बार-बार देखा है। उनकी गोद सूनी थी तब भी वे मुझे जगन्माता दीखती थीं। मैं उनकी पद-वन्दना यों ही नहीं करता आया हूँ।

अब तो भाभीको मेरे जानेपर भी उठनेको नहीं मिलता। उनकी गोदमें, कन्धोंपर, पीठपर शिशु लदे होते हैं। उनके अंचलमें दोके सिर होंगे तो चार कुनमुना रहे होंगे सिर डालकर दूध पीनेको। भाभी मुझे देखकर वस्त्र सम्हालती हैं तो कह देता हूँ—'भाभी, मैं भी इन जैसा ही तुम्हारा शिशु हूँ; किन्तु तुमने मुझे यह सौभाग्य कभी नहीं दिया।'

'तू बड़ा मल्ल हो गया और अब भी शिशु बनना चाहता है।' भाभी हँसकर झिड़कती हैं तो मैं आनन्दसे विभोर हो जाता हूँ।

'सच, मैं बड़ा हो गया?' मैंने कहा एक दिन—'तब दादासे कहो, मैं उनकी भी गायें चरा लाया करूँगा।'

'मैंने कब कहा कि तू गायें चराने योग्य हो गया।' भाभी लगा कि गम्भीर हो गयीं—'महर मुझे डाँटें, तू यह चाहता है?'

जगज्जननी इससे क्या भव्य होती होंगी? भाभीके वस्त्र बालक गीले करते ही रहते हैं। उनके वस्त्रोंपर, कपोलोंपर, केशोंमें खड़े होनेवाले, घुटनों सरकनेवाले बालकोंके शरीरमें, करपदमें लगी धूलि, गोबर, गोमूत्रका जैसे अंगराग लगा रहता है।

पिता तो मैं कभी बना नहीं। बोलने लगे तो भद्र और तोक भी मुझे दाऊ तथा नीलमणिके समान चाचा ही कहते हैं। उनके बाबा तो

व्रजेश्वर दादा हैं। मेरी पत्नीको नीलमणि चाची कहता है, केवल उसीको चाची कहता है। व्रजमें और सबको तो माँ कहता है। भद्र और तोक भी उसे चाची ही कहते हैं।

पत्नीने ही नीलमणिको मेरे अंकमें दिया पहले और मुझे लगा, उसने आज मुझे पिता बना दिया। लेकिन मैं तो नीलमणिको देखता ही रह गया। शिशु इतना सुकुमार होता है?

'उसे ऐसे क्या देखते हो?' पत्नी बोली—'मैं अपने लालको तुम्हें कभी मल्लशाला नहीं ले जाने दूँगी। तुम उसे भी उठक-बैठक कराने लगोगे।'

'यह कितना सुकुमार है।' मैं ठीक बोल भी नहीं पाता था। मेरे कठोर हाथ, मल्लशालामें घिसा शरीर, इस नवनीत कोमलको कष्ट होता होगा। मैंने इसे पत्नीके अङ्कमें दे दिया। वैसे इतने ही क्षणमें इस चपलने मुझे गीला कर दिया।

'तुमको भी पवित्र कर दिया इसने।' पत्नीने इसे अपने हृदयसे लगाया।

'इसके अङ्ग क्या धूलि लगाने योग्य हो सकेंगे?' मेरी दृष्टि इस नीलसुन्दरके ऊपरसे हटती नहीं थी।

उस दिन मुझे कहाँ पता था कि व्रजरज और गोमय-गोमूत्र इसे इतने प्रिय होंगे। यह तो घुटनों सरकने लगा तभी भवनकी देहरी पार करके गोष्ठमें सरक जाता था अपने सखाओंके साथ। सर्वांग कीचसे सने इसकी शोभा देखकर तब भी नेत्र थकते नहीं थे।

'अब तुम माता लगती हो।' मैंने पत्नीके कपोलपर नन्हें करोंकी गोबरकी छाप देखकर कहा था।

'यह मेरे नीलमणिके करोंका अङ्कन है।' पत्नी बड़े उल्लासमें थी। वह अपने वस्त्र अनेक स्थानोंसे देख-दिखा रही थी। 'वह नटखट बार-बार गोष्ठमें भाग जाता है। उसके सब साथी उसके ही जैसे हैं।'

'तनिक बड़ा हो जाय तो अब तुम उसे मेरी मल्लशाला जानेसे मना नहीं करोगी। उसका छुई-मुई-सा शरीर कुछ तो दृढ़ होना चाहिये।' मैं कह तो गया; किन्तु जानता हूँ कि उसके अंगपर धूलि लगानेका साहस मुझमें कभी नहीं होगा।

'तुम उसे मल्लशाला ले जाओगे ?' पत्नीने चौंककर मेरी ओर देखा। जैसे मैंने कोई बहुत अशोभन बात कह दी हो। फिर धीरे-से शिथिल स्वरमें बोली—'वह अपने सखाओंके साथ ही खेल कूदकर दृढ़ अंग कर लेगा अपने। मैं तो उसे भूमिपर भी उतरने नहीं देना चाहती; किन्तु न जीजी मेरी सुनती हैं और न वह चपल ही मानता है। उसके अंग दृढ़ बनानेकी बात ही सब करते हैं। कोई नहीं देखता कि वह कितना सुकुमार है।'

पत्नीके नेत्र भर आये। मैं फिर कभी नीलमणिको मल्लशाला ले जानेकी बात परिहासमें भी नहीं कर सका। मुझे क्या पता था कि ये बालक बड़े होकर भी मल्लशाला नहीं जायेंगे। बड़े दादाके विशालको भी मेरी मल्लशाला नहीं रुची। भद्रको तो व्यायामके नामसे ही जैसे चिढ़ है। सब बालक पैरों चलने-दौड़ने भी लगे तो भी कोई नीलमणिका साथ छोड़कर मेरे साथ मल्लशाला जाता ? नीलमणि जैसे सुकुमारको मल्लशाला दिखलानेका भी साहस मैं नहीं कर सका।

बालकोंकी प्रकृति समझना बहुत कठिन है। यही भद्र है, कहनेको मेरा पुत्र है; किन्तु घुटनों सरकने लगा तबसे व्रजेश्वरी भाभीकी गोदमें ही सोया। थोड़ा बड़ा भी हुआ तो नीलमणिके साथ व्रजेश्वर दादाके समीप सोने लगा। सब कहते हैं—'भद्रका रूप-रंग, बोलने, चलनेका ढंग, सब अपने पिताके समान है।' लेकिन मैं मल्ल हूँ और भद्रको व्यायामसे ही चिढ़ है। तोक तो रंग-रूप, वेश-भूषा सबमें नीलमणिकी दूसरी मूर्ति है।

नीलमणि शृंग भी फूँकता है तो वह भी बहुत सुरीला बजता है। मुझे भी मृदंग उत्तम बजाना है और गोप नृत्य तो मेरे बिना अधूरा माना जाता था; किन्तु नृत्य करता है हमारा नीलमणि। वह नन्हा दोनों कर फैलाकर ठुमकने लगता है तो मयूर भी नृत्य भूलकर उसीको देखने लग जाता है।

भद्रको ही पता नहीं कहाँका अटपटा स्वभाव मिला है। उसे वाद्य प्रिय है भारी दुन्दुभि। उसपर धड़ाधड़ पीटता जायगा। बहुत छोटा था तभी व्रजेश्वर दादाका शंख मुखसे लगाकर धून् धू करने लगा। अब शृंग फूँकता है तो पूरे व्रजको जगा देता है। नृत्यके नामसे ही चिढ़ता है। कहता है—'यह तो लड़कियोंका काम है।' अब उसे वस्त्र भी अटपटे चाहिये। नीलमणिकी कछनी बाँध लेगा; किन्तु पटुका कन्धेपर रखेगा रामका। केशोंमें मयूर पिच्छ लगाने ही नहीं देगा। उसे हंसपिच्छ चाहिये और छोटा लकुट रुचेगा नहीं। मेरा मोटा लट्ठ तब भी उठाना चाहता था, जब मेरे घुटनेतकका ही था।

मुझे तो व्रजेश्वर दादाने अबतक गोचारणकी अनुमति नहीं दी; किन्तु हम सब गोकुलसे वृन्दावन आये तो नीलमणिकी हठने उनको भी विवश कर दिया। बालकोंको बछड़े चराने जानेकी अनुमति देने पड़ी। नीलमणि वनमें जायगा तो तोकतक भी घरमें रोके नहीं जा सकते, यह सुनिश्चित ही था।

ये बालक बछड़े चराने जाने लगे तो तोक प्रतिदिन कोई-न-कोई नवीन समाचार वनके ला देता है। पहले ही दिन लौटकर कहने लगा—'भद्र दादा हम सबका सेनापति हो गया है।'

'भद्र या बलभद्र ?' मैंने कुछ चकित होकर ही पूछा था। रानी भाभीका राम सचमुच बल है। मैं जानता हूँ कि वह घुटनों चलता था तभी ऊखल गिरा लेता था। वही एक दिन कंसको पछाड़ कर अपने पिताको बन्दी बनानेका बदला लेगा। वह इन बालकोंका बना बनाया सेनापति है।

'दाऊ दादा तो किसीको कुछ कहता ही नहीं। वह तो सबकी बात मान लेता है।' तोक ठीक समझता है कि ऐसा दाऊ सेनापति नहीं हो सकता। सेनापतिको शासक होना चाहिये। 'भद्र दादाकी बात कन्हाई भी नहीं टालता। कन्हाई तो दूसरे किसीकी बात मानता नहीं, भद्र दादाकी ही बात मानता है।'

भद्र विचित्र है। बोलता है तो जैसे पूरे निश्चयसे ही बोलता है। कुछ कहेगा तो ऐसे कहेगा मानो आदेश ही दे रहा हो। अब बालकोंका सेनापति बन गया। मुझे हँसी आ गयी कि बालकोंने भी अपनी अच्छी सेना बना ली और सेनापति भी चुन लिया।

'कन्हाई दादाने आज एक राक्षस मार दिया।' तोकने लौटकर समाचार दिया तो मेरा हृदय धक्-से रह गया। अब व्रन्दावनमें भी राक्षस आने लगे ?

'वह बछड़ा बनकर आया था, खूब मोटा तगड़ा काला बछड़ा।' तोक अपने उत्साहमें कहता गया—'उसने कन्हाई दादाको दुलत्ती मारी तो दादाने उसके दोनों पिछले पैर और पूँछ पकड़ कर उसे खूब घुमाया और कपित्थके व्रक्ष पर पटक दिया।'

'बछड़ा मार दिमा ?' मैं झुंझला कर बोला।

'वह तो राक्षस था।' तोक अपने दोनों हाथ फैलाकर बताने लगा—'इतने बड़े तो उसके दाँत निकल आये जब वह मरा।'

'राक्षस था तो तुम्हारा सेनापति क्या कर रहा था ?' मैं बिना सोचे बोल गया। किसी राक्षसके सम्मुख भद्र या कोई बालक क्या कर सकता है ?

'कन्हाई दादा कहता है कि राक्षस देखनेमें ही बड़े भारी और डरावने लगते हैं। बताशे जैसे पोले होते हैं। खूब गुर्राते चिल्लाते हैं।' तोक उत्साहमें था—'उसे तो मैं ही मार देता फट्से।'

बालकका उत्साह भंग नहीं करना चाहिये; किन्तु मैं सोचने लगा हूँ कि हमारे नीलमणिमें ही कोई विशेषता है अथवा मैं ही भ्रममें हूँ कि बलवान बननेके लिए मल्ल बनना पड़ता है। जो जितना सुकुमार, उतना अधिक बलशाली, यह बात किसी भी प्रकार बुद्धिमें बैठती नहीं। नीलमणि सबसे सुकुमार, सबसे दुर्बल और वही दैत्य मारता है।

वह कुल छै दिनका था तो वह राक्षसी पूतना उसे ले भागी थी। मुझे तो लगा कि गोपियाँ और हमारे चार-छै रक्षक उसके पीछे चिल्लाते, लाठी लेकर दौड़े तो भयके कारण उसके प्राण निकल गये। वह ठोकर खाकर गिरी होगी और जीवित मिलती तो रक्षक उसकी क्या पुष्पोंसे पूजा करते ?

वह दैत्य ले उड़ा था नीलमणिको आँगनसे आकाशमें। पता नहीं उसे क्या हो गया। मैंने तो तब यही सोचा था कि ऊपर किसी गीधने उसपर

झपट्टा मारा होगा। डरकर वह नीचे पूरे वेगसे आया और धोखेसे शिलापर गिर पड़ा। अपने वेगकी टक्करसे ही उसकी धज्जियाँ उड़ गयीं।

लेकिन आज मैं सन्दिग्ध हो उठा हूँ। हमारे नीलमणिमें ही ऐसा कुछ है कि इसे छूते ही असुरोंके प्राण निकल जाते हैं। यह नन्हा सुकुमार तो भला उन्हें क्या मारेगा। इसे पता भी नहीं होगा कि वह बछड़ा बना राक्षस आया है। इसे घुटनों चलता था तबसे बछड़ोंकी पूँछें पकड़नेका व्यसन है। कई-कई बछड़ोंकी पूँछें एक साथ पकड़ लेता था। उनके पीछे घिसटता भागता था। वनमें काला मोटा बछड़ा दीखा इसे तो उसकी भी पूँछ ही पकड़ने उसके पास गया होगा।

राक्षसको भी कैसे पता लगता कि नीलमणिके छूते ही दैत्य, दानव, राक्षसोंके प्राण उन्हें छोड़ भागते हैं। ऐसा क्या प्रभाव है नीलमणिमें ? चाहे जो हो, नारायण भगवानने हम सबपर बड़ी कृपाकी। हमारे नीलमणिकी रक्षा उनकी कृपा ही करती है। नीलमणि हम सबका सर्वस्व, हमारा प्राण और वह इतना सुकुमार कि कुसुमका आघात भी सहने योग्य नहीं। उसको अब भी गोदमें उठाते मेरे कर कम्पित होने लगते हैं।

बाबा वृषभानु—

श्रीनन्दरायजी मेरे बाल सखा, मेरी आन्तरिक अभिलाषा थी कि हम दोनोंकी मैत्री चिरस्थायी बन जाय। उनकी पत्नीकी गोद भरती तो हम दोनों सम्बन्ध सूत्रसे बँध जाते। बड़ी लालसा और प्रतीक्षाके पश्चात् वह शुभ दिन भी आया। मैं लालके जन्म दिनपर बधायी देने गया तभी बात पक्की हो गयी।

नन्दराय तो इतने सीधे हैं कि पूछो मत। मैंने उनसे पूछा था—'अब अपनी उस ललीको इस सदन कब ला रहे हो?'

कहने लगे—'यह सदन तुम्हारा नहीं है? लली भी तुम्हारी और लाल भी तुम्हारा। लेकिन मैं भी तुम्हारा ही हूँ। जिसे जब जहाँ रखना हो, रखो।'

ऐसे मित्रसे बात पक्की क्या करनी थी। मैं तो उसी दिन कहते-कहते रुक गया कि यह गोकुल छोड़ो और सब बरसाने चलो। अब मुझे सेवाका अवसर दो।'

बात अटपटी थी। श्रीव्रजराजको उनके पिता-पितामहका निवास त्यागनेको कहना धृष्टता थी; किन्तु मेरा मन उसी दिनसे अधीर रहने लगा था। भाई नन्दराय इतनी दूर रहें, यह किसी प्रकार सहा नहीं जाता था। मैं कितना प्रसन्न हुआ था, जब मैंने सुना कि उपनन्दजी सबको लेकर हमारे पड़ोसमें ही बसने आ रहे हैं।

उस बधायीके दिन तो केवल सुन आया था श्रीनन्दरायके लालके रूपकी चर्चा। लेकिन उसे देखा उस पहले दिन जब गोकुलसे सबके छकड़े, गोधनके साथ नन्दीश्वर गिरिपर बसने आये।

वह नन्हा ही तो है। यह तो श्रीनन्दरायजीने बतलाया कि उन कई बालकोंमें बड़ा-गौर वर्ण श्रीवसुदेवजीकी रोहिणी रानीका तनय राम है। उसे बल कहते हैं लोग। श्रीवसुदेवजीके कुलका वह गौरव, उसे देखते ही मैं

भी संभ्रमसे खड़ा रह गया। उसका तेज, शील और सौन्दर्य—यह तो सम्राटोंका सम्राट लगता है शैशवमें भी।

'अब कंसको भी पता लगेगा कि किसीके पिताको वन्दी करनेका कैसा परिणाम होता है।' मैंने उसी दिन नन्दरायसे कहा था—'यह त्रिभुवनका शासक होने आया है। हम सबका सौभाग्य कि इसके चरण हमारे गोपगृहोंमें पड़ रहे हैं।'

उसने अंजलि बाँधकर मस्तक झुकाया तो सूझता ही नहीं था कि उसे क्या आशीर्वाद दूँ। 'सब लोक और लोकपाल तुम्हारे चरणोंमें सिर झुकावेंगे। तुम सबका स्नेहसे पालनकर्ता बनो।'

लेकिन मुझे अवसर कहाँ था कि भर आँख रामको देख सकूँ। वह भले शिशु हैं; किन्तु उनका तेज तो मुझे भी सीधे उनके मुखकी ओर देखने नहीं देता। फिर उनसे सटा ही आया था श्रीनन्दरायका लाल। उसने भी अंजलि बाँधकर ही सिर झुकाया था; किन्तु मैंने उसे अंकमें उठा लिया था।

वह नीलसुन्दर तो लगा ही नहीं कि अपना नहीं है। गोदमें आते ही मेरे मुखकी ओर देखता बोला—'बाबा!'

उसके वे बड़े-बड़े कमल लोचन, वह नन्हा मुख और वह अमृतवाणी। मैं ऐसा हो गया कि बोल भी नहीं सका। मेरे नेत्रोंसे अवश्य अश्रुधारा चली होगी। उसने अपने नन्हें करोंसे मेरे कपोल पोंछे।

वह अपना, जन्म-जन्मका अपना। पता नहीं कितनी देर उसे अङ्कमें लिए स्तब्ध खड़ा रहा। भूल ही गया कि श्रीनन्दराय सामने खड़े हैं। एक बार जी हुलस उठा—इसे ऐसे ही उठाये बरसाने लिये चलूँ और वहाँ ललीको इसके साथ बैठा दूँ।

लली इसकी, इसीके लिए, यह तो उस श्रीनन्दरायके लालपर जिसकी भी दृष्टि पड़ी, उसीके मुखसे निकल गया। मेरे भाइयोंने, मेरे गोपोंने, सबने पहली ही दृष्टिमें यही कहा।

मेरे अङ्कसे स्वयं ही उतरा यह। मेरे साथ मेरे श्रीदाम, सुबल गये थे और वे भी नीलसुन्दरसे मिलनेको उत्सुक थे। वह जब सुबलसे लिपट गया

अङ्कमाल देते, मैंने नन्दरायसे कहा—'यह छवि नेत्र भरकर देख लो। लली और इसके इस अग्रजमें भेद करना अनेक बार हमें भी कठिन पड़ता है।'

'यह भद्रसेन है। मेरे छोटे भाई नन्दनका पुत्र!' श्रीनन्दराय बालकोंका परिचय दे रहे थे—'और यह नीलमणिकी दूसरी मूर्ति इसका अनुज तोक।'

मैंने फिर तोकको और भद्रको अङ्कमें उठाया और उसी समय कहा—'नन्दरायजी, तुम्हारे सब भाइयोंके बालकोंको मैं अपना बनाने वाला हूँ। मेरे और मेरी भाइयोंकी पुत्रियाँ और कहीं नहीं जायँगी। तुम्हारी अस्वीकृति मैं नहीं सुनूँगा।'

'मैं अस्वीकार करनेवाला होता कौन हूँ।' नन्दरायने कहा—'ये सब तुम्हारे ही तो हैं।'

भद्र तो मुझे गम्भीर लगा; किन्तु तोकको मैं देरतक अङ्कमें ही लिये रहा। वह नीलसुन्दर नन्दरायके लालकी दूसरी मूर्ति। उसे लेकर लगता था कि श्याम ही अङ्कमें है।

श्यामको किसीसे भी परिचय करनेमें क्षण भी नहीं लगते। मेरे श्रीदाम-सुबलको उसने उसी समय साथ ले लिया और अपनी मित्रमण्डलीमें मिल गया। सुबल तो उसी समयसे उसका अन्तरंग बन गया। बालकोंको घुलने-मिलनेमें कहाँ कोई शिष्टाचार बाधक बनता है।

शिष्टाचार ही तो बाधक बना कि मैं श्रीनन्दरायसे पूरा आग्रह नहीं कर सका कि वे बरसानेका सदन अपना बनालें। यही उचित-अनुचितका विचार मुझे रोक गया कि मैं नीलसुन्दरको गोदमें उठाये उसी दिन बरसाने नहीं आ सका। उसी दिन उसे ले आता और ललीको उसके साथ कर देता, कितना आनन्द पाता।

पत्नीसे मैंने यह बात कही तो वे ललीको वक्षसे लगाकर उसका मुख देखती रह गयीं। फिर उन्होंने बड़े उल्लाससे कहा—'ऐसे कैसे लली दे देंगे उसे।'

कह तो उन्होंने दिया; किन्तु यह भी कह गयीं—'उसे अङ्कमें उठाये आ जाते तो सचमुच आनन्द तो बहुत आता।'

'तब तुम उसे अकेला ही लौट जाने देतीं ?'

'तब लौटने ही क्यों देती ?' पत्नी मुझसे अधिक ही चतुर हैं—'तब मैं यशोदाको अंगूठा दिखा देती। लली भी मेरी और लाल भी मेरा।'

'सो तो अब भी वह तुम्हारा ही है।' मैंने कहा—'यही श्रीनन्दरायने उसके जन्म दिन कहा था। उनकी महर भी यही कहेंगी। तुम अपनी उन सखीसे पूछ देखना।'

'क्या पूछूँगी।' पत्नीके नेत्र भर आये—'वह भाग्यवान है।' लली उसीकी है। वही बड़ी है और मैं उससे छोटी होकर भी धन्य हूँ। लेकिन उसके लालको अङ्कमें बैठा देनेका अवसर तुमने खो दिया।'

'खो काहेको दिया।' मैं बोला तो पत्नी चौंक गयीं। उन्हें भी लगा कि यह क्या अशुभ बोल गयीं वे।

'वह मेरे अंकमें ललीके साथ बैठेगा तो सही।' पत्नी इस ध्यानमें ही मग्न हो गयीं और हमारी लली इतनी भोली कि कभी माताका मुख देखती, कभी मेरा। समझ ही नहीं पाती थी कि हम दोनों आज यह किसकी अटपटी चर्चा करने लगे हैं।

श्रीनन्दरायका वह लाल, उसे एक बार देखलो तो वह जैसे नेत्रोंमें ही बस जाता है। वह स्मरण आता है और उसके साथ ही लली स्मरण आती है। मेरे मनमें तो अब इन दोनोंकी जोड़ी बन गयी है।

पत्नीने ही बतलाया कि ललीको अपनी पूजाके लिए स्वयं यमुनाजल भरनेकी धुन चढ़ी है। उसकी सब सखियाँ साथ जाने लगी हैं। सब नन्दीश्वर-पुरके समीपके ही घाटपर जातीं हैं।

'वह घाट तो इन सबोंका है ही।' मैंने पत्नीसे कहा—'मुझे भी आजकल नयी-नयी ऐसी समस्याएँ मिलने लगी हैं कि उनके सम्बन्धमें कोई निर्णय श्रीनन्दरायसे मिले बिना मैं कर नही पाता। इसलिए मुझे बार-बार नन्दीश्वरपुर जाना पड़ता है।'

पत्नी मेरा मुख देखती रह गयीं। मेरी बात समझी उन्होंने तब जब मैंने कहा—'तुम एक बार वहाँ अपनी सखीसे जाकर मिल आओ तो फिर तुम्हारा काम भी उनसे मिले बिना अटका ही रहेगा। तुम भी प्रतिदिन उठते ही उनके सदनकी ओर जाती दीखोगी।'

'तुम अब इस आयुमें परिहास करते हो ?' पत्नीने कुछ लज्जापूर्वक कहा—'मैं वहाँ कैसे जा सकती हूँ ?'

'उनके लालको तुमने देखा नहीं, इसीलिए ऐसा कह रही हो।' मैंने अपनी बात कह दी—'मुझे तो उसे देखे बिना रहा नहीं जाता। वह अङ्कमें बैठ जाता है तो लगता है मैं बैकुण्ठमें बैठा हूँ।'

'सुना तो है कि यशोदाका लाल काला है।' पत्नीने हँसकर कहा—'वह भादोंकी काली अँधेरी रातमें आया। पता नहीं यशोदाने कोयला खाया था या नहीं। अपनी लली·······।'

'अपनी लली तो है ही उसकी।' मैंने कहा—'वह ऐसा काला है कि उसे देखनेपर पूर्णचन्द्र भी ज्योतिहीन लगता है। वह त्रिभुवनको आनन्द, आलोक देने आया है।'

'आवेगा तो सही वह इस ओर भी कभी।' पत्नी तो जैसे किसी भावलोकमें पहुँच गयी हो।

लेकिन वह 'कभी' नहीं, प्रतिदिन आने लगा हमारे सदनके सम्मुख ही होकर। बात तो बुरा लगनेकी थी कि इतने नन्हें सुकुमारको श्रीनन्दरायने अभीसे बछड़े चरानेको कह दिया, किन्तु मुझे प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता हुई पत्नीको और हमारे बरसानेके बालक तो कई दिनसे प्रसन्नतासे फूले फिर रहे थे—'हम सब कन्हाईके साथ वनमें बछड़े चराया करेंगे।'

वह और उसके नन्दगाँवके सखा अपने बछड़े लेकर हमारी पौरिके सम्मुखसे ही निकलने लगे। उन्हें अन्ततः हमारे बरसानेके बालकोंको साथ लेना होता था। वे लौटते थे इधरसे ही। यह दूसरी बात है कि हमारे बालक उनके साथ नन्दगाँव चले जाते थे। उन्हें लाना पड़ता था वहाँ जाकर। बछड़ोंको तो हमारे गोप किसी प्रकार रोक लिया करते थे।

श्रीनन्दरायका लाल जब वनसे लौटता था, मुझे सदा वह थका-थका लगता था। वह कितना भी हँसता-नाचता लौटता, यह तो उसका स्वभाव है; किन्तु उसके शशि मुखपर स्वेद कणिकाएँ क्या कहती थीं, यह भी क्या कहना पड़ेगा। गो-रज सना उसका नन्हा श्रीमुख तो बस देखो और देखते रहो।

मुझे तनिक मार्गसे एक ओर, कुछ छिपकर ही खड़ा होना पड़ता है प्रतिदिन। बालक थके होते हैं। वे रुकेंगे तो नहीं, बछड़ोंके साथ ही जायँगे। तब नीलसुन्दर अभिवादन करने आधे क्षण भी रुके, यह उचित नहीं लगता था। उसे शीघ्र विश्राम मिलना चाहिये।

'तुम्हारी ललीको अब दही बेचनेकी धुन चढ़ी है।' पत्नीने कुछ मुस्कराते ही कहा था।

'ठीक तो है, बालिकाएँ घरमें बैठी-बैठी ऊब जाती होंगी।' मैंने भी हँसकर ही कहा—'वे वनमें कपियों, शशकोंको दही खिला आया करेंगी। लली या उसकी सहेलियाँ कपि देखेंगी तो स्वयं दहेंड़िया फेंककर भागेंगी।'

होना तो यही था। ये भीरु बालिकाएँ वनपशुओंको देखकर डरेंगी नहीं तो और क्या करेंगी; किन्तु इनकी हठ है कि दही बेचने जाना ही है। वनमें इन सबके भाई भी तो जाते हैं और इनकी भयकातर पुकार सुनकर वह नीलसुन्दर दौड़ा आता है। वह व्रजयुवराज, उसे सबकी रक्षाकी चिन्ता होनी ही चाहिये।

लड़कियोंकी बात क्यों करूँ। अब श्रीनन्दरायसे सम्मति लेने जाने योग्य कोई समस्या मेरे समीप ही नहीं रही। अब तो मुझे ही अनेक कार्य स्मरण आते हैं वनमें जानेके। केवल यह बचाना होता है कि बालकोंको मेरे आस-पास होनेका पता न लगे। उनके खेलमें, आनन्दमें बाधा न पड़े।

अब कुछ सोचना पड़ेगा। कंसके असुर अब इधर भी आनेका साहस करने लगे हैं। गोकुलतक तो कुछ बात थी। मथुरा बहुत समीप थी। वे क्रूर भूले-भटके आ जाते थे; किन्तु अब यहाँ? वनमें वह बछड़ा बना असुर आया था और फिर बक आ गया। मैं उनके शव देख आया। गोपोंको उनके

शव खड्डमें फेंककर जला देनेको कह आया; किन्तु इस समस्याका कोई समाधान तो निकालना पड़ेगा।

'कन्हाई तो हम सबमें सबसे दुर्बल है। श्रीदाम दादा उसे मल्लयुद्धमें सहज ही पटकनी दे लेता है।' सुबल कह रहा था—'वही कंसके राक्षस मार देता है तो हम सब तो फटाफट मार देंगे। कंसके पास कितने राक्षस हैं?'

बालक अपने ही ढङ्गकी तो बात करेंगे। सुबल ही कहता था कि सब बकको देखकर डर गये थे। पर्वताकार बगुलेको देखकर बालक डर तो जाते ही; किन्तु नीलसुन्दरने उसे चोंच पकड़कर चीर ही डाला। यह नन्हा, सुकुमार—कैसे किया होगा इसने यह? श्रीनन्दरायको महर्षि गर्गने ठीक ही कहा था कि यह गुणोंमें नारायणके जैसा है।

महर्षि गर्गने तो ललीको भी जाने क्या-क्या कहा था। ये ऋषि महर्षि कभी-कभी बहुत जटिल बात कहते हैं। गर्गजीने तो मुझे बड़े असमंजसमें डाल दिया। कह गये—'वृषभानुजी, तुम्हारी ललीका विवाह स्वयं ब्रह्माजी नन्दनन्दनसे करेंगे।'

पता नहीं ब्रह्माजीको सृष्टि-निर्माणसे कब अवसर मिलेगा। वे कुछ मुझसे पूछनेवाले तो हैं नहीं। लेकिन वे बूढ़े बाबा चाहे जब जो करें, कुछ किया नहीं जा सकता।

लली तो नीलसुन्दरकी है और वह नन्दनन्दन मेरा-मेरा अपना ही। वह तो सदा-सदाका मेरा है। सुबल कहता है कि कन्हाईको अच्छा नहीं लगेगा कि मैं अपने गोपोंको लेकर कंससे लड़ने जाऊँ। वह तो वृषभोंको भी लड़ने नहीं देता। कंसके असुर आवें तो खेल ही बनेगा अपना, यह बालककी हठ तो है; किन्तु उस चपलको प्रसन्न रहना चाहिये। वह न चाहे, ऐसा कोई कार्य तो किया नहीं जा सकता। कंस दिग्विजयी है और बालक अभी बहुत छोटे हैं। इनकी सुरक्षा ही मुख्य है।
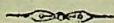
भानु चाचा—

विधाताकी सृष्टिमें आश्चर्योंका अभाव नहीं है; किन्तु विश्वविमोहन उसने भी दो नहीं बनाये होंगे। वह तो एक ही है श्रीनन्दरायका नीलसुन्दर। विधाता भी उसे देखकर अवश्य अपनी कला चातुर्य भूल गया होगा। मैं समझता था कि सौन्दर्य गौरवर्णका स्वत्व है और वृषभानु दादाकी लली उसकी सीमा है; किन्तु नीलसुन्दरपर जबसे दृष्टि पड़ी है, कहना कठिन हो गया है कि लली और उसमें अधिक सुन्दर कौन है। दोनों सुकुमारताकी सीमा हैं।

श्रीनन्दरायजी कंसके उपद्रवोंसे ऊबकर गोकुल त्याग कर हमारे पड़ोसमें बसने आ गये थे। उनका स्वागत करने जाते समय मैंने बड़े भाईसे कहा था—'उन्हें बरसाना ही आ जाना चाहिये। हमारे भवन छोटे नहीं पड़ेंगे और उन्हें पृथक ही रहना होगा तो हम चार दिनमें अपने लिए दूसरा ग्राम बसा लेंगे।'

'श्रीव्रजराजसे हम यह कहेंगे कैसे ?' बड़े भाईने उचित ही कहा था– 'श्रीनन्दरायजीपर हम अनुग्रह करेंगे, यह सोचना भी धृष्टता है। वे हमारी कोई सेवा-सहायता स्वीकार कर लेंगे तो हम अनुगृहीत होंगे।'

उन्हें हमारी कोई सेवा अपेक्षित नहीं थी। बड़ी सरलता, नम्रतासे उन्होंने हमारे सब अनुरोध अस्वीकार कर दिये और तब भी यही प्रदर्शित करते रहे जैसे हम सबके बहुत कृतज्ञ हों।

'आपके पार्श्वमें आया ही आप सबके भरोसे हूँ।' श्रीव्रजराजकी नम्रता उनके ही उपयुक्त है। कहने लगे—'अब कंसको भी दो बार सोचना पड़ेगा कोई असुर भेजते; क्योंकि नन्दको अब समर्थ सहायक मिल गये हैं।'

'हम तो सेवा भी कर पाने योग्य नहीं समझे जा रहे।' छोटे भाई स्वर्भानुने भरे कण्ठ ही कहा था—'अब यह भी संकेत करना क्या आवश्यक है कि कंस कोई दुस्साहस करे तो इसे झेल लेना बरसानेका प्रथम कर्तव्य बन गया है और गोपोंको कर्तव्यपर मर मिटना आता है।'

हम सबका आग्रह-अनुरोध बीचमें ही विरमित हो गया। नीलसुन्दर आ गया था इसी समय और उसपर दृष्टि पड़ी तो हम सब यही भूल गये कि कहाँ खड़े हैं, क्या करने आये हैं। उसे देखकर किसीको भी अपनी सुधि नहीं रह जाती।

अब अपनी लली और उसका यह अन्तर मेरे ध्यानमें आ रहा है। ललीको देखकर वात्सल्य उमड़ता है; किन्तु वह इतनी संकोचशीला है कि अङ्कमें कहाँ आती है। उसे तो स्नेहसे भी स्पर्श कर पाना कठिन है। किसके कर इतने कोमल हैं कि उसे स्पर्श करें। उसे तनिक दूरसे ही देखते रहनेको जी करता है। कुछ पूछो तो तनिक-सा नन्हा सिर हिलाकर उत्तर देगी। उसकी अमृत वाणी सुननेका सौभाग्य ही बहुत कम मिलता है। मैंने भाइयोंसे, औरोंसे भी उसके नन्हें लाल-लाल पैरोंकी बात ही सुनी है। मणिनूपुरवाले वे नन्हें पैर, लली सामने भी आती है तो उसके पैरोंको ही देखते रहनेको जी करता है। वह सिर झुकाये संकोचसे सिमटी ही तो सदा दीखती है। उसके मुखको तो कभी मैंने भली प्रकार देखा ही नहीं।

श्रीनन्दरायजीका नीलसुन्दर जितना सुन्दर, उतना ही चपल उसने जैसे जाना ही नहीं कि संकोच होता क्या है। वह सबका अपना, जन्मजात सबका अपना। उसने तो सिर झुकाकर अभिवादन किया और भुजा बढ़ाते ही अङ्कमें आ गया। मेरे मुखकी ओर ही देखते-देखते बोला—'चाचा !' जैसे पहचान लेना चाहता हो।

'लाल !' मैं तो उसका घुंघराली अलकोंसे घिरा मुख भी पूरा कहाँ देख सका। उसके विशाल भालपर श्री व्रजरानीने कज्जल बिन्दु लगाया होगा। नीलकमलकी कर्णिकापर सोया भ्रमर-शिशु इतना सुशोभन नहीं लग सकता। उसका वह भाल, वह कज्जल विन्दु ही देखता रह गया मैं।

वह चपल है। उसने तो मेरे कपोलोंपर कर रखे, मेरी श्मश्रुमें अँगुलियाँ नचायीं और मेरे अङ्कसे उतर कर भाग भी गया। मैं देखता ही खड़ा रह गया उसकी ओर।

अब तो नन्दगाँव अपने इतने समीप है—इतने समीप न भी होता तो भी दूर नहीं लगता। मुझे यही आश्चर्य होता है कि मैं पहले प्रतिदिन गोकुल

क्यों नहीं जाता था। नन्दगाँव तो दिनमें कई बार जाना अनिवार्य हो गया है। प्रातः बालकोंके साथ जाना पड़ता है; क्योंकि गायें गो-दोहनके पश्चात् गोष्ठोंमें रुकना ही नहीं चाहतीं। छूटते ही सब भागती हैं नन्दग्रामकी ओर। बालक उन्हें कितना सम्हालेंगे ?

सायंकाल हम सब गोप रोक घेर कर न लावें तो गायें स्वयं लौटेंगी ? उन्हें अपने बछड़ोंकी सुधि ही नहीं आती। वे तो लौटानेपर भी बार-बार मुड़ भागती हैं और नीलसुन्दरको ही सूंघना चाहती हैं। जैसे वही इन सबका बछड़ा हो। गायोंका इतना स्नेह तो कभी किसी गोप बालकको मिला नहीं। श्रीनन्दनन्दन सहज गोपाल, स्वतः सिद्ध व्रजयुवराज हैं।

हमारे बालक उस नीलसुन्दरके साथ ही चले जाते हैं। उन्हें रात्रिके प्रथम प्रहरमें ले आने सेवक तो नहीं भेजे जा सकते। सेवक भेजे भी जा सकें तो नन्दनन्दनको एक बार देख लेनेका लोभ कहाँ यह करने देता है।

इस नीलसुन्दरके चरण कैसे हैं ? मैंने अपनी ललीके चरण देखे हैं, चरण ही ठीक देखे हैं; किन्तु इसके चरण कैसे हैं ? नन्हें, इन्द्रवधूटी जैसे कोमल, लाल-लाल; किन्तु देखे हैं मैंने पीछेसे और वह भी बहुत दूरसे देखे हैं। तब देखे हैं जब यह अङ्कसे उतरकर जाने लगता है। सम्मुखसे इसके चरणोंकी अँगुलियाँ कैसी होंगी ?

अनेक बार सोचता हूँ, घरसे चलने लगता हूँ तो निश्चय करता हूँ कि आज नीलसुन्दरके चरण देखूँगा; किन्तु यह सम्मुख आता है तो दृष्टि इसके भालपर ही अटक जाती है। इसका विशाल भाल, कभी उसपर गोरोचनका तिलक, कभी कुंकुम रेखा, कभी कस्तूरिका विन्दु केशर मिले चन्दनकी खौरके मध्य और कभी सब मिटा मिटाया, केवल गोखुरसे उड़ी रजसे मण्डित। उस निखिल भुवनश्रीके घनीभाव भालपर दृष्टि जानेपर क्या हट पाती है।

'चाचा !' यह चपल चाहे जब अङ्कमें आ जाता है। इसकी वाणी पड़ती है श्रवणोंमें तो प्राण वहीं सिमट आते हैं।

मैंने अनजानमें ही एकाध बार इसकी अलकोंका स्पर्श किया है। भालपर घिर आयी अलकोंको पीछे हटानेको अँगुली स्वतः बढ़ी है। घुंघराली,

काली केश राशि इतनी कोमल होती है ? इतनी कोमल केशराशि तो मेरी कन्या चन्द्रावलीकी भी नहीं है ।

यह चन्द्रावली भी अब मेरे लिए समस्या बन गयी है । बड़े भाई तो इतने भोले हैं कि उनसे कुछ कहना ही व्यर्थ है । मैंने उनसे तब कहा था इस कन्याके लिए वर ढूंढ़नेको जब श्रीनन्दराय गोकुलमें ही थे । गोपकन्या पैरों चलने लगे तो उसका विवाह हो जाना चाहिये । बड़े भाई कहने लगे— 'श्रीनन्दरायके कुमारको छोड़कर मुझे तो कहीं कोई योग्य वर दिखता नहीं; किन्तु वह अभी बहुत नन्हा है । चन्द्रा ललीसे बड़ी है । वह जहाँ जायगी, लली उसके पीछे-पीछे चली जायगी ।'

अब यह भी कोई बात हुई । नीलसुन्दर दृष्टि पड़ा तभी लगा कि ललीके योग्य वही है । लली है ही उसके लिए; किन्तु चन्द्रा तो ललीसे भी बड़ी है । नीलसुन्दर कुछ छोटा ही है ललीसे । वैसे हम गोपोंमें इतना छोटा-बड़ा कोई देखता नहीं और नीलसुन्दरपर दृष्टि पड़े तो कोई कन्याका पिता फिर दूसरे वरकी ओर आँख उठाना ही नहीं चाहेगा ।

लड़कीको कीर्ति भाभीने और बिगाड़ दिया लाड़ करके । वही उसे अङ्कमें ले लेकर बार-बार कहती हैं—'हमारी चन्द्रा जैसी सुन्दर कन्या तो कभी कहीं सुनी नहीं गयी ।' अब उनसे ही कहना पड़ेगा कि अब अपनी चन्द्राको सम्हालो । लली तो उसे जीजी-जीजी कहती उसीके साथ लगी रहती है ।

ये बच्चे भी कभी कैसी बातें करते हैं । पत्नीने कल हँसकर कहा— 'तुम्हारी चन्द्रा कहती है कि वह नन्दीश्वरपुरके युवराजसे विवाह करेगी ।'

'विवाह वह करेगी या उसका विवाह उसका पिता करेगा ?' मुझे सुनकर अच्छा नहीं लगा । मैंने पत्नीको सावधान किया—'लड़कीका मन बढ़ाना मत । श्रीनन्दरायका नीलसुन्दर है ही ललीके लिए और कन्याका पिता स्वतन्त्र नहीं होता । उसे तो प्रार्थना करनी पड़ती है । वह नीलसुन्दर तुमने देखा है । श्रीनन्दराय मन करेंगे तो कोई देवकन्या उनके पुत्रको दुर्लभ होगी ? वे हमारी ललीको ही हाँ करलें तो हम कृतार्थ हो गये ।'

'लली उनकी है, इसमें तो हम सबका सौभाग्य है ।' पत्नीने कहा—

'मैं तो तुम्हारी लालीकी बात कह रही हूँ। वह कहती थी कि 'कोई मेरा विवाह नहीं करेगा तो मैं अपने आप कर लूँगी।'

'अपने आप ?' मैं भी पत्नीके साथ हँस पड़ा। बच्चे भी कभी कितनी भोली बातें करते हैं।

'हाँ' पत्नीने कहा—'मेरे पूछनेपर बोली 'कि युवराज मुझसे तो छोटा है। दुर्बल भी है। उसे पकड़कर मैं उससे विवाह कर लूंगी किसी दिन। फिर उसको लेकर नन्दीश्वरपुर जाकर उसकी मैयाके पैरोंपर सिर रखूँगी तो वह मुझे भगा नहीं देगी।'

लड़की बहुत धृष्ट हो गयी है। कन्याकी शोभा लज्जा है; किन्तु भाभीके लाड़ने इसे सिर चढ़ा लिया है। वैसे लड़की छोटी है तो क्या हुआ, नीलसुन्दरको देखकर तो कोई भी कन्याका मन मचल ही उठेगा।

'अब बिचारीको डाँटने ही मत लगना।' पत्नीने मुझे गम्भीर देखकर कहा--'अपने बरसानेमें तो वे कन्याएँ भी स्वयंवरा बनने लगी हैं, जो नंगी घूमती हैं। सब अपना-अपना वर स्वयं चुनने लगी हैं। उन्हें यह भी पता नहीं कि विवाह होता क्या है। जैसे अपनी गुड़ियोंके लिए गुड्डा ढूंढ़ लेती हैं परस्पर सम्मति करके, अपना विवाह भी वैसा ही समझती हैं।'

'सबकी सब नीलसुन्दरको ही चुनेंगी।' मैंने हँसकर ही कहा—'अब श्रीनन्दरायसे कहना होगा कि वे अपनी सैकड़ों पुत्र वधुओंके लिए बड़ा भवन बनवायें।'

'ऐसी भी कोई बात नहीं है।' पत्नीने हँसकर सुनाया—'मैंने कल जेठजीके भवनमें हिरण्याकी बात सुनली दूरसे तो हँसते-हँसते लोटपोट हो गयी। मैंने कीर्ति जीजीको सुनाया तो वे भी बहुत हँसीं। अब तुमको उस नन्हीके लिए श्रीव्रजराजके सबसे छोटे भाईके हाथ जोड़ने होंगे।'

'अनंग मंजरीने तोकको चुन लिया ?' मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। ललीकी इस छोटी बहनने अपने योग्य चुनाव किया। यह ललीकी दूसरी मूर्ति है तो तोक भी नीलसुन्दर जैसा ही है।

'तोकको चुनकर वह छोटी क्यों बनने लगी।' पत्नीने बतलाया—'वह ललीसे कह रही थी—'जीजी, मैं तुमसे बड़ी बनूँगी।'

लली तो भोली है ही। भले उसीने अपनी इस चपल बहिनको हिरण्या कहना प्रारम्भ किया हो; किन्तु बड़ा स्नेह है इसपर उसका। हँस गयी और बोली—'इसमें वड़ी बात क्या है, पाटेपर खड़ी होजा, अभी बड़ी हो जायगी।'

'ऐसे बड़ी नहीं, सचमुचकी बड़ी।' मचलकर ही उसने कहा—'मैं तुम्हारे उस साँवरेके बड़े भाईसे विवाह करूँगी।'

'बड़े भाईसे ?' मैं खुलकर हँसा—'अभी बच्ची है। उसे क्या पता कि बड़ा भाई तो राजकुमार है। उसके लिए क्या राजकन्याओंकी कमी रहेगी कि वसुदेवजी किसी गोपकन्याको पुत्रवधू बनावेंगे।'

'तुम्हारी ही भाँति ललीको भी भ्रम हुआ था। वह भी छोटी बहिनकी ओर देखती रह गयी थी। उसने तो अनंगके पैर ही छू लिये—'तुझे वे नीलवसन एक कुण्डली रुचे ? तू तो अभी ही बड़ी होगयी।'

'जीजी, तुम तो गाली देने लगीं।' वह कुछ चिढ़ गयी। फिर ललीके कण्ठमें लिपट कर उसके कानमें कुछ कहने लगी। इतनी नन्हीं बच्ची और उसका मुख लाल-लाल हो रहा था।'

'ललीने पूछा न होता तो मुझे कुछ पता न लगता। उसीने पूछा था—'वे जो पीत कछनी, नीलपटुका, हंसपिच्छ मुकुटी गौर हैं ? जिनका संकेत सब मानने लगते हैं। सुबल भैया जिन्हें सखाओंका सेनापति कहता है ?'

अनंगने सिर हिलाया और भाग खड़ी हुई। ललीने ही उससे पुकार कर कहा—'वे तो तोकके बड़े भैया हैं।'

'इस हिरण्याकी तो कोई समस्या नहीं है। श्रीव्रजराज और उनके छोटे भाई दादाकी कोई बात अस्वीकार नहीं करेंगे।' मैंने पत्नीसे कहा—

'कोई बात तो वे मेरी भी अस्वीकार नहीं करेंगे; किन्तु तुम्हारी चन्द्रा ललीसे स्पर्धा करे, यह अच्छा लगता है ?'

अच्छा लगे या न लगे, कन्याओंकी बात समझमें आने ही योग्य है। नीलसुन्दर सम्मुख हो तो मैं ही अपनी सुधबुध भूल जाता हूँ, वे सब तो बच्चियाँ हैं।

इस नन्दनन्दनको देखे बिना कोई कैसे समझ सकता है कि श्याम रंग इतना आकर्षक, इतना सुहावना, इतना मनोहारी हो सकता है और यह व्रजयुवराज तो आश्चर्य पुंज है। यह इतना दुर्बल, इतना सुकुमार दीखता है और कंसके असुरोंको ऐसे मार देता है जैसे वे कोई वर्षाके छत्ते हों। मैंने भाईसे वकासुरकी बात सुनी है। कंस उसे अपनी दिग्विजयमें पराजित करके मथुरा ले आया था। वह पूतनाका बड़ा भाई सुरोंके लिए भी आतङ्क था। उस आकाशचारीसे युद्धकी बात ही सोचना कठिन था।

नीलसुन्दरने पूतनाको तब मार दिया जब यह केवल छै दिनका था और अब वकासुरको चीर फेंका। उसके टुकड़े भी खड्डमें उठाकर फेंकनेमें अनेक-अनेक लोगोंको लगना पड़ा और श्रीव्रजराजका कुमार तो तनिक-सा है, छुईमुई जैसा लगता है। इसके इतने सौकुमार्यमें भी इतनी अचिन्त्य शक्ति है ?

बात कुछ समझमें आनेकी नहीं है। हमारे बालक कहते हैं कि 'उनका यह सखा सबसे दुर्बल है। न दौड़नेमें इन्हें छू पाता, न मल्लयुद्धमें इनमें-से किसीसे जीतता। ये ही उसे पटकनी दे लेते हैं। वह तो तनिक देरमें थक जाता है।'

थक जाता ही होगा। इतना कुसुम कोमल है; किन्तु कंसके इस असुर बगुलेको उसने मारा—चोंच पकड़ कर चीरकर दो टुकड़े कर दिये। कोई कहता तो मैं इस बातपर कभी विश्वास नहीं करता; किन्तु बकके वे टुकड़े तो मैंने खड़े होकर खड्डमें फिकवाकर उन्हें जलवाया है।

विधाताने इस व्रजेन्द्रनन्दनसे सुन्दर कभी कुछ नहीं रचा तो इससे बड़ा आश्चर्य भी कभी कुछ बनाया नहीं होगा। यह आश्चर्य कितना बड़ा है

कि मैं उसे प्रातः सायं प्रतिदिन देखता हूँ, बहुत आतुर रहता हूँ उसे देखनेके लिए और अबतक नहीं जानता कि उसकी नासिका कैसी है। उसके चरण सामनेसे दीखते हैं। कैसी दीखती हैं उसके पदोंकी अंगुलियाँ।

हमारी लली भी आश्चर्य है; किन्तु वह तो कन्या है। संकोची है। वह अपनेमें ही सिकुड़ी सिमटी रहती है। उसे उसकी सखियाँ घेरे ही रहती हैं; किन्तु यह श्रीव्रजराजका कुमार तो चपल है, सखाओंसे घिरा होकर भी सबसे आगे, सबसे पृथक रहता है। यह आश्चर्य कि चला जाता है अपने सदन और लगता है कि नेत्रोंके सम्मुख ही खड़ा है।

रत्नभानु चाचा—

व्रजराज श्रीनन्दरायजी गोकुल त्याग कर जबसे अपने पड़ोसमें आकर बसे, यहाँ सब नियम ही उलटे-पलटे हो गये। इतना परिवर्तन हुआ; किन्तु किसीको कुछ अस्वाभाविक नहीं लगता है। सब और मैं भी स्वाभाविक ही मानते हैं यह सब। लेकिन यह बहुत अटपटा है, अनुचित है कि बालक वनमें बछड़े चराने जायँ। सुनता तो यह हूँ कि अब ये सब गोचारण करेंगे। इस सम्बन्धमें अब नन्दरायजीसे ही बात करनी पड़ेगी।

श्रीनन्दरायजीसे बात करके भी क्या लाभ होना है। मैंने उनसे कहा तो बोले—'मैं कहाँ चाहता हूँ कि बालक बछड़े या गायें चराने वनमें जायँ। सब तो तुम्हारे ही बालक हैं, उन्हें मनालो।'

बालक सब अपने ही हैं, यह ठीक है; किन्तु उन्हें मना लेना क्या सरल काम है। मेरा अपना ही पुत्र नहीं मानता है। उसे मैंने रोका तो रोने ही लगा। बालकोंका रुदन मुझसे देखा नहीं जाता और श्रीनन्दरायजीका जो नीलसुन्दर है, उसके बड़े-बड़े नेत्रोंमें आँसू आवें, यह बात तो सोची ही नहीं जा सकती।

समस्या उसीकी है। वह मान जाय तो सब मान जायँ। इन बालकोंको तो उसका साथ चाहिये। उसका साथ किसे नहीं चाहिये ? मैं भी तो यही चाहता हूँ कि वह नेत्रोंके सम्मुख ही रहे।

हमारे घरोंकी बालिकाएँ अत्यन्त संकोचशीला हैं। लली तो स्मरण ही नहीं कि पैरों चलने लगी तबसे कभी मेरी गोदमें भी आयी हो। ये बच्चियाँ अपने भाइयोंसे भी हिलने-मिलनेमें संकोच करती हैं। सब आपसमें ही खेल लेती हैं; किन्तु श्रीनन्दरायजीके आनेके पश्चात्से सबको स्वयं यमुनाजल भर लानेकी धुन चढ़ी। पता नहीं ऐसी कौन-सी पूजा इन्हें आवश्यक हो गयी, जिसमें कोई वयस्क स्त्री भी इनके साथ नहीं जा सकती थी। वह पूजा छूटी तो अब सब वनमें दही बेचने जाने लगी हैं। इन्हें दही बेचना है ? पर मना करूँ तो रुदन करने बैठ जायँगी।

बालकों और बालिकाओंकी बात क्यों करूँ, मैं प्रयत्न करके भी अपनी गायें प्रात: वनकी ओर नहीं भेज सका। मैंने और गोपोंने बहुत चेष्टाकी, पर गायें तो छूटते ही नन्दगाँवकी ओर भागती हैं। वे तभी रुकती हैं जब नीलसुन्दर अपनी गायें लिये अपने सखाओंके साथ इनके समीप आ जाता है और ये उसे सूंघ लेती हैं।

वह वृद्ध गोप ही ठीक कह रहा था। वन पशु और पक्षीतक उस नीलसुन्दरके साथ ही लगे रहते हैं। मैंने ही इधर ध्यान नहीं दिया था। सब वनपशु बरसानेसे बहुत आगे खड़े दीखते हैं प्रात: और पक्षी तो जैसे वनमें और बरसानेमें भी रह ही नहीं जाते। सब नन्दगाँव पहुँच जाते हैं। सायंकाल भी सब वनपशु गायोंमें ऐसे मिले आते हैं जैसे वे भी नन्दरायके लालने पाले ही हों?

पहले तो ऐसा कुछ नहीं था। पक्षी हमारे घर-आँगनोंमें ही छाये रहते थे। वनके मृग, शशक भी वृषभानु दादाके भवनमें बार-बार आ जाते थे। लेकिन लगता है कि इन सबोंको मनुष्योंका सामीप्य प्रिय हो गया है और हमारे यहाँसे बार-बार भगाये जानेसे ये खिन्न हो गये हैं। अब श्रीनन्दरायका नीलसुन्दर इन्हें मिल गया तो ये उसीके समीप मँडराते रहते हैं।

हमारी बच्चियाँ बहुत भीरु हैं। वे तो कपोत और मयूरको भी समीप देखती हैं तो दूर भागती हैं। शशक भी उनके पैरोंके पास बैठने जाय तो चौंकती हैं। इसलिए वन पशुओं, पक्षियोंको हमें बार-बार भगाना पड़ता था। अब उन्हें स्नेहसे पुचकारनेवाला मिल गया। वह नीलसुन्दर तो सबको स्नेह ही देता है। उसीके आकर्षणसे तो सब उलट-पुलट होगया है।

दूसरा सब ठीक है; किन्तु उसे वनमें नहीं जाना चाहिये। अभी वह बहुत नन्हा है। सब बालकोंसे सुकुमार है। बालक वनमें बछड़े या गायें चराने तो व्रजमें कभी गये नहीं थे। फिर यह बछड़ोंको चरानेकी नवीन प्रथा। गायोंसे पृथक बछड़ोंको चरानेकी भी क्या आवश्यकता है? बछड़े तो स्वयं आस-पास उछलते-कूदते रहेंगे गायोंके वनमें चले जानेपर, उन्हें केवल खोल देना पड़ता है। यह नन्दनन्दनने नवीन प्रथा चलाली बछड़े चरानेकी।

वह मान जाय तो सब मान जायँ। बछड़ोंको, बालकोंको भी उसीके साथ रहना है। वह वनमें न जाय तो बालिकाओंका भी दही बेचना बन्द हो। लेकिन वह कैसे माने ? मेरी सबसे बड़ी दुर्बलता है कि मैं उससे कुछ कह नहीं पाता हूँ। वह गोदमें आता है तो जो कुछ कहता है, उसीकी हाँ में हाँ करने लगता हूँ।

मैं उसे मना करने ही कल सायं गया था श्रीनन्दरायके यहाँ। वह तो देखते ही दौड़ा आया। उसने कभी मेरी अवज्ञा नहींकी। मैंने सोच लिया था कि पहले ही अपनी बात कहूँगा। वह कुछ कहने लगेगा तो फिर मुझे अपनी बात स्मरण ही नहीं रहेगी।

'लाल, मेरी बात मानेगा ?' मैंने उसे अङ्कमें लेते ही पूछा।

'हाँ' उसने झट कहा। सम्भवत: उसे 'ना' कहना आता ही नहीं। मैं कितना प्रसन्न हुआ, कैसे बतलाऊँ।

'तुम वनमें मत जाया करो।' मैंने सीधे अपनी बात कहदी।

'मैं यहाँ गोबर नहीं उठाऊँगा।' उसके स्वरमें ठुनकनेका ढङ्ग उचित ही था।

'तुम्हें गोबर उठानेको कहता कौन है ?' मैंने पुचकारा—'यहाँ गोबर उठानेवाले सेवकों, सेविकाओंका अभाव नहीं है। हमारा लाल क्यों गोबर उठावेगा।'

'चाचा, आप नहीं जानते' नीलसुन्दर जब बोलने लगता है तब बोलता ही जाता है और उसकी वे अटपटी बातें सुनते श्रवण थकते नहीं हैं—वह कह रहा था—'सब गोपियाँ मुझसे ही गोबर उठवाती हैं। चाचा, बिचारी सब दुबली-पतली तो हैं, उनसे अकेले गोबरका टोकरा उठता नहीं। तुम सबको मना करदो' इतना भारी टोकरा क्यों उठाती हैं।'

दोनों हाथ फैलाकर उसने बताया तो मुझे हँसी आ गयी। मैंने कह दिया—'उन सबको टोकरा उठानेका अभ्यास है। तुम उनका टोकरा उठवाने मत जाया करो।'

'तब मैं क्या करूँगा ?' जैसे कोई बहुत गम्भीर प्रश्न हो, ऐसा स्वर उसका ।

'तुम सखाओंके साथ खेला करो यहीं ।' मैंने समझा कि अब बात बन जायगी ।

'यहाँ तो गोष्ठमें, गलियोंमें सब कहीं गोबर-गोमूत्र दोपहरतक फैला रहता है ।' उसने गम्भीरतापूर्वक मुझे समझाया—'यहाँ हम सब खेलेंगे, दौड़ेंगे तो फिसलकर गिरेंगे नहीं ?'

'तुम यमुना पुलिनपर खेला करो !' मैं कैसे कह देता कि हमारे यहाँ आ जाया करो । गोपोंका कोई गाँव हो, गोबर-गोमूत्र तो उसकी शोभा है । यह उसकी सम्पत्ति है । बड़े सवेरे तो पूरे पथ स्वच्छ नहीं हो सकते । हो भी जायँ तो गायें छूटते ही वन जाते-जाते पथोंको फिर गोमय मण्डित करेंगी ही ।

'यमुना पुलिनकी रेत तो झट उष्ण हो जाती है ।' नीलसुन्दरने सिर हिला दिया—'मेरे पैर जलने लगते हैं । मैया भी मना करती है कि पुलिनपर नहीं जाया करते ।'

ओह ! इतनी साधारण बात मुझे क्यों नहीं सूझी ? यह इतना सुकुमार है । इसके कुसुम कोमल चरण अवश्य पुलिनपर कष्ट पावेंगे । पुलिनकी रेणुका तप्त तो होगी ही । मैंने एक चरण उसका धीरे-से अपने हाथमें लिया । ये चरण उष्ण रेणुकापर पड़ने योग्य नहीं हैं । मेरे मुखसे निकल गया—'तुम समीपके वनमें खेला करो ।'

'चाचा, तुम मुझे खेलनेको ही तो मना कर रहे हो ।' उसने बड़े भोलेपनसे मेरे कपोलपर अपना कर रख दिया ।

'मैं खेलनेको मना नहीं करता ।' मैंने कहा—'तुम बछड़े चराने मत जाया करो ।'

'मैं बछड़े कहाँ चराता हूँ ।' वह तो ताली बजाकर हँसने ही लगा—'चाचा, बछड़ोंका मुख मैं घाससे नहीं लगाता । उनके मुखमें घास भी नहीं डालता । वे सब तो अपने आप चरते हैं ।'

'तुम उनको साथ मत ले जाया करो।' मैं इस चपलको समझानेमें हार जाऊँगा, ऐसा लगने लगा था और सचमुच हार गया।

'मैं कहाँ साथ ले जाता हूँ।' इसने फिर कह दिया 'वे तो अपने आप जाते हैं। मैं तो उनके साथ जाता हूँ। तुम सवेरे देखना, वे आगे-आगे दौड़ते कूदते जाते हैं। वही तो मुझे ले जाते हैं। मैं उनके पीछे न जाऊँ तो लौट आते हैं। मुझसे झगड़ते हैं, मुझे कूद-कूदकर सिरसे ठेलकर बुलाते हैं अपने पीछे।'

इस नीलसुन्दरकी बात ठीक नहीं है, ऐसा मैं कैसे कह देता। मुझे सूझता ही नहीं था कि इसे अब क्या कहा जाय।

'मैं वनमें दूर तो नहीं जाता।' मुझे खिन्न देखकर ही उसने कहा होगा—'हम सब वहाँ छायामें खेलते हैं। बछड़े भी खेलते हैं हमारे साथ। चरना होता है तो अपने आप चरते हैं। हमारे साथ तो वनके पशु, कपि, पक्षी भी वहाँ खेलते हैं। सब यहाँ कैसे आवेंगे ?'

'बछड़े चंचल हैं। तुमको उन्हें घेरनेमें उनके पीछे दौड़ना पड़ता है। वे सब तुम्हें थका देते हैं।' मुझे स्वयं लग रहा था कि मेरी बात सच नहीं है। ऐसा कुछ होता नहीं होगा।

'मुझे तो कोई थकाता नहीं। कोई दौड़ाता भी नहीं।' बड़े भोलेपनसे व्रजके नन्हें युवराजने कहा—'सब तो मेरे पास ही दौड़-दौड़ आते हैं। मेरे सखा उन्हें बार-बार भगाते हैं। न भगावें तो कपि, भल्लूक भी मुझे घेरे ही रहें। बछड़े तो मैं पुकारता हूँ तभी दौड़ आते हैं। तुमको बताऊँ ?'

मैं मना करनेवाला था। जानता था कि इन नन्दरायके लालके पुकारनेपर गायें, बछड़े सब दौड़ आवेंगे; किन्तु वह मेरे अङ्कसे उतर गया। उसने अपना नन्हा सिर घुमाकर इधर-उधर देखा और फिर अपना एक कर फैलाकर पतली अंगुलियाँ हिलाने लगा।

अँधेरा होने लगा था। पक्षियोंने बसेरा ले लिया था; किन्तु वे इधर-उधरसे उड़कर आने लगे। मयूर आ गये कई। दूसरे पक्षी तो आते ही, सबसे चौकन्ने रहनेवाले काकतक उतर आये। चारों ओर पक्षियोंका समूह हमारे पास आकर बैठ गया।

'अब तुम इनको भगाओ !' वह चपल मेरी ओर देखकर हँसता हुआ बोला। स्वयं तो पक्षियोंको पुचकारने, उनसे खेलने ही लगा था।

'सायंकाल हो गया। इन्हें बसेरेपर जाने दो।' मैंने उसीसे कहा। मैं जानता था कि पक्षियोंको मैं भगा नहीं सकता। यह तो अच्छा हुआ कि उसके बहुत-से सखा आ गये। बालकोंका कोलाहल सुनकर पक्षी स्वयं उड़ गये।

'चाचा, मैं वनमें खेलने जाऊँगा।' चलते-चलते भी मुझसे उस नटखटने पूछ लिया।

'जाना' मैं मना करने गया था और मैं ही अनुमति दे आया। अब समझता हूँ कि क्यों श्रीनन्दराय कहते हैं कि बालकोंको वे मना नहीं कर पाते हैं।

यह नीलसुन्दर इतना नन्हा है, इतना भोला है, पर इतना चतुर भी है, यह तो मैं नहीं समझता था। यह सम्मोहनकी मूर्ति तो है। इसे देखो तो बस देखते ही रह जाओ।

अनेक बार लगता है कि यह मेरे आस-पास ही कहीं है। मैं अनेक बार चौंकता हूँ—'नीलसुन्दर आया है ?'

जानता हूँ कि दिनमें वनमें बछड़े लेकर जाता है। वहाँ सखाओंके साथ खेलता रहता है; किन्तु मुझे इसने तभीसे, जबसे इसे देखा है, पता नहीं क्या कर दिया है। जब तब लगता ही रहता है कि यह पीछेसे दबे पैर आया है और अचानक गलेमें भुजाएँ डालकर झूल पड़ेगा—'चाचा !' कहकर।

दिनमें ही नहीं, रात्रिमें भी कई बार चौंकता हूँ। अपनेसे ही कहता हूँ कि यह नन्हा नीलसुन्दर रात्रिमें हमारे यहाँ कैसे आवेगा; किन्तु पता नहीं क्यों, तब भी मन मानता नहीं।

सचमुच व्रजसुन्दर सखाओंके साथ हमारे यहाँ क्यों नहीं आ सकता ? सुबलसे इसकी प्रगाढ़ता है। श्रीदाम भी इसीसे घुला-मिला रहता है। हमारे

सब बालक इसकी प्रशंसा करते थकते नहीं। बालक तो इसके साथ ही घर जाते हैं।

'सुबल, तू अपने सखाको यहाँ क्यों नहीं ले आता ?' मैंने पूछा। बालकको मैं प्रोत्साहित करना चाहता था।

'कन्हाई तो आ भी गया होता।' सुबलने बतलाया—'दाऊ दादा नहीं आना चाहता। भद्र तो कन्हाईको भी मना कर देता है। वह कहता है, ऐसे नहीं जायँगे।'

'कैसे आवेगा ?' मैंने पूछ लिया सुबलसे।

'वह हँसता है। कहता है कि अपने बाबासे पूछ ले।' सुबल मुझसे ही पूछने लगा—'कैसे आवेगा वह ? तुम उसे बुलाने चलो।'

यह सुबल अभी बहुत बच्चा है। यह परिहास भी नहीं समझता। लेकिन नन्दनन्दन सचमुच ऐसे कैसे आ जाय। उसका अग्रज ठीक तो कहता है। हम उसे बुलावेंगे, वह सौभाग्यका दिन भी आवेगा ही कि हम उसे बुलावेंगे। उसका, उसके सखाओंका सत्कार करेंगे और............।

पता नहीं क्या हो जाता है कि उसकी बात जब सोचने लगो, बात घूम-फिरकर यहीं मनमें समाप्त होती है। उसे स्मरण करो तो अपनी लली स्मरण आती है। लली है, इसीलिए तो वह आवेगा, आवेगा ही, यह विश्वास है। श्रीनन्दराय भी हमारी ललीको लेने न आवें, यह बन नहीं सकता।

लेकिन नीलसुन्दर है विचित्र। वह तो आता नहीं, हमारे ही बालक उसके पीछे लगे भागते हैं। मैं सदासे गर्व करता था कि बरसानेके अधिपतिको किसीके पास जानेकी आवश्यकता नहीं है। सब हमारे द्वारपर ही आते हैं। लली आयी तो मेरा गौरव ही बढ़ा। देवता भी हमारी देहरीपर सिर टेकने आवें ऐसी लली हमारी; किन्तु वृषभानु दादा ठीक कहते हैं—कन्याका पिता सदा छोटा होता है। श्रीनन्दरायजी बड़े हैं, यह तो सोचकर मुझे अच्छा ही लगा था। कोई बड़ा भी तो चाहिये ही। अपनेसे कोई बड़ा ही न हो, यह बुरी बात है। वृक्षोंमें ताड़ क्या अच्छा लगता है ?

बात तो नीलसुन्दरकी विचित्र है। यह नन्हा है। हम सबका आदर भी करता है; किन्तु इतने नन्हेंपनसे गर्वहारी है। हमारे सब बालक तो इसके पीछे लगे ही रहते हैं, बालिकाएँतक वनकी ओर भागती हैं दही बेचनेके बहाने।

मैं दूसरोंकी बात क्यों करूँ, मेरा ही जी करता है कि यह हाँ करदे तो मैं इसकी गायें चराया करूँ। लाठी लिये इसीके पीछे चला करूँ। इसे देखा तबसे मेरा कहाँ कुछ रहा। मैं इसका हो गया और यह तो अपना है, सदासे अपना ही है।

स्वभानु चाचा–

अपने सब भाइयोंमें मैं छोटा हूँ, अतः सबसे अधिक स्नेह मिला मुझे अपने माता-पिताका, और भाई-भाभियोंका तो अब भी मिलता है। इसका दूसरा लाभ हुआ कि श्रीनन्दरायजीके यहाँ समीप आकर बसते ही उनके छोटे भाई नन्दनन्दनजीसे मेरी मित्रता हो गयी। नन्दनन्दनजी मल्ल हैं; किन्तु यह कहाँ आवश्यक है कि मल्लकी मित्रता मल्लसे ही होगी। उनसे तो मैं शीघ्र घुलमिल गया।

नन्दनजीकी मित्रताका मेरे लिए बहुत अधिक महत्त्व है। पहले ही दिन जब श्रीव्रजराजका स्वागत करने बड़े भाइयोंके साथ मैं गया था, इस महत्त्वको मैंने समझ लिया था। मैंने उसी दिन उनसे मित्रता घनिष्ट कर ली।

नन्दनजीका छोटा पुत्र तोक श्रीनन्दरायजीके श्यामसुन्दरकी दूसरी मूर्ति ही है और बालकोंमें सबसे छोटा, सबसे भोला भी है। उसे अंकमें लेकर लगता है कि श्यामसुन्दर ही अंकमें आगया है।

नन्दनजी मल्ल हैं और मल्ल सदा बहुत सरल चित्त होते हैं। उनके साथ औपचारिकता अनावश्यक होती है। मैंने उन्हें उसी दिन कह दिया—'देखो भाई, तुम मेरे सम्मान्य हो। मेरे स्वागत-सत्कारकी बात करोगे तो मुझे यहाँ आना भी रोकना पड़ेगा।'

'तुम मेरा सत्कार कर लिया करो, पर आया करो।' उन्होंने खुलकर हँसते हुए मुझे गले लगा लिया। हँसकर ही बोले—'तुम्हारे उपहार मैं अस्वीकार नहीं करूँगा। जब व्रजेश्वर दादाने तुम्हारी ललीको स्वीकार कर लिया है तो तुम्हारे उपहारोंका मैं अधिकारी तो हो ही गया। सुना है कि लली अलौकिक है।'

'तुमको हमारी लली देखनी है?' मैंने उनसे हँसकर पूछा—'मैं अभी दिखला सकता हूँ।'

'अभी ? वह आयी है तुम्हारे साथ ?' नन्दनजी चौंक ही पड़े। उनका चौंकना ठीक ही था। लली बहुत नन्ही सही; किन्तु वह प्रथम दिन ही हम लोगोंके साथ उनका स्वागत करने जाय या हम लोग उसे ले जायँ, यह अटपटी बात तो लगेगी ही।

'अब आप बरसानेके पड़ोसमें आ गये हैं तो बालक भी परस्पर मिलेंगे ही।' मैंने कहा—'लली भी किसी दिन भाइयोंके साथ खेलने यहाँतक आ जायगी और तुम्हारा श्यामसुन्दर भी अपने नये सखाओंके साथ खेलने बरसाने जाया ही करेगा।'

'तुम तो अभी दिखला रहे हो।' नन्दनजी अबतक हमारे साथ आये बालकोंकी ओर ही देख रहे थे। वे सम्भवतः देख लेना चाहते थे कि उनके साथ कोई बालिका भी है या नहीं।

'सुबल !' मैंने पुकार लिया। सुबल आया तो उसके साथ श्यामसुन्दर भी आया दौड़ता भागता और उसने आकर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया तो मैं भूल ही गया कि मैंने सुबलको क्यों बुलाया है। अबतक तोक मेरी गोदमें ही था। वह गोदसे न उतरता तो मैं सावधान ही नहीं होता।

नन्दनजी बड़े एकाग्र मनसे सुबलको देख रहे थे। उन्होंने उसे अपने अंकमें उठा लिया था। मैंने उनसे कहा—'जैसे तुम्हारा यह तोक श्यामसुन्दरकी दूसरी मूर्ति है, हमारी ललीकी दूसरी मूर्ति है यह सुबल।'

मैंने यह बात कही और मैं स्वयं चौंक गया। आजतक मेरा भी इसपर ध्यान नहीं गया था कि लली और सुबल भले एक समान दीखते हों, भले एकको देखकर दूसरेका भ्रम हो जाता हो; किन्तु दोनोंमें अन्तर भी तो कम नहीं है। इस अन्तरपर मेरा ध्यान आजतक क्यों नहीं गया था ?

ललीमें जो अद्भुत सौकुमार्य है, संकोचशीलता है, वह सुबलमें कैसे आवेगी। सुबल फिर भी छोरा है, संकोची सही। सबसे बड़ी बात कि लली सम्मुख हो तो पूरी कभी देखी ही नहीं जाती। वह स्वयं तो सिकुड़ी, सिमटी रहती है. नेत्र उसके कर या पदमें जाकर वहीं सिमट जाते हैं। मैंने तो सुबलको देखकर मान लिया है कि ललीका मुख, नासिका, नेत्र इसीकी भाँति हैं।

इसी समय यह तथ्य मुझे सूझा, इसका भी कारण है। यह श्रीव्रजराजका नन्दनन्दन भी ऐसा ही है। अब यह सम्मुख आया तो मैं भूल ही गया कि एक बार इसका शशिमुख पूरा देख लेना है। मेरे नेत्र इसकी नासिकापर गये और वहीं टिके रह गये। मुझे तो यह बात भी तब ध्यानमें आयी है जब यह चपल सुबलको भी साथ लेकर दौड़ गया है।

अलसीके सुमन-सी सुकुमार, पतली, सीधे उठी, तनिक आगे झुकी नासिका—इतनी सुन्दर, इतनी सुकुमार नासिका भी होती है। कोई उपमा नहीं इसकी।

'तुम्हारी लली इस तुम्हारे सुबल जैसी है?' नन्दनजीने अब मुझसे पूछा। वे अब भी श्यामसुन्दरके बायें कन्धेसे सटे गलबहियाँ देकर चले जाते सुबलको ही देख रहे थे।

'जैसे तुम्हारा तोक श्यामसुन्दर जैसा है।' अब मैं समझ गया था कि व्रजराजकुमारको देखना हो तो तोकको ही देखना पड़ेगा। तोकको ही देखा जा सकता है। तोक उसके समान तो है; किन्तु उसे देख लेना सम्भव है। मैंने तोकको देखा, बार-बार देखा है।

मैंने नहीं कहा कि तोक और श्यामसुन्दरमें वही अन्तर है जो लली और सुबलमें। यह अन्तर बोलकर बतलाया नहीं जा सकता। नन्दनजी सुबलकी ओर ही देखे जा रहे थे, यद्यपि वह श्यामसुन्दरको साथ लिये दूर चला गया था।

'मैंने तो समझा था कि यही लली है।' अब नन्दनजी हँस पड़े—'यह लली होती तो भी बहुत बहुत सुन्दर थी। हमारे नीलमणिके सर्वथा उपयुक्त।'

सुबल तनिक दूर हो तो उसमें मुझे ही नहीं, भाभीको भी ललीका भ्रम हो जाता है। तोकमें तुमको श्यामसुन्दरका भ्रम नहीं होता?

'ऐसा तो प्रायः होता है; किन्तु तोक अंकमें हो या समीप हो तो दोनोंका अन्तर भी पहिचाना जा सकता है।' नन्दनजीने सिद्ध कर दिया कि वे मुझसे अधिक ही चतुर हैं।

उस दिनसे आजतक मैंने श्यामसुन्दरको तोकके द्वारा ही देखा है। तोकको देखकर ही उस व्रजयुवराजकी श्रीको समझा है। कुछ दूर हो तो उसके पूरे श्रीअंगकी झलक मिल जाती है; किन्तु तभी मेरे नेत्र उसकी नासिकापर जाकर टिक जाते हैं।

श्यामसुन्दरकी सुकुमार नन्हीं नासिका ही मेरे नेत्रोंको परिचित है। उसपर कभी कुसुम परागके पीताभ कण देखे हैं मैंने, कभी गो-रज छायी देखी है और कभी पूरा नासिकाग्र धूलि सना देखा है। मैंने तो उसकी नासिका ही देखी है।

'इसकी नासिकापर इतनी धूलि क्यों लगी थी? मैंने एक दिन नन्दनजीसे तब पूछा जब श्यामसुन्दर मुझे झटपट मस्तक झुकाकर भाग गया।

'महर्षि शाण्डिल्य अभी-अभी व्रजराज सदनसे आश्रम पधारे हैं। नीलमणिने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया है। तुमने देखा नहीं कि उसका भाल, भृकुटियाँ भी धूलि मंडित हैं। बालकको ऋषि-मुनियोंका सम्यक् आदर करना चाहिये। नीलमणिका तो इसमें बहुत उत्साह है।' नन्दनजी बतला गये।

मेरी दृष्टि तो उसकी नासिकापर ही जमी रह गयी थी। सदा ऐसा ही होता है। लेकिन हृदय गद्गद हो गया नन्दनजीकी बात सुनकर। हमारी लली भी श्रद्धामयी है। वह भी अभीसे व्रत-पूजामें ही लगी रहती है और भगवती पूर्णमासीके पदोंमें ही सिर रखना चाहती है। लेकिन कन्याको तो भगवती भी पादस्पर्श नहीं करने देतीं।

श्यामसुन्दरको नेत्र भरकर देख लेनेका सुख तो मुझे तोकको देखकर मिलता है। नन्दनजीकी मित्रता मेरे लिए इस कारण भी बहुत मूल्यवान है। मैं उनके गृह अथवा उनकी मल्लशालामें उनके समीप सायंकाल जा बैठता हूँ तो तोक मेरे अंकमें आ जाता है। वह श्यामसुन्दरकी दिनभरकी चर्या सुनाता है।

जबसे श्यामसुन्दर बछड़े चराने जाने लगा, मेरा यह सुख भी जाता रहा। बालक दिन भरके थके आते हैं और वे व्यारू करके फिर नन्द भवन

भाग जाते हैं। वहाँसे तोकको सो जानेपर नन्दनजी गोदमें उठा लाते हैं। हमारे ही बालकोंको हम कठिनाईसे ला पाते हैं। अब तो प्रतीक्षा करनी पड़ती है उस तिथिकी जब तोकका जन्म-नक्षत्र हो। उस दिन वह गोचारणको नहीं जाता। तब वह अपने पिताके पास मल्लशालामें मिल सकता है।

श्यामसुन्दरकी झलक ही पायी जा सकती है। यह झलक प्रतिदिन मिल जाती है जब वह वनमें जाता होता है या वनसे लौटता आता है। प्रातः वह सुबलके कन्धेपर वामबाहु रखे झूमता आता है। मत्तगयन्द किशोर जैसी उसकी गति और उसके बाम सटा हमारा सुबल। सुबल तो सवेरे उठते ही भागता है नन्दग्रामकी ओर। बालक मध्य मार्गमें ही मिलते हैं। मैं यही देखने तो दूरतक आकर दूर खड़ा रहता हूँ। सुबल और श्यामसुन्दर भुजा फैलाकर मिलते हैं और फिर सुबल उसके वामपार्श्वसे सट जाता है। वह इसके कन्धेपर भुजा रख देता है। यह छटा—नीलाम्बरधारी सुबल और वह पीताम्बर फहराता श्यामसुन्दर। मुझे बार-बार सुबल लली लगने लगता है; किन्तु............

सायंकाल वंशीध्वनि आती है प्रथम। हम सब तो बहुत पहलेसे मार्गमें प्रतीक्षा करते होते हैं। मेरे साथ अनेक गोप वन-सीमान्तपर ही रहते हैं। वंशीध्वनिके साथ अनेक शृंगों और शङ्खोंकी भी कोमल ध्वनि,बालकोंके लगे अधरोंसे शङ्ख भी कोमल स्वर ही करते हैं। लेकिन उस सब समवेत स्वरमें पृथक लहराती वंशी ध्वनि और कभी वंशी नहीं बजती तो एक अत्यन्त सुरीला शृंग बजता है। शृंगमें भी इतना मधुर स्वर तो श्यामसुन्दर ही भर सकता है।

बालकोंका कोलाहल सुनायी पड़े, इतनेमें दौड़ने-कूदते बछड़ोंका समूह सम्मुख आ जाता है। हम सब बछड़े ही सम्हालने तो लाठी लिये आते हैं; किन्तु किसीको इस समय बछड़ोंकी ओर देखनेका भी अवकाश होता है। बछड़ोंको सम्हालना क्या और सम्हालनेपर भी वे यहाँ रोके जा सकते हैं ? वे तो रुकेंगे ही तब जब उनका मयूर मुकुटी चरानेवाला आगे आकर खड़ा होगा।

शतशः बालक नाचते, कूदते, ताली या शृंग बजाते। उन सबका अद्भुत वेश—केशोंमें किसलय, पुष्प, गुञ्जागुच्छ लगे, गलेमें मालाएँ और

पूरे शरीरपर वनधातुओंके अधपुंछे अनेक प्रकारके चित्र। करोंमें वेत्र लकुट, कन्धोंपर या शीशपर लपेटी रस्सियाँ। सब बालक प्रफुल्ल; किन्तु थके-थके-से।

सबके मध्य श्यामसुन्दर। सचमुच यह नटवर है। घुंघराली, काली, गो-रज सनी, सुमन भरी अलकोंमें मयूर पिच्छ लगाये, एक रज्जु लपेटे, कटिकी कछनीमें एक ओर मुरली और दूसरी ओर शृङ्ग लगाये, कभी लकुट करमें और कभी कक्षमें लगाता हँसता, ताली बजाता, कभी आगे बढ़ता और कभी घूमकर पीछे जाता, नृत्य-सा करता चलता है।

कंठमें वनमाला, मुक्तामालके भी ऊपर गुंजाओंकी माला डाल ली है। सम्पूर्ण शरीर वनधातुओंसे चित्र-विचित्र है। पटुका लहरा रहा है। अलकें-पलकें सब गोधूलि धूसर हैं और हँसता है तो चन्द्रिका छिटक जाती है।

दूरसे यह एक झलक मिलती है। एक झलक ही मिलती है प्रतिदिन। फिर तो दृष्टि इसकी नासिकापर अटक जाती है। गोरज सनी सुकुमार पतली ऊँची नासिका और उसपर कभी कुछ पीत पुष्प-पराग-कण दीखते हैं, कभी गैरिक, मनःशिला या खड़ियाके नन्हें धब्बे भी।

श्यामसुन्दरकी पीठपर लहराती घुंघराली अलकोंकी छटा मैं और जानता हूँ। जब वह पीछे मुड़ जाता है सखाओंकी ओर अथवा बछड़ोंके संग आगे बढ़ जाता है, दृष्टि उसकी पीठपर लहराती अलकोंमें जा अटकती है।

वह कभी किसी बछड़ेको पुचकारता है, कभी किसीके गलेमें भुजाएँ डाल देता है। बछड़े भाग्यशाली हैं, आगे-आगे दौड़ते भी लौट पड़ते हैं और उसके समीप जाकर, उसे सूंघकर पूँछ उठाकर कूदते हैं। कुछ बोलते हैं एकाध बार और आगे दौड़ जाते हैं।

यह श्रीव्रजराजका कुमार है; किन्तु ऐसा तो कभी लगता ही नहीं। सब बालकोंका सखा, सबका अपना और उस दिन तो मैं चकित, विभोर रह गया। मेरा अपना सेवक मार्गमें तनिक आगे निकल आया था। वृद्ध है, मैं भी उसका सम्मान करता हूँ, पर सेवक ही तो है। मलिन थे वस्त्र उस दिन। गोष्ठ स्वच्छ करके दौड़ा आया और उसी त्वरामें मार्गके लगभग

मध्यमें खड़ा हो गया। उसे ध्यान ही नहीं रहा कि उसके दोनों ओरसे उसे रगड़ते, ठेलते बछड़े दौड़े जा रहे हैं।

'बाबा !' श्यामसुन्दर तो उसे देखते ही आगे दौड़ा आया। वृद्ध कुछ समझे, इससे पहले उसे श्रीव्रजराजकुमारने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया और उसका हाथ पकड़कर हिला दिया।

वह बूढ़ा हक्का-बक्का खड़ा रह गया। उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा न चलती होती तो उसे मूर्ति माननेमें किसीको संकोच न होता। वह खड़ा रहा, खड़ा ही रह गया वहीं। श्यामसुन्दर तो हँसता पीछे लौटा और सखाओंके साथ फिर आया तो हँसता-हँसता उस वृद्धकी पूरी परिक्रमा लगाकर उसे फिर मस्तक झुका गया। जैसे वह बूढ़ा कोई देवता या ऋषि-मुनि हो।

उस सेवकको मैं उस दिन सप्रयत्न किसी प्रकार भवन ले आया। वह तो वहीं मार्गमें बैठ गया था। जब बालक आगे चले गये और दोनों करोंसे मार्गकी धूलि पूरे शरीरमें मलता ही चला जा रहा था। उस दिन उसे उन्माद हो गया। कई दिनमें उसका चित्त स्थिर हो सका। तबसे उसे सायंकाल मार्गपर नहीं जाने दिया जाता। वह मार्गसे दूर ही खड़ा रहता है; किन्तु नन्दनन्दन भी कम नटखट नहीं है। हम सबमें किसीको नहीं; किन्तु उस बूढ़ेको उसकी दृष्टि अवश्य ढूँढ़ लेती है और अपनी अलकोंमें-से कोई पुष्प निकालकर वह वृद्धकी ओर उछाल दिया करता है।

वह तो वृद्ध है। हम सब उसका पहले भी सम्मान करते थे और अब तो वह हमारे यहाँ सबका आदरणीय बन ही गया है। श्रीनन्दरायके कुमार जिसे आदर दें, वही तो सबका आदरणीय है। अब वह वृद्ध बहुत संकोच करे तब भी क्या उसका संकोच या नम्रता ध्यान देने योग्य रही है।

वृद्ध तो अब भी हक्का-बक्का ही खड़ा रहता है। श्यामसुन्दर उसकी ओर पुष्प उछालता है, यह भी उसे पता नहीं। वह पुष्प तो मैं उठा लाता हूँ। जानता हूँ कि ललीकी कोई सखी उसे माँगने तत्काल दौड़ी आवेगी ही। बच्चियोंमें सब तो वह पुष्प पाना चाहती हैं।

स्वसा (बहिन) वर्ग

नन्दिरा बहिन—

मुझसे छोटा है श्यामसुन्दर, कई वर्ष छोटा है। मुझसे छोटा तो विशाल भी है। मैं अपने पिताकी सबसे बड़ी पुत्री हूँ। मेरे सब छोटे भाई ही हैं। मैंने इन सबको गोदमें खिलाया है।

श्याम मेरे मझले चाचाका पुत्र है; किन्तु मुझे तो कभी ऐसा नहीं लगा। मेरा सगा भाई विशाल भी उतना सगा नहीं लगता, जितना श्याम लगता है।

इतना अवश्य है कि विशालकी काया ऐसी है कि वह मुझसे बड़ा दीखता है; किन्तु बड़ा दीखनेसे तो कोई बड़ा नहीं हो जायगा। बड़ी तो मैं हूँ, इन सबसे बड़ी हूँ। वैसे जी तो करता है कि इनमें-से कोई मुझसे बड़ा होता तो अच्छा था।

माँ कहती है—'बलको बड़ा मान ले !'

माननेसे वह बड़ा हो जायगा ? माँ पता नहीं क्यों ऐसा कहती है। वह तो कहती है—'देख रानी जीजी मुझसे छोटी लगती हैं या नहीं; किन्तु उन्हें हम सब बड़ी मानते हैं। वे राजरानी हैं। बल उनका कुमार है। वह राजकुमार है, इसलिए तुझसे बड़ा है।'

रानी माँ छोटी तो लगती हैं; किन्तु ऐसे तो मैं भी विशालसे छोटी लगती हूँ। लगनेसे तो कोई छोटा होता नहीं। बल राजकुमार है तो क्या हो गया, वह मुझसे तो छोटा है। मैंने उसे भी गोदमें उठाया है। बहुत कम उठाया है, यह बात ठीक है। वह मुझे बहुत भारी लगता था और पहले तो गुमसुम बैठा रहता था। न रोना, न हँसना। गोदमें भी नहीं आना चाहता था। वह मुझे जीजी ही कहता है।

गोदमें तो मैंने सबसे अधिक श्यामको उठाया है। यह तो पुष्प जैसा है। तनिक भी भारी नहीं लगा कभी। मैं इसे गोदमें लेकर पूरे आँगन नाचती रहती थी।

श्यामको तो मैंने पहले तब देखा जब वह व्रजेश्वरी भैयाकी गोदमें प्रसूति कक्षमें लेटा था। जैसे एक नवीन खिला इन्दीवर पड़ा हो भैयाकी गोदमें। बहुत नन्हा था, पुष्प जितना ही नन्हा और वैसा ही सुकुमार। मैं समीप गयी तो मेरे ही मुखको एकटक देखने लगा। मेरी माँने तो तभी कहा था इससे—'तेरी जीजी है, इसे पहचान ले।'

मैं तो तभी इसे गोदमें उठानेवाली थी; किन्तु सबने मुझे डाँट ही दिया। मैंने अपनी एक अंगुलीसे धीरे-से इसे स्पर्श किया। कितना सुकुमार, कितना कोमल था यह।

मेरा जी बार-बार इसे गोदमें उठानेको करता था। सब गोपियाँ मुझे डाँट देती थीं। मैं रोने-रोनेको हो गयी थी तब रानी माँने ही पुचकारा था मुझे—'नन्दिरा बेटी, तेरा यह भैया तेरी गोदमें बहुत घूमेगा। तुझे तो यह थका देगा। बस इसे इस प्रसूति कक्षसे बाहर होने दे, तब तू गोदमें लेना।'

रानी माँने तो मुझे बलको गोदमें उठानेसे कभी मना नहीं किया था। वे मुझे कभी रोकती-टोकती नहीं हैं। रोकती तो व्रजेश्वरी भैया भी नहीं है। वह भी स्नेह ही करती है। मेरी माँ ही मुझे बहुत रोकती है।

प्रसूति कक्षसे श्याम जिस दिन बाहर आया, उसी दिन तो वह राक्षसी पूतना इसे ले भागी थी। उसके पाससे जब गोपियाँ इसे उठा लायीं, सब देरतक इसके अङ्गोंमें गोमूत्र, गोबर, गो-रज लगाती रहीं। सबने ही तो इसे गोदमें उठा-उठाकर देखा।

गोपियोंमें बहुत-सी तो बहुत स्वार्थी हैं। मैं जानती हूँ कि श्यामको गोदमें लेकर कितना सुख मिलता है। तभी तो मैं इसे गोदमें उठाकर नाचती फिरती थी। गोपियाँ मुझे तो रोकती थीं—'तू गिरा देगी, तू बहुत जोरसे पकड़ती है।' और मुझसे छुड़ाकर स्वयं गोदमें उठा लेती थीं। देरतक गोदमें उठाये रहती थीं।

इतना मृदुल श्याम, इसे मैं जोरसे कैसे पकड़ सकती थी। यह इतना हल्का था कि मैं इसे भली प्रकार सम्हाले रख सकती थी। गिराया तो मैंने कभी बलको या विशालको भी नहीं था।

'यह तेरे केश खींचेगा। तेरी नाक नोचेगा।' कईने कहा था मुझसे, अनेक बार कहा था।

'मेरा भैया है!' मुझे तो कभी नहीं लगा कि यह मुझे तनिक भी तंग करेगा। इसने मेरे केशोंमें हाथ भी डाले तो मुझे यही भय लगता था कि इसके हाथोंको केश खिंचनेसे पीड़ा होगी। कितने सुकुमार हैं इसके कर। मेरी नासिका देख-देखकर, छूकर यह प्रसन्न होता था। पकड़नेका प्रयत्न तो करता था; किन्तु पकड़ी कभी नहीं इसने।

इस श्यामकी एक ही बात मुझे अच्छी नहीं लगी थी। यह बोलने लगा तो मुझे भी 'माँ कहता था। यह तो सभीको माँ' कहने लगा था।

'मैं तेरी जीजी हूँ।' मैंने इसे सिखलानेका बहुत प्रयत्न किया; किन्तु जीजी यह बहुत दिनोंतक नहीं बोल सका। यह 'दीदी' कहने लगा, तब भी मुझे आनन्द आया था। अब भी 'दीदी' ही कहता है; किन्तु तब तो खीझने, समझानेपर 'दीदी' कहता था। इसके मुखपर तो सबके लिए 'माँ' चढ़ा था।

मैं बड़े सवेरे घरसे इसके समीप भाग आती थी और यह भी देखते ही दोनों हाथ उठा देता था गोदमें आनेके लिए और कहता था—'माँ!'

'मैं नहीं लेती तुझे गोदमें।' मैं झूठा ही गुस्सा दिखलाती थी। 'तू मुझे पहले दीदी कह।'

नटखट यह शैशवसे ही है। गोदमें आनेके लिए तो दीदी कह देता था और गोदमें आकर फिर 'माँ' कहता था। माँ कहकर हँसता था। मैं रूठनेका अभिनय करती थी तो मेरे कपोलपर कर रखकर मेरा मुख अपनी ओर करता था। उझककर मेरे नेत्रोंकी ओर ही देखता था।

श्याम घुटनों सरकने लगा तो इसके आस-पास ही हमारे सब भाई घिरे रहते थे। हम सब भी इसके ही समीप बनी रहती थीं। इससे दूर होनेको जो करता ही नहीं था।

'नन्दिरा, तू भी छोटे भाईको रोकती नहीं।' मुझे माँका, रानी माँका,

भैयाका भी बार-बार उलाहना मिला है। श्याम देहरी पार करने लगा तो गोष्ठमें चला जाता था। वहाँ गोबर, गोमूत्रमें खेलता रहता था। बल, इसके सखा और हम सब भी इसके साथ ही खेलमें लग जाती थीं।

श्यामको रोका भी जा सकता है, यह बात ही मेरी समझमें कभी नहीं आयी। यह तो जब गोदमें आना चाहे, तभी उठाया जा सकता था। जब गोदमें नहीं आना चाहता था तो मुखकी ओर देखकर मुस्करा देता था और घुटनों सरकता एक ओर खिसक लेता था।

गोबरमें जाकर बैठ जाता था या गोबरके ढेरपर अपना नन्हा सिर रखकर लेट जाता था। गोदमें उठाने जाऊँ तो हाथकी अंगुली पकड़कर पास बैठा लेता था। इसके संकेतको टालते तो बनता ही नहीं था।

मेरे केशोंमें, कपोलोंपर, वस्त्रोंपर पता नहीं कितना गोबर लगाया है इसने। यह गोबर सना हाथ सिरकी ओर बढ़ाता था तो मैं सिर हटा लेती थी; किन्तु तब यह नटखट मुझे पकड़कर खड़ा हो जाता था और पीछे जाकर पीठसे चिपकता था। फिर मेरे केशोंमें गोबर लगाकर प्रसन्न होता था।

गोपोंमें बड़ी बुरी प्रथा है नन्हीं आयुमें ही विवाह कर देनेकी। मुझे बड़ा दुःख हुआ, बहुत रोयी मैं जब मुझे ससुराल जाना पड़ा। मैं श्यामसे दूर जा रही हूँ—यह सोचकर मेरा हृदय फटता था।

'नहीं करना मुझे ब्याह।' मैं कितनी बार तो अपनी माँकी गोदमें फफककर रोयी। कितनी बार अपने बाबासे रूठी। रानी माँ, व्रजेश्वरी मैयासे भी मैं रोयी; किन्तु कोई लड़कीकी बात नहीं सुनता।

'तुझे झटपट बुला लिया करेंगे।' सब मुझे ही समझाते थे—'तेरे भैया तुझे लेने जाया करेंगे।'

ये बड़े लोग समझते ही नहीं कि इनका झटपट कितना भारी पड़ता है, कितना लम्बा लगता है मुझे और श्याम भैया ही कहाँ कभी मुझे बुलाने गया है। विशालको ही तो भेजते हैं ये लोग। मैं तो बिना बुलाये दूसरे ही दिन आ जाया करूँ; किन्तु सब तो मना करते हैं।

श्याम बड़ा हो गया। पैरों चलने दौड़ने लगा, बस इतना बड़ा हो गया। वैसे यह अब भी बहुत छोटा है। तब तो नन्हा ही था; किन्तु इसने अपने सखाओंका पूरा दल बना लिया। हम लड़कियोंको कोई कहाँ ऐसे घूमने देता है। माँ ही डाँटती, रोकती है। गोपकन्याको घरके बहुतसे काम शैशवमें ही सीखने पड़ते हैं।

मुझे अपने इस भैयाके समीप रहनेका समय ही कम मिलने लगा; किन्तु इसका स्नेह तो बढ़ना ही बढ़ना जानता है। मुझे एक भी दिन स्मरण नहीं जब इसने मुझे देखते ही न पुकारा हो—'दीदी ! दीदी आ गयी।'

श्याम ही पहले दौड़ा आता था। इसके पीछे तो सब भाई दौड़े आते थे और लिपट जाते थे। रानी माँ हँसकर कहती थीं—'तेरी दीदी आ गयी। अब यह तुझे खिलावेगी।'

मेरी माँ तो कहती थी—'यह नीलमणि तो ऐसे भागता है जैसे दीदी नयी आयी है कहीं से। अभी रात तो सब इसी दीदीके साथ खेलते रहे हैं।'

श्याम भोजन करनेमें सदासे मचलता है। मैया और रानी माँ इसे किसी प्रकार धर पकड़कर दो चार ग्रास खिलादें तो खाय। अपने तो इसे जैसे भूख लगती ही नहीं है। कभी भूखकी बात कहेगा भी तो किसी सखाको अथवा कपिको ही इसे खिलाना होगा। मैयासे मचलकर मोदक, माखन या कुछ लेगा और दूसरोंको बाँटनेमें लग जायगा। अपने करोंसे सखाओंके मुखमें देगा। अपने मुखमें देगा भी तो दो अंगुलीसे उठाये दो कण डालेगा।

'श्याम, मुझे भूख लगी है।' इसे खिलानेकी यह युक्ति मुझे इसके बहुत छोटपनसे आ गयी है। मेरे यह कहते ही खेलमें भी लगा हो तो छाड़कर भाग आता था और मेरा कर पकड़ता था—'चल !'

बार-बार तब मेरे मुखकी ओर देखेगा। इतना भोला है कि मेरी भूख मेरे मुखपर देख लेना चाहता है। इससे जब पूछती हूँ—'तुझे भूख कहाँ लगती है ?' तब नन्हा मुख खोलकर दिखा देता है।

'भूख उदरमें लगती है।' मैंने अनेक बार इसे समझाया। यह अपना उदर देखता और सिर हिला देता।

'यहाँ तो धूलि लगती है।' यह बोलनेमें बहुत चपल है। कहने लगा—'कभी तोक गोबर भी लगा देता है। देख।'

अब उदर दिखाने लगा तो हँसी नहीं आवेगी? 'मुझे तो उदरके भीतर भूख लगती है।'

मेरे कहनेपर सिर हिला देता है। समझ ही नहीं पाता कि उदरके भीतर कुछ लग कैसे सकता है। लेकिन मैं अपने भूख लगनेकी बात कहूँ तो झटपट दौड़ता है। मैं भूखी रहूँ, यह मेरा यह नन्हा भैया सह नहीं सकता।

अपने हाथसे नन्हा ग्रास मेरे मुखमें डालेगा। मैं मुख हटाऊँ तो मचलेगा, जिधर मुख घुमाऊँ उधर जा खड़ा होगा और दूसरे हाथसे मुख खोलना चाहेगा।

'तू नहीं खायगा तो मैं नहीं खाती। यह युक्ति है इसे खिलानेकी। मुझे खिलानेके लिए मेरे हाथसे दो चार ग्रास मुखमें ले लेता है। इसे खिलाना हो तो मुझे इसके साथ खाना ही पड़ता है।

यह तो अब भी ऐसा ही है। अब भी वनसे आता है तो यही चिन्ता लिये आता है कि इसकी दीदी भूखी बैठी होगी। आते ही पूछता है—'दीदी, तुझे भूख लगी है?'

रानी माँ कहती थीं कि मैं यहाँ नहीं होती हूँ तो भी श्याम वनसे लौटकर पहले पूछता है—'नन्दिरा दीदी कहाँ है?'

तब भी यह वनसे अपनी इस दीदीके लिए कुछ-न-कुछ लाना नहीं भूलता। भूल इसे यह जाता है कि इसकी दीदी इस समय यहाँ नहीं है।

मुझे ससुराल तो जाना पड़ता है। न वहाँके लोग ले जाये गये विना मानते और न माँ-बाप भेजे बिना माननेवाले हैं। उलटे सब कहने लगे हैं—'नन्दिराके पैर ससुरालमें टिकते ही नहीं। यह पाँचवें दिन भी भाग आती हैं।'

मेरा वश हो तो मैं वहाँ पाँच घड़ी भी नहीं ठहरूँ। वहाँ मुझे कोई

कष्ट नहीं है; किन्तु यही क्या कम कष्ट है कि मेरा यह श्यामसुन्दर वहाँ देखनेको नहीं मिलता। श्यामको देखे बिना नेत्र तरस जाते हैं।

अब तो यहाँ वृन्दावन आकर दिन पूरा बीत जाता है इस नन्हे भाईका मार्ग देखते। यह सवेरे ही भागता है सखाओंके साथ वनकी ओर।

'तू कहाँ गयी थी ?' मैं मिलूँ तो यही पूछता है। ससुरालसे आऊँ तभी नहीं पूछता, कभी-कभी तो वनसे लौटते ही पूछता है—'ससुराल चली गयी थी ?'

'ससुराल जाती तो आज ही कैसे आ जाती ?' मैं इसके भोलेपनपर हँसती हूँ—'तू ही तो सवेरे वनमें चला जाता है।'

'तुझे ससुराल जाना हो तो सवेरे चली जाया कर।' इसे कितना समझाया कि इस प्रकार ससुराल जाकर सायंकाल नहीं लौटा जा सकता; किन्तु; यह बात इसकी समझमें ही नहीं आती। यह भी नहीं समझता कि वहाँ मुझे भोजन मिलता होगा। कहता है—'भूख लगे तो झट भाग आया कर। वहाँ तुझे भूख नहीं लगती ?'

मेरा यह नन्हा भाई, इसे अपनी दीदीकी भूखकी इतनी चिन्ता रहती है।

मन्दिरा बहिन–

अपने शैशवसे मैं अपनी नन्दिरा जीजीकी अनुगता रही हूँ और अब भी हूँ। मुझे अपने लिए पृथक कभी कुछ सोचना ही नहीं पड़ा। सब कहते हैं—'यह मन्दिरा तो वही करेगी जो नन्दिरा इसे कहेगी या स्वयं करेगी।'

यह कोई बुरी बात तो है नहीं। इसमें मैं सदा करने-न-करनेकी चिन्तासे बची रहती हूँ। मेरे लिए भी मेरी जीजी ही सोच लेती है और अब मेरे लिए सोचनेवाले तो मेरे तीन-तीन भैया हो गये हैं। दाऊ, श्याम और भद्र। तीनों मुझसे छोटे हैं तो क्या हो गया, तीनों ही तो अपनी इस जीजीके लिए सोचते हैं, करते हैं। अभीसे इसकी चिन्ता करते हैं।

नन्दिरा जीजी तो शैशवमें भी मुझे लिए बिना कहीं जाती नहीं थी। अब भी वह मुझे साथ लेकर ही निकलती है घरसे। सवेरे उठती है तो सीधे मेरे पास आती है—'मन्दी उठी या नहीं?'

पहले-पहले श्यामको देखने हम बहिनें साथ ही तो व्रजरानी माँके प्रसूति कक्षमें गयी थीं। तब तो भोरका पूरा उजाला भी नहीं हुआ था। हमारे घरोंमें सब आनन्द कोलाहल करने लगे थे। मेरी मैया तो नवीन कपड़े पहिन रही थी और बाबा भी कञ्चुक पहिनकर उष्णीष बाँधने लगा था। मैं जगी तो चकित देखने लग गयी कि ये कहाँ जा रहे हैं।

'मन्दी, झटपट उठ।' नन्दिरा जीजी दौड़ती आयी। उसने भी नवीन घाघरी पहिनी थी। झटपट मैयाने मेरा मुख धुला दिया और मुझे भी नवीन चटक घाघरी पहिना दी।

'जीजी, कहाँ मेला है?' मैंने पूछा था।

'तू कुछ नहीं जानती।' नन्दिरा जीजीने कहा—'हमारे भैया आया है। जल्दी चल, नहीं तो हम बच्चोंको कोई वहाँ घुसने ही नहीं देगा।'

'भैया कौनसा ? बल, विशाल, अर्जुन, ऋषभ, भद्र.......' मैं नाम गिनाने लगी। ये सब तो कहीं गये नहीं थे।

'नवीन भैया आया है। व्रजेश्वरी भैयाकी गोदमें आया है।' नन्दिरा जीजी तो मेरा हाथ पकड़कर मुझ दौड़ाये जा रही थी। मेरी मैया तो हमसे पीछे घरसे निकली।

'ये भैया कहाँसे आते हैं ?' मैं अब भी ठीक नहीं जानती हूँ। मैंने अपने बाबासे पूछा तो उन्होंने कह दिया—'अपनी मैयासे पूछना।'

'तू कहाँसे आयी है ?' मैयासे पूछा तो वह मुझसे ही पूछने लगी। मैं क्या जानूँ कि मैं कहाँसे आयी हूँ। मैया मुझे यह भी तो नहीं बतलाती। इतना मैं जान गयी हूँ कि मैं भी वैसी ही नन्ही आयी हूँगी, जैसे ये भैया आते हैं। सब नन्हें आते हैं।

नन्दिरा जीजीने तब कहा था—'कोई स्वर्ण पक्षी है, वही चुपकेसे नन्हें शिशुको किसी भैयाकी गोदमें दे जाता है। वह इतना चुपके दे जाता है कि कोई उसे देख नहीं पाता।'

दूसरोंकी बात तो जानती नहीं; किन्तु उस दिन सब नन्द-भवनमें कह रहे थे—'नीलमणि आया तो सब सो रहे थे। किसीको पता नहीं लगा—मैयाको भी पता नहीं लगा कि उसकी गोदमें नीलमणि कब आया।'

अवश्य पक्षी ही लाता होगा। तभी तो वह इतना नन्हा शिशु लाता है। बड़ा बालक उससे कैसे उठेगा। नन्दिरा जीजी कहती है—'विधाता शिशु भेजता है।'

श्याम बहुत नन्हा था। मेरी हथेलीसे थोड़ा बड़ा था और एकटक देख रहा था हम दोनोंको। मैंने भी नन्दिरा जीजीके समान एक अंगुलीसे ही उसको छुआ। मुझे तो स्पर्श करते डर लग रहा था। दूधका फेनभी इतना सुकुमार नहीं होता, जितना मेरा नन्हा भैया था।

हम दोनों तो श्यामके समीप ही रहने लग गयीं। हमें मैया ठेल-ठालकर स्नान कराने, भोजन कराने बाहर भेजती थी। हमें रहने नहीं दिया जाता था, नहीं तो हम रात्रिमें भी उसी कक्षमें रहतीं।

पता नहीं शिशु आता है तो उसकी मैयाको सब क्यों प्रसूति कक्षमें बन्द कर देते हैं। वहाँ धूप जलाने लगते हैं। नन्दिरा जीजीने बतलाया तो था कि शिशु आता है तो उसकी मैया रुग्ण हो जाती है। पता नहीं क्यों रुग्ण हो जाती है। शिशुके आनेके आनन्दसे रुग्ण होती होगी। व्रजेश्वरी मैया तो मुझे रुग्ण नहीं लगी थीं।

'तू देखती नहीं कि हमारा यह भैया कितना नन्हा और कोमल है।' नन्दिरा जीजीने ही कहा था—'अभी तो यह न वायु सह सकता, न प्रकाश। मैया इसे छोड़कर कैसे उठ सकती है। अभी तो यह गोदमें भी उठाने योग्य नहीं है।'

मेरी नन्दिरा जीजी बुद्धिमान है। वह बहुत बात समझती है। मैं बाबा या मैयासे कुछ पूछूँ तो वे नहीं बतलाते। मैया तो डाँट भी देती है। नन्दिरा जीजी ही मुझे सब बात बतलाती है।

श्याम भैया जब उस कक्षसे बाहर पालनेमें लिटाया गया तो नन्दिरा जीजीके अङ्कसे ही मैंने अपने अङ्कमें उसे लिया था। कितना सुकुमार है वह। उसे देखकर तो हम दोनों आज भी नाचने लगती हैं।

दिन भर उसके पलनेके समीपसे हमारा हटनेको ही मन नहीं होता था। श्याम पास हो तो भूख-प्यास सब भूल ही जाती है। फिर तो जी करता है कि उसीको देखे जाओ।

वह बैठने लगा तब कहीं हम दोनोंको उसे गोदमें उठानेको मिला। रानी माँ और व्रजेश्वरी माँने तो हमें कभी मना नहीं किया; किन्तु मेरी मैया सदा टोकती थी—'इसे गिरा मत देना।'

यह भी कोई कहनेकी बात थी। इतना तो प्यारा भैया यह हमारा। इसे कोई गिरा कैसे देगा और यह तो एक पाटल पुष्प जितना भी भारी नहीं था।

यह नन्दिरा जीजी या मेरे कपोलपर कर रख देता था। यह हममें-से किसीकी नासिका छूना चाहता था तो हम इसके समीप अपना मुख कर देती थीं।

मेरी मैया इसे अङ्कमें उठाती थी तो यह उसके वस्त्र गीले कर देता था; किन्तु हम दोनोंके वस्त्र तो इसने कभी गीले नहीं किये। यह भी बहिनोंको पहिचानता था और जानता था कि बहिनकी गोद गीली नहीं करनी चाहिये।

बल भैया तो घुटनों भी तब चलने लगा जब श्यामने सरकना प्रारम्भ किया। इससे पहले तो वह बस बैठा रहता था। श्यामने घुटनों सरकना प्रारम्भ किया तो जैसे इससे सब बड़े भैया खड़े होकर चलना ही भूल गये। सब इसके साथ घुटनों ही सरकने लगे।

हम दोनों इसके समीप बनी रहती थीं। बनी तो और भी हमारे व्रजकी बालिकाएँ रहती थीं और बालक तो रहते ही थे; किन्तु सबसे बड़ा था भगवती पूर्णमासीका मधु मङ्गल। वह बहुत नटखट है। वही कहता था—'नन्दिरा, मन्दिरा जिज्जी। ब्राह्मणको खिलाओ जिज्जी।'

मधु-मङ्गलको किसीके खिलौनोंसे कोई प्रीति नहीं थी। वह तो कहता—'मैं इस कन्हाईसे ही खेलूँगा।'

'हमारा भैया कोई खिलौना है ?' मैं कह तो देती थी; किन्तु श्यामके समीप मुझे भी कोई खिलौना, कोई गुड़िया कभी प्रिय नहीं लगी। हम तो अपने खिलौने इस श्यामके आगे ही धर देती थीं।

मेरा यह छोटा भैया जन्मसे अत्यन्त उदार है। यह तो अपने हाथमें आये खिलौने भी हमें या अपने किसी सखाको ही देना चाहता था। अब भी इसकी किसी वस्तुको तनिक ध्यानसे देखो तो पूछता है—'तू लेगी ?'

अपने कण्ठकी मणिमाला किसीके भी गलेमें डालकर ताली बजाता था तब भी जब घुटनों सरकता था और फिर उस मालाको लेना ही नहीं चाहता था।

मुझे स्मरण है कि इस नन्हेंके समीप मैं एक बार मुख ले गयी तो यह मेरे एक कुण्डलको छूने लगा। मैंने पूछा—'तू पहनेगा ?' लेकिन मैं कुण्डल उतारने लगी तो इसने मेरा हाथ पकड़ लिया। यह तो कुण्डलको मेरे कपोलसे सटाकर या हिलाकर देख रहा था।

'तू इसे कुण्डल कैसे पहिनावेगी ?' नन्दिरा जीजी न बतलाती तो मुझे स्मरण ही नहीं था कि इसका कर्णवेध तो हुआ ही नहीं था।

यह तनिक बड़ा हुआ, पैरों चलने लगा और फिर नूपुर रुनझुन करता दौड़ने भागने लगा तो हम सब इसका साथ नहीं दे पाती थीं। इसके सखा ही इसे घेरे रहने लगे। लेकिन तभीसे इसे धुन चढ़ गयी कि बहिनोंको कुछ-न-कुछ देना चाहिये। पता नहीं यह धुन इसे लगी कैसे; किन्तु लगी तो लग गयी। प्रतिदिन कुछ-न-कुछ देना है, यह इस बातको भूलता ही नहीं।

मेरे मुखमें अपने करोंसे ग्रास तो यह देने लगा, जब बैठना ही सीखा था। अब तो मेरे केशोंमें पुष्प लगाकर भी इसे सन्तोष नहीं होता। कभी तो वनसे ही मेरे केशोंके लिए माल्य ग्रन्थन कर लाता है। कभी गुंजाकी माला बना लाता है।

'हम दोनों इसके पीछे गोष्ठमें गयी थीं। तब यह पैरों चलने ही लगा था। इसने एक हरे गोबरके समीप आसन लगाया और बोला— 'बैठ !'

नन्दिरा जीजी खड़ी रही और मैं बैठ गयी तो इसने गोबर उठाया। मैं कुछ समझूँ और उठूँ इससे पहले इसने मेरी पूरी नासिकापर वह हरा-हरा गोबर लगा दिया और ताली बजाकर हँसने लगा।

'तेरी बहू आवेगी तब तू उसका ऐसा शृङ्गार करना !' मैंने इसे उस दिन धमकाया था; किन्तु इसके हाथका लगाया गोबर मैं पोंछ नहीं सकी। उसे पोंछनेका मन नहीं हुआ। यह जैसे संकुचित हो गया। मेरा मुख देखता रह गया।

मैंने इसे गोदमें उठा लिया तो यह अपनी नन्हीं हथेलीसे नासिकापर लगा गोबर पोंछने लगा। इस नन्हेंको कैसे स्मरण रहता कि इसके हाथमें गोबर लगा है। मेरा पूरा मुख, कपोल गोबरसे हरा-हरा हो गया, यह देखकर नन्दिरा जीजी खूब हँसी थी।

मेरा मुख तो धोया रानी माँने। उन्होंने भी इसे धमकाया प्रेमसे— 'जीजीके मुखपर गोबर लगाता है।'

मुझे लगता है कि नन्हा होनेपर भी यह उसी दिन समझ गया कि

बहिनोंके मुखपर गोबर नहीं लगाया करते। फिर तो मेरे या दूसरी किसी बहिनके मुखपर इसने कभी गोबर नहीं लगाया।

मैया इसके चन्दन लगाती थी तो कटोरी ही लिये आता था और मेरे हाथमें देकर कहता था—'तू लगा !'

मैं इसके भालपर खौर अब भो बड़ी ललकसे लगाती हूँ; किन्तु यह मेरे हाथ पकड़ता है, झगड़ता भी है—'तू अपने लगा।'

हमारे केशोंमें पुष्प लगे ही रहने चाहिये। न लगे हों तो यह देखते ही पुष्प चयनको भागेगा।

मेरे वस्त्र इसे किसी दिन मलिन दीखे तो इसने अपना पटुका ही मुझे पकड़ा दिया—'इसे पहिन !'

अब गोपकन्याके वस्त्रोंमें गोबर-गोमूत्र नहीं लगेगा ? इसीके अङ्गोंमें लगा कितना गोबर-गोमूत्र मेरे वस्त्रोंमें लगा है जब यह नन्हा था; किन्तु अब तो इसे बहिनके तनिक भी मलिन वस्त्र सहन नहीं हैं।

ब्रजेश्वरी मैया इससे भी दो पद आगे हैं। भाई अपना पटुका उतार कर दे देता है तो मैया अपने ही नवीन वस्त्र उठा लाती हैं और चाहे जब गोदमें उसे पहिनाकर बैठा लेती हैं। आभूषण सजाने लगती हैं—'कन्याको केवल वस्त्र नहीं दिये जाने चाहिये।'

मेरे इतने-इतने भैया हैं। मैं तो उन्हें गिन भी नहीं सकती। इसलिए जो मुझे बहिन कहता है, वह भैया है, यह मान लेना सुविधाजनक है। जो भैया नहीं होगा, वह बहिन कहेगा ही क्यों ? लेकिन मैं अपने सब भैया पहिचान नहीं सकती। सब मुझसे स्नेह करते करते हैं। सब मुझे देना-ही-देना चाहते हैं।

इस श्याम भैयाकी तो बात ही मत पूछो। यह मुझे एक क्षणको भी नहीं भूलता और इसे तो कोई भी भुला नहीं सकता। यह है ही ऐसा कि इसे भुलाया नहीं जा सकता।

यह कभी चिढ़ाता भी है तो हँसानेके लिए। ऐसी बात करेगा, ऐसे चलेगा या मटकेगा कि हँसते-हँसते पेट दुखने लगे। यह कहता है—'नन्दिरा

दीदी रूठती है तो उसका मुख लम्बा हो जाता है। अपना मुख खूब लम्बा करके दिखलाता है।

'मन्दिरा जीजी रूठे तो इसका मुख गोल हो जायगा।' दोनों कपोल फुलाकर दिखलावेगा।

'चल, मैं कभी तुझसे रूठी हूँ ?' मैं इसे ठेलकर पूछ लेती हूँ—'तूने मुझे कब रूठे देखा है।'

'तू रूठती नहीं, इसीलिए तो अच्छी है।' मुझे कहता है—'तू रूठना नहीं। वैसे ही तेरा मुख गोल है। रूठेगी तो तेरा मुख कन्दुक बन जायगा।'

'मैं काहेको रूठूँगी।' इस अपने छोटे भैयासे तो रूठनेकी बात भी नहीं सोची जा सकती। वैसे भी मुझे रूठना नहीं आता। मैया डाँटे भी तो मुझे तो हँसी ही आती है।

'मन्दिरा जीजी तो खिले पाटल जैसी है।' मेरा भैया कहता है—'ऐसा पाटल जिसमें बैठा भ्रमर गुनगुनाया ही करता है।'

सचमुच मुझे धीरे-धीरे गाते रहनेका स्वभाव पड़ गया है। अनेक बार तो मुझे ही नहीं पता लगता कि मैं कब गुनगुनाने लगी।

'जीजी, क्या गा रही है ?' अनेक बार तोक पूछता है। अनेक बार श्याम भैया भी पूछ लेता है।

'मैं अपने श्याम भैयाके गीत गाती हूँ।' हमारे व्रजमें तो कोई दूसरा गीत गाती ही नही। सब तो इसीकी बात गाती हैं। मैयासे, चाचीसे, ताईसे सुनकर ही तो मैं गीत सीख सकती हूँ। सब तो इसीके गीत मुझे सुनाती हैं।

मुझे लज्जा आती है जब कोई भैया मुझे गानेको कहता है। हम लड़कियाँ तो परस्पर मिलकर गाती हैं। अकेले कोई खुलकर गाया जा सकता है।

खुलकर गाता है यह मेरा श्याम भैया। यह तो नाचता भी ऐसा है कि दूसरा कोई क्या नाचेगा और जब यह वंशी बजाने लगता है, किसीको भी अपनी सुधि नहीं रहती।

यह गुण निधान मेरा भैया, मेरा अत्यन्त प्यारा भैया। मुझे तो यही यही स्मरण आता रहता है।

नन्दी बहिन—

अपनोंका पक्षपात मेरे श्याम भैयाका जन्म-जात स्वभाव है। वैसे यह स्वभाव तो मेरे सभी भाइयोंका है; किन्तु श्याम तो सुनना ही नहीं चाहता कि उसके किसी अपनेसे कभी कोई भूल भी होती है। वह नन्हा था तब उसे चिढ़ानेको गोपियाँ कहती थीं—'तेरी नन्दी जीजी अच्छी नहीं है। यह तो गोबर लगाये रहती है।'

गोबर तो मेरे शरीर और कपड़ोंमें लगा ही रहता था। मेरे नन्हें भैयाको गोबरमें खेलनेका व्यसन था। वह सखाओंके साथ गोष्ठमें पहुँचा ही रहता था। मैं उसे गोदमें उठाऊँगी तो मेरे वस्त्रमें, शरीरमें गोबर नहीं लगेगा।

'तू बुरी है।' श्याम सुनते ही बिगड़ पड़ता था—'गोबर तो अच्छा होता है। जीजी अच्छी है।'

दूसरा कुछ न बन सके तो कहनेवालीपर एक मुट्ठी धूलि ही फेंकता था। नहीं तो उसके कपड़े, केश, नाक—जो हाथमें आवे, वही नोचना चाहता था।

'नन्दी तो दुबली है।' यह कहकर कोई तनिक मुख बनाकर तो देखले। वैसे मैं दुबली तो हूँ। मेरा शरीर ही ऐसा है कि कभी मोटा नहीं होगा। मेरा बाबा मैं छोटी थी तबसे मुझे सींक जैसी कहता है।

'दुबला तो मैं भी हूँ।' श्याम सुनते ही पहले इधर-उधर देखता था और मैं कहीं पास दीख गयी तो मेरे समीप आकर खड़ा हो जाता था। फिर जिसने कहा तो उसे अपनी नन्ही मुट्ठी दिखलाता था—'तू मोटी है—भैंस जितनी मोटी।' साथ-साथ मुट्ठी दिखाकर धमकाता भी जाता था।

'भैंसके पास जा। भैंस तुझे काटेगी।' मेरा भोला भैया, इसको लगता था कि यह कोई बहुत भारी भरकम गाली दे रहा है।

यह नन्हा था, घुटनों चलता था तब भी आकर मेरी पीठसे चिपक जाता था। मुझे पकड़कर खड़ा होता था और मुझे पकड़े-पकड़े ही पीछे जाता था मेरे। मेरी पीठसे चिपकनेमें पता नहीं इसे क्या आनन्द आता था। मेरे कन्धेपर अपना नन्हा सिर रखकर इधर-उधर झांकता था। पीछेसे मेरे गलेमें नन्हीं भुजाएँ डाल लेता था।

इसको पीठपर लेकर मैं नाचती, इसे घुमाती रही हूँ। रानी माँ, मैया और दूसरी भी टोकती थीं—'इसकी भुजाएँ बहुत सुकुमार हैं। तू ऐसे उठाती है, इसकी बाहुमें पीड़ा होगी।'

मुझे भी लगता तो था कि इसकी भुजाएँ बहुत कोमल हैं; किन्तु करूँ क्या, यह पीठसे जब चिपककर, कण्ठमें भुजाएँ डालकर कहता था 'जीजी उठ' तब मुझसे रहा नहीं जाता था। मैं इसे लिये लिये उठकर नाचती, गोल-गोल घूमती थी। बहुत झुकी रहती थी कि इसकी भुजाओंपर भार न पड़े।

यह तो पैर-पैर चलने लगा तब मेरे कर पकड़कर उठा देता। मेरे दोनों हाथ पकड़कर गोल-गोल घूमता रहता था।

अब तो यह वनमें जाने लगा है। वहाँसे पुष्प गुच्छ, गुंजा और जाने क्या-क्या समेट लाता है; किन्तु नन्हा था तब भी मयूरके अथवा हंसोंके समीप जाकर जब अपने लाल कोमल कर फैलाकर कहता था 'दे' तब मयूर अवश्य अपने एक दो पंख गिरा देता था। हंस भी गर्दन मोड़कर पंख खुजलाने लगते थे और तब गिरे पंख लेकर सीधे मेरे या किसी सखाके केशमें सजानेको दौड़ पड़ता था।

रानी माँने, बड़ी जीजीने, मैंने भी इसे कई-कई बार मना किया—'ऐसे पक्षीसे उसके पिच्छ नहीं माँगते।'

यह इतना भोला है कि यही बात इसकी समझमें नहीं आती थी कि जब यह भैयासे, माँसे या अपनी किसी जीजीसे माखन, रोटी या कोई खिलौना माँग सकता है तो पक्षीसे पिच्छ क्यों नहीं माँग सकता।

यह तो गायोंमें किसीके पास जाकर नन्हीं हथेली फैलाकर कह देता था—'दूध !'

इसके कहनेपर मैंने देखा है कि गायें हुमक उठती हैं। वे पैर फैला देती हैं। उनके थनोंसे दूध झरने लगता है।

मैं कितनी बार हँसी हूँ यह देखकर—'तू हाथपर दूध लेगा ?'

यह तो अब भी ऐसा है कि प्यास लगनेपर पानी माँगनेको भी हथेली फैलाता है। जैसे पानी भी हथेलीपर लेनेकी वस्तु हो।

'मैं इसके साथ वन तो नहीं जा सकती; किन्तु मेरे दूसरे भैया कहते हैं—'कन्हाई तो वृक्षके नीचे भी अपने कर फैलाता है तो वृक्षसे पका फल टपक पड़ता है।'

मैंने यह सुना तो मेरा जी धक्से हो गया। मैंने अपने इस नन्हें भाईको गोदसे सटा लिया। इसके अङ्ग इतने सुकुमार हैं। कोई फल इसके ऊपर गिर पड़े तो ?

मैंने इसे समझाया—'वृक्षके नीचे खड़े होकर उससे फल मत माँगा कर।'

'क्यों ?' यह तो मेरे मुखकी ही ओर देखने लगा।

'इसलिए कि फल तेरे ऊपर गिरे तो चोट नहीं लगेगी तुझे ?'

'चोट ?' यह तो अपने अङ्ग ऐसे देखता है जैसे चोट कोई चिपकने वाली वस्तु होगी और कहीं इसके चिपकी होगी।

'तू ऐसे क्या देखता है ?' हँसी आती है मुझे—'चोट तो ऐसे लगती है, जैसे तू कन्दुक फेंककर किसीको मारे तो लगेगी।'

'जीजी तो कुछ नहीं जानती।' यह उलटे ताली बजाकर हँसने लगा। अपने सखाओंकी ओर ऐसे देखने लगा जैसे मैंने कोई बहुत बुद्धिहीनताकी बात कही हो।

'मुझे कोई नहीं मारता।' मेरे समीप सटकर खड़ा होकर मुझे ही आश्वासन देने लगा—'वृक्ष तो बहुत सीधे होते हैं। चुपचाप खड़े रहते हैं। मुझे तो कपि या मृग भी नहीं मारते।'

जैसे मैं यह भी नहीं जानती कि वृक्ष चुपचाप खड़े रहते हैं। मैंने झल्लाकर कहा—'वृक्ष तो नहीं मारते। वे किसीको भी नहीं मारते; किन्तु फल जब उनका गिरेगा, शरीरपर वेगसे ही तो गिरेगा ?'

'शरीरपर क्यों गिरेगा ?' अब इसके इस भोलेपनका भी कोई उत्तर है ? यह कहता है—'फल तो घासपर गिरता है। पटुका फैलाऊँ तो उसमें गिरता है।'

वनके देवता तो होते हैं। मैया कहती है कि वृक्षोंमें भी देवता होते हैं। देवता होते हैं तभी तो अश्वत्थकी, बटकी, आँवलेकी पूजाकी जाती है। वे देवता मेरे श्याम भैयासे स्नेह करते होंगे। यह तो है ही स्नेह करनेके लिए। इससे सब पशु-पक्षी स्नेह करते हैं तो वृक्ष भी इससे स्नेह करते होंगे। वन देवता इसपर ऐसे ही स्नेह किया करें, इसपर ऐसे ही प्रसन्न रहें। मैं उनकी पूजा करूँगी। मेरे श्याम भैयाको कभी कोई कष्ट नहीं होना चाहिये।

श्याम जितना स्नेह करता है दूसरोंसे, कोई भी उतना स्नेह कैसे कर सकता है। मैं ही देखती हूँ कि मैं इसे उतना स्नेह नहीं दे पाती हूँ। यह तो अपनी भूख-प्यास भी भूलकर बहिनकी ही चिन्ता करता रहता है।

मुझे वह दिन कभी नहीं भूलेगा। यह तब छोटा ही था। हम सब गोकुलसे वृन्दावन नहीं आये थे। तब गोपियाँ भी व्रजेश्वरी मैयाको प्रतिदिन ही उलाहना देने आती थीं कि नीलमणि उनके घरोंमें सखाओंको लेकर चोरीसे घुस जाता है और भाण्ड फोड़कर माखन, दधि खा आता है। मेरी बात कोई नहीं सुनती थी। मेरी मैयाने ही नहीं माना तो दूसरी कैसे मानेंगी। लेकिन मैं जानती हूँ कि मेरा यह नन्हा भैया अपनी बहिनोंकी भूल अपने सिर ले लेनेके लिए घर-घर घूमता है और दिन-दिन सबके उपालम्भ सुनता है।

मैं उस दिन नींदमें-से ही उठी थी। मैयाने जगाया था। उसने कहा था कि छीकेसे उतारकर मथनेके बड़े मटकेमें दहीमें डाल दे। मैं छीकेसे दही उतारने लगी तो मेरे हाथसे वह भरी दहीकी बड़ी दहेंड़ी छूट गयी। भड़ाम् हुआ और चारों ओर दही फैल गया।

'क्या हुआ ?' मैया मुख धो रही थी। वह दौड़ी आयी। मैं ठिठकी खड़ी रह गयी। मैंने तो देखा ही नहीं कि कब मेरा श्याम भैया अपने कई सखाओंको लिये वहाँ घुस आया है और सब उस भूमिपर बिखरे दहीमें ही जमकर बैठ गये हैं।

'मैं दही खाता हूँ।' मैयासे मैं कुछ बोलूँ, इससे पहले तो ये सब उठ खड़े हुए और मैयाके पाससे ही भागते-भागते एक और भाण्ड पटक गये। इस चपलने मैयाके मुखपर भी दही फेंक दिया और मेरे मुखपर भी। जाते-जाते कहता गया—'तू लड़ेगी तो मैं तेरे सब भाण्ड फोड़ दूँगा।'

दहीसे उज्ज्वल इसके कर, पद, दही सने अधर—मैं तो देखती ही रह गयी। मैया भी देखती रह गयी इन सबोंकी ओर।

'मेरे हाथसे दहेंड़ी छूट गिरी थी।' मैंने डरते-डरते मैयासे कहा।

'तू अपने भैयाको बचाने चली है।' मैया खुलकर हँस पड़ी। उसने कहा—'तू क्या समझती है कि मैं भी औरोंकी भाँति अपने इस लालका उलाहना देने देवरानीके पास जाऊँगी ? यह तनिक चपल तो है; किन्तु आज दही खाने आया भी तो वैसे ही भाग गया है। तू झटपट जा, अभी यहीं पासमें होगा। उसे बुला ला। कहदे कि मैं उसे न मारूँगी, न डाँटूँगी। मैं दधि-मन्थन करने जा रही हूँ। वह सद्य नवनीत जीभर सखाओंके साथ खाकर जाय।'

'मैया, सचमुच दहेंड़ी मेरे हाथसे........।'

'अब तू यह सब रहने दे और उसे बुला दौड़कर।' मेरी बात मैयाने न उस समय सुनी और न पीछे सुनी। मैं रो भी नहीं सकी और श्याम भैया उस समय मुझे कहाँ मिलना था। वह पता नहीं किधर भाग गया। मैं नन्द-भवनतक हो आयी; किन्तु मुझे तो मिला नहीं उस समय।

'तू भाग क्यों आया ?' मैंने पीछे जब मिला तब पूछा—'मैया तो तुझे बुला रही थी। वह तो तुझे सद्य नवनीत खिलाना चाहती थी।'

'जभी तो हम सब भाग आये।' यह जब नटखट बनता है, तब भरपूर बनता है। मुँह बनाकर बोला—'तेरे घरका दही तो बहुत खट्टा था।

नवनीत ही कौनसा मीठा निकलता। हम सबोंने तनिक-सा दही मुखमें डाला तो मुँह खट्टा हो गया। भागकर कहींसे तो मीठा दही खाना था।'

'दहेंड़ी तो मेरे हाथसे गिरी थी।' मैंने इससे पूछा—'तू झूठ क्यों बोला ?'

'मैं कहाँ झूठ बोला ?' यह उलटे मुझे ही डाँटने लगा—'मैंने कब कहा था कि मेरे हाथसे गिरी है। मैंने तो कहा था कि मैं दही खाता हूँ। तू अब ताई माँकी दहेंड़ी फोड़ने लगी है ?'

मैं अब क्या कहती इससे। इसने भले न कहा हो कि दहेंड़ी इसने पटकी है; किन्तु मेरी मैयाने तो यही समझा था और मैंने पीछे भी जब बोलना चाहा तो हँसकर मुझे ही चुपकर दिया। कहने लगी—'मैं तुम भाई बहिनकी बात समझती हूँ।'

मुझे लगता है कि दूसरे घरोंमें भी यह ऐसे ही अपनी बहिनोंको बचाने पहुँच जाता है। गोपियाँ भ्रमसे ही समझती हैं कि यह दही, माखन चुराने या भाण्ड फोड़ने किसीके घर जाता है। मेरे भैयाके घर दही-माखनका अभाव कहाँ है। व्रजेश्वरी मैया तो हम सब बालिकाओंको—बालकोंको हठ करके खिलाती रहती है।

मैंने तो एक दिनकी बात कही है। यह श्याम भैया तो पता नहीं कितनी बार मेरे दोषको अपना कहकर मुझे डाँटे जानेसे बचाता ही रहता है। मेरा कोई बछड़ा मेरी असावधानीसे गोष्ठसे निकल भागे या गोबर कहीं फैल जाय, ऐसा कुछ हो जाय कि इसे लगे कि नन्दी बहिनपर डाँट पड़ेगी तो वहीं अड़कर खड़ा हो जायगा और बिना पूछे ही कहने लगेगा—'मैंने बछड़ा भगा दिया। वह दौड़ता अच्छा लगता है।' अथवा—'यह गोबर तो मेरे पैरके नीचे पड़ा। मैं तो फिसल ही पड़नेवाला था।'

'तू चुपचाप भागजा।' मैंने कई बार चाहा कि यह टल जाय—'तूने तो कुछ बिगाड़ा नहीं है। मुझे मैया मारेगी नहीं। थोड़ा खीझ भी लेगी तो क्या हो गया।'

'क्यों भाग जाऊँ ? मुझे कोई डर लगता है।' यह तो उलटे और

और हठ करके अड़ जाता है—'तू बहुत साहसी बनती है तो भल्लूकसे लड़। मैं कोई लड़की हूँ कि डरूँगा!'

मेरी छोटी-बड़ी भूलोंको भी यह अपनी बताकर मेरी रक्षा करता आया है। मुझे कुछ चाहिये या नहीं चाहिये, यह देखे बिना भी देता ही देता आया है। मैं झूठे भी कह दूँ कि अमुकने मुझ डाँटा या चिढ़ाया तो यह लकुट ही उठाकर दौड़नेको उद्यत हो जाता है।

मैं अपने इस भैयाके स्नेहके कितने वर्णन करूँ। यह तो स्नेहमय ही है।

नन्दा बहिन-

अपने व्रजके आचार्य महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं कि—'मनुष्यको अपने ही किये पूर्वजन्मके पुण्योंसे सब सुख सौभाग्य प्राप्त होते हैं।'

तब अवश्य मैंने पूर्व जन्ममें बहुत पुण्य किये होंगे, जिससे मुझे इतना सुख मिला। इतने सारे भाई मिले मुझे और यह भी सौभाग्य मिला कि मेरे अनेक बड़े भाई हैं तो अनेक मुझसे छोटे हैं। श्यामसुन्दर जैसा मेरा छोटा भाई और राम, विशाल, अर्जुन, ऋषभ, भद्र जैसे मेरे बड़े भाई हैं।

वैसे मैं नहीं जानती कि पुण्य होता क्या है। मैंने भगवती पूर्णमासीसे पूछा भी था तो वे बोलीं—'बड़ी हो जा तो अपने आप समझ लेगी।'

श्याम तो नटखट है। उससे कुछ पूछो तो बहुत अटपटा उत्तर देता है। उससे मैंने पूछा था—'पुण्य क्या होता है?'

कहने लगा—'तू पुण्यको नहीं जानती? तेरा ही तो बड़ा वृषभ है?'

मेरे बाबाके बड़े वृषभका नाम पुण्य है तो क्या पुण्य वृषभ होता होगा। ऐसे तो श्यामके बड़े वृषभका नाम धर्म है।

मैंने बल भैयासे पूछा था। बल तनिक भी नटखट नहीं है। वह तो सब बात सीधे-सीधे कहता है; किन्तु उसे भी पता नहीं क्या हो गया। वह तो कहने लगा—'नन्दा बहिन, तू स्वयं पुण्य है।'

कोई गोपकन्या पुण्य होती होगी। लगता है कि ये मेरे भैया भी मेरी ही भाँति नहीं जानते कि पुण्य क्या होता है। भद्र तो कहता है—'छोटी-सी उजली चिड़िया है।'

भद्र तो मुझे चिढ़ा देता है; किन्तु भद्रने ही तो मुझे बतलाया कि गोपियाँ झूठ-मूठ कहती हैं कि बल मेरा भैया नहीं है। वह राजकुमार तो

है; किन्तु मेरा भैया है। मैं तो उदास हो गयी थी यह सुनकर कि बल हमारा भैया नहीं है। ये बड़े गोप तो कुछ जानते समझते ही नहीं। मनमें आवे सो कहने लगते हैं। मेरे सबसे सीधे स्नेहमय भाईको ही कहते हैं कि वह मेरा भाई नहीं है।

भद्र चिढ़ाता तो है; किन्तु मैं उदास हो जाऊँ यह उससे सहा नहीं जाता। उसने मुझे उदास देखा तो दौड़ा मेरे पास आया। उसीने मुझसे पूछा—'नन्दा बहिन, तू आज उदास क्यों है ? तुझे क्या हो गया ? तेरा कोई मयूर भाग गया है कि मैयाने तुझे डाँटा है ?'

'ताऊजी कहते हैं कि बल गोप नहीं है। वह राजकुमार है।' मैं तो सिसकने ही लगी थी।

'तब क्या हो गया ?' भद्रने मेरी पीठ सहलाई—'हमारा दादा राजकुमार है, यह तो बहुत अच्छी बात है।'

'राजकुमार है तो गोप कन्याका भाई रहेगा ?' मुझे यही तो डर लगता था।

भद्र हँसते-हँसते लोट-पोट होने लगा। मुझे चिढ़ाने ही लगा। कहने लगा—'लड़कियोंकी बुद्धि उनकी चोटी बनकर बाहर लटकती रहती है। उनके सिरमें तो रहती ही नहीं। तू झटपट अपनी चोटी बाँध। तूने अपने केश खुले छोड़ दिये आज तो तेरी बुद्धि वायुमें उड़ रही है।'

मैं उससे झगड़नेवाली थी। लेकिन हँसते-हँसते बोला—'तूने दाऊ दादासे पूछा है ? अब कलको रानी माँको भी कहेगी कि वे मेरी माँ नहीं हैं।'

मैं उसी समय रानी माँके पास दौड़ गयी। मैंने तो माँसे भद्रकी बात भी कह दी—'यह मुझे चिढ़ाता है।'

रानी माँ किसीको भी डाँटती नहीं हैं। वे कहने लगीं—'तेरा बड़ा भाई है। सगे भाई बहिन एक दूसरेसे प्यारसे ही झगड़ते हैं। वह तुझसे स्नेह भी तो करता है।'

'माँ, बल मेरा बड़ा भैया है ?' मैंने डरते-डरते ही पूछा था। डर लगता था कि कहीं माँ ना न कह दें।

'सो तो है ही।' उन्होंने उलटे ही पूछ लिया--'तू यह क्यों पूछती है ? इसमें तुझे सन्देह क्यों हो गया ?'

'वह राजकुमार है।' पता नहीं मेरे यह कहनेपर क्यों रानी माँ बहुत गम्भीर हो गयीं। उनके नेत्र भर आये। उन्होंने मुझे गोदमें उठाकर प्यार किया।

'राजकुमार भी होगा तो क्या बदल जायगा ?' रानी माँ कहने लगीं—'तुम सब मुझे रानी माँ कहती हो तो मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ ? बल तेरा बड़ा भाई है और श्याम छोटा। बल तेरे छोटे भैया श्यामका बड़ा भाई नहीं रहेगा तो कुछ भी नहीं रहेगा तू नहीं देखती कि वह श्यामके बिना रह नहीं सकता। अब तुझे कोई कहे कि तू श्याम या भद्रकी बहिन मत रह।'

'मैं उसकी नाक नोंच लूँगी।' मुझे तो यह सुनकर ही क्रोध आया कि कोई मुझसे ऐसी बात भी कहनेका कभी साहस कर सकता है।

'तू तो पगली है। तभी तो भद्र तुझे चिढ़ाता है।' रानी माँने बडे प्यारसे बतलाया—'भाई-बहिन किसीके चाहनेसे नहीं बनते बिगड़ते। उन्हें तो विधाता भाई-बहिन बना देता है। चाह कर भी कोई बहिन न किसी भाईको अस्वीकार कर सकती और न भाई-बहिनको। जैसे भद्र तुझे चाहे जितना चिढ़ावे, वह तेरा भाई तो रहेगा ही। ऐसे ही बल और श्याम भी तेरे भाई ही रहेंगे। तू इनकी बहिन ही रहेगी। तू इनके भालपर टीका करेगी ही।'

'मैं इनको टीका करूँगी।' मुझे बहुत आनन्द आया—'मैंने उल्लास-पूर्वक पूछा—'आज इनमें किसकी वर्षगाँठ है ? आज भैयादूज तो नहीं है ?'

भैया दूजको मैं अपने सब भाइयोंको तिलक लगाती हूँ। चटक लाल कुंकुमका तिलक। कितना आनन्द आता है मुझे किसी भाईके ललाटपर अपनी अनामिका अंगुलीसे तिलक लगाते।

बल भैया या श्यामके विशाल भालपर तिलक लगानेसे अधिक प्रिय तो मुझे दूसरा कोई कार्य नहीं जान पड़ता। भद्र या तोकको भी तिलक करनेमें बहुत आनन्द आता है; किन्तु भद्र सदा तिलक करनेसे पहले टोकता है—'तू कुंकुम गिराकर मेरी नासिकाको लाल मत करना।'

मैं भी उसकी नासिकापर कुछ अधिक ही कुंकुम जान-बूझकर गिरा देती हूँ। वह मेरी ओढ़नीसे अपनी नासिका पोंछे बिना तो मानता नहीं। मैं कुंकुम न भी गिराऊँ तो भी नासिका पोंछेगा और मेरी ओढ़नीसे ही पोंछेगा।

बल दादाकी नासिकापर कुंकुम न गिरे, यह उसे तिलक करते बहुत सावधानी रखती हूँ। गिरता भी है तो कहीं-कहीं कुछ कण गिरते हैं और दाऊ दादा तो अपनी नासिका पोंछता नहीं। नासिका श्याम भी नहीं पोंछता। उसकी नन्हीं पतली सुकुमार नासिकापर कुंकुमके लाल कण कितने भले लगते हैं, देखे विना कोई कैसे भी समझ नहीं सकता। उसे तिलक करते समय भी मैं जान-बूझकर उसकी नासिकापर कुंकुमके कुछ कण अवश्य गिरा देती हूँ।

श्याम चपल है। मैं उसे तिलक करते समय कितनी भी सावधान रहूँ, वह मेरी नासिकाकी नोकपर अवश्य कुंकुम लगा देता है। पता नहीं कैसे मेरे ही कुंकुममें कोई अंगुली पहुँचाता है।

श्यामके विशाल भालपर तिलक करते समय मैं भी कहाँ सावधान रह पाती हूँ। उसका अलकोंसे घिरा भाल इतना भव्य है कि उसपर नेत्र जाते हैं तो सब सावधानी भूल जाती है।

बहुत नन्हा था श्याम और तब घुटनों ही सरकता था। मैं भी तो छोटी ही थी। पैरों चलना मैंने सीखा ही था। व्रजेश्वरी मैया ही मुझे गोदमें लेकर श्यामके समीप ले गयीं। उन्होंने ही मेरी अनामिकामें तनिक-सा कुंकुम लगाकर कहा—'लाली, यह तेरा छोटा भैया है। आज इसकी वर्षगाँठ है। तू इसके टीका लगा दे।'

मुझे तब कहाँ टीका लगाना आता था। मैयाने ही मेरी अंगुली पकड़कर श्यामके भालसे सटाई थी। मैंने अंगुली खींचकर टीका तनिक

लम्बा कर दिया था। तब भी इस नटखटने मेरी नासिका पकड़ ली थी। मुझे पता ही नहीं लगा कि इसने कब कुंकुममें अपने कर डाल लिये थे। इसने तो मेरी पूरी नासिका लाल कर दी थी। मैयाने अपने ही अंचलसे मेरी नासिका पोंछी थी।

श्यामके भालपर वह कुंकुमकी रेखा मुझे तब भी इतनी मनोहर लगी थी कि मैं उसे देख-देखकर ताली बजाती नाचती रही थी। इसके भालपर लगी कुंकुमकी रेखा मुझे अब भी इतनी सुहावनी लगती है कि अब भी मैं इसे तिलक करके नाचने लगती हूँ।

इसे तिलक करूँ, किसी भी भैयाको करूँ तो मुझे ढेरों उपहार मिलते हैं। उपहार तो मुझे बिना तिलक किये भी मिलते रहते हैं। मैं नन्ही थी तबसे अपने उपहार बाँटती ही रहती हूँ। मेरे इतने भैया हैं। सबको मुझे कुछ-न-कुछ देते ही रहना है। श्यामको तो जैसे प्रतिदिन कुछ देना है; किन्तु कोई मुझसे पूछे तो मेरा सबसे बड़ा उपहार है श्यामके भालपर तिलक लगाकर इसके भालकी छटाको देखना—जी भर देखना।

मुझे लगता है कि इसे तिलक करनेका अवसर ही बहुत कम आता है। वर्षमें दो-तीन बार भैयादूज क्यों नहीं पड़ा करती ? महर्षि शाण्डिल्य ही क्यों चार पाँच बार इसकी वर्षगाँठ मनानेकी व्यवस्था नहीं कर देते ? लेकिन हम लड़कियोंकी बात तो कोई सुनता नहीं। भद्रसे ही कह सकती हूँ और कहनेपर वह चिढ़ाता है। वह तो कहता है—'तू बहुत लालची हो गयी है। अब मेरी वर्षगाँठ आने दे, मैं उपहारमें गोष्ठका सब गोबर तुझ दे दूँगा।'

'तेरा उपहार तू अपने ही सिरपर रखना।'

'नहीं, बहिनको दिया जाता है।' भद्र तो हँसता ही रहता है—'उसे दी वस्तु ली नहीं जा सकती।'

'गोष्ठ और गोबर जैसे तेरे ही बापका है।' मैं भी झल्ला गयी—'मेरे बापका उसमें कुछ है ही नहीं।'

'वह गोष्ठ तो तेरा और तोकका है।' भद्र यह बात कई बार

कह चुका है—'व्रजेश्वर बाबाका गोष्ठ मेरा है, कन्हाईका है और दाऊ दादाका है।'

यह भद्र मुझे चिढ़ा चाहे जितना ले; किन्तु जब उपहार देनेका समय आता है तो दो दिन पहिलेसे इसे अपना भोजन भी भूल जाता है। कोई मणि रत्न इसे जँचता ही नहीं। यह देते समय भी सिर झुका लेता है—'नन्दा बहिन, इस बार बस यही स्वीकार कर ले।'

श्याम भैया तो इससे भी विचित्र है। मैं उससे कहती हूँ—'तू छोटा है, तुझे तो लेना चाहिये।'

'मैं अब छोटा कहाँ हूँ। इतना तो बड़ा हो गया।' यह मानता ही नहीं कि मुझसे या भद्रसे छोटा है। छोटा कहो तो सामने आ खड़ा होगा—'आ मापले।'

इसे कुछ-न-कुछ प्रतिदिन देना है। इसके लिए पुष्प, गुंजा, पंख, मणि, रत्न सब समान हैं। जो वस्तु इसे अच्छी लग जाय, बस वही बहिनके लिए इसे उपयुक्त लगती है। पता नहीं कितनी बार अपने कण्ठकी मणि अथवा मुक्ताकी माला इसने मुझे पहिना दी है। मेरा मना करना तो इनमें कोई नहीं सुनता। श्याम तो अपनी धुनके आगे किसीकी भी नहीं सुनता और इसे देने-देनेकी ही धुन चढ़ी रहती है। लेनेके नामपर तो मणिको भी कह देगा—'तू ही अपने गलेमें पत्थर लटकाये रह !'

मुझे उपहार नहीं चाहिये—यह मैं कहाँ कहती हूँ। यह श्याम मुझे एक गुंजा भी देता है तो वह मुझे बहुत प्यारी लगती है। इसके हाथसे मिला पुष्प, किसलय भी मुझे तो बहुत मूल्यवान लगते हैं; किन्तु मेरा सबसे बड़ा उपहार है कि मैं इसके भालपर कुंकुम तिलक लगाकर उसकी छटा देखूँ।

यह पैरों चलने लगा तबसे मैयाके कहनेपर वर्षगाँठके दिन आकर मेरे सम्मुख बैठ जाता है—'तिलक लगा !'

मैं जानती हूँ कि यह मेरी नासिकाका अग्रभाग त
देगा; किन्तु कब मेरे लिए कौन-सा आभूषण लाया है, यह

लगने देता। अपने हाथसे ही पहिनावेगा और फिर स्वयं देखकर प्रसन्न होगा।

भद्रके समान श्यामको भी सन्तोष नहीं होता कि उसका दिया आभूषण उत्तम है। यह तो कई बार मैयासे जाकर मचलता है—'दूसरा अच्छा कुण्डल दे। नन्दा बहिनको यह तो बहुत भला नहीं लगता।'

'बहुत अच्छा है' मैं कितना भी कहूँ, दो-चार छै यह लावेगा और लावेगा सो लौटाना तो इसे है नहीं। मैयाको भी देनेमें ही आनन्द आता है।

यह मेरे भैया तो चाहते हैं कि मैं सदा सजी-धजी रहूँ और कुछ करना ही न पड़े मुझे। मैं घरमें कुछ करने लगूँ तो श्याम मेरी मैयासे— अपनी चाचीसे ही झगड़ने आ जाता है।

अजया बहिन–

अजया मेरा नाम तो मेरे कन्हाई भैयाने ही रखा और उसने मुझे इस नामसे बुलाना प्रारम्भ किया तो मेरा यही नाम प्रचलित हो गया। नाम तो मेरा पिताने रखा था श्याम देवी। यह नाम मुझे अच्छा नहीं लगता था। देवी-देवता बननेकी बात मुझे प्रिय नहीं है। सब श्याम कहते थे; किन्तु श्याम तो मेरा भैया है।

मैं नन्ही थी तभी मैंने भैंयासे कहा—'तू मेरा नाम दूसरा करदे।'

'क्यों ?' भैया भी मुझे श्याम या श्यामा कहता था।

'नहीं, श्याम तो तू है। मुझे श्यामा नहीं बनना और देवी भी नहीं बनना।' मेरी सहेलीने कहा था कि श्यामा कहते हैं काली चिड़ियाको। मैं कोई काली हूँ। चिड़िया भी नहीं और देवी भी नहीं।

'तू तो सबके नये-नये नाम रखता है।' मैंने भैयासे कहा—'मेरा भी नया नाम रख; किन्तु कोई बुरा-सा नाम रखेगा तो तुझसे लड़ूँगी। तू मुझसे जीत जायगा ?'

'तुझसे कौन जीतेगा।' भैयाने कहा—'तू तो अजया है।' फिर ताली बजाकर प्रसन्न होकर बोला—'तेरा नाम अजया ही ठीक है।'

मेरा कन्हाई भैया मुझसे बड़ा है, पर मैं इसे भैया ही कहती हूँ। भैया तो मैं और सबको कहती हूँ। दादा तो केवल दाऊ है। सब तो उसीको दादा कहते हैं।

मेरे छोटे भैया भी कम नहीं हैं। अंशु, देवप्रस्थ, तोक तो मुझसे छोटे ही हैं; किन्तु मेरे बड़े भैया बहुत हैं। सब मुझसे स्नेह करते हैं। लेकिन कन्हैया भैया तो बहुत-बहुत स्नेह करता है। वह कभी मेरी बात नहीं टालता।

मेरे इस भैयाको सबका नाम रखना बहुत आता है। यह तो किसीको गिल्ली या मोटल्ली कह देता है। लेकिन इसे अपना रखा नाम ही स्मरण नहीं रहता। आज जिसको गिल्ली कहेगा, कल उसको पता नहीं सिल्ली कहेगा या खुड़की, मुड़की कुछ कहेगा। मेरा ही नाम इसने रखा और उसे भूला नहीं। मेरा नाम फिर नहीं बदला इसने। इसीसे तो सब मुझे अजया कहने लगे।

यह श्याम भैया तो कपि, शशक, बछड़ोंके भी नाम रख देता है और उनके नाम बदलता रहता है। यह भूलता बहुत है। किसका क्या नाम रखा, यह इसे कभी स्मरण नहीं रहता।

मेरी समझमें नहीं आता कि यह चाहे जिस नामसे किसी कपि, मयूर या बछड़ेको, मृगको बुला लेता है और वह उसी नामसे इसके पास दौड़ आता है। उसे कैसे पता लगता है कि उसका यही नाम है? वह नाम तो इसने उसी समय रखा है।

एक बात और है, नाम तो यह बराबर भूलता रहता है; किन्तु मैं इसे वनसे कोई फल, कोई पुष्प या और कुछ लानेको कहूँ तो उसे कभी नहीं भूलता। मैं तो भूल जाती हूँ कि मैंने कुछ लानेको कहा था; किन्तु यह नहीं भूलता। यह उसे अवश्य ले आता है। मैं छोटी हूँ, इसीसे सम्भव है मैं भूल जाती हूँ।

मैं घुटनों सरकती थी तबसे तो कन्हाई भैया ही मुझे अपने साथ रखता रहा है। अब भी जब जन्म नक्षत्रादिके कारण इसे वनमें जानेको नहीं मिलता, यह मेरे साथ खेलने बैठ जाता है।

पता नहीं गोपियोंको क्या चिढ़ है कि मुझे बार-बार कहती हैं— 'लड़कियोंको लड़कियोंके साथ ही खेलना चाहिये।'

मैं तो इन सबोंकी बात नहीं सुनती। कन्हाई भैया तो अब भी मेरे साथ गुड़ियाको सजाने बैठता है। उसे बहुत अच्छी गुड़िया बनानी आती है। गुड़ियाका श्रृङ्गार करना तो इसीने मुझे सिखलाया है। मुझे तो अनेक खेल सिखलाये हैं इसने। माल्य ग्रंथन, अंगराग लेपन, अंगपर चित्रण आदि इसीसे मैंने सीखा है।

गोपियाँ कह तो देती हैं—'लड़कोंके साथ मत खेला कर।' लेकिन मेरा निहोरा भी करती हैं कि मेहदी लगाना या अंगराग-चित्रणकी विशेष रीति मैं उन्हें सिखा दूँ। मेरे भैया जैसा तो न कोई यह सब जानतीं और न इसके समान सरल ढङ्गसे सिखला-समझा पातीं।

मेरा भैया तो बिना पूछे भी मुझे नवीन-नवीन कला सिखलाता रहता है। दूसरी सब लड़कियाँ तो मुझसे सीखती हैं। अनेक भाभियाँ भी मुझसे सीखती हैं। नन्दिरा जीजी इसीसे तो मुझे चिढ़ाती है—'यह अजया सबसे छोटी है; किन्तु सबकी गुरुबाबा बन गयी है।'

गुरुबाबा मैं बन भी गयी हूँ तो मुझे मेरे भैयाने बनाया है।

मैया कहती है, सब जीजियाँ और भाभियाँ भी कहती हैं कि श्यामसुन्दर कुछ खाता ही नहीं है। केवल मुख जूठा करता है; किन्तु किसीको पता नहीं है कि इसे कितनी भूख लगती है। कोई ठिकाना नहीं कि कब भूख लगेगी।

इस कन्हाई भैयाकी भूख भी विचित्र है। यह चाहे जब दौड़ा आता है। कभी-कभी तो रात देरसे आता है और कभी बड़े सवेरे, मेरे स्नान करनेसे भी पहले आ जाता है। आते ही कहेगा—'अजया, मुझे बहुत भूख लगी है। झटपट उठ तू।'

भूख भी इसकी अद्‌भुत। कहेगा—'मुझे खीरकी भूख लगी है।' कभी हलवेकी भूख लगती है इसे, और कभी किसी और वस्तुकी। भूख भी क्या ऐसे विशेष-विशेष पदार्थोंकी लगती है? इसके उदरमें सब पदार्थोंकी पृथक्-पृथक् थैलियाँ हैं?

इसे खीरकी भूख लगे तो न हलवा ख़ायगा, न माखन, न मोदक और न रोटी। रोटीकी भूख भी इसकी कई प्रकारकी। कभी मोटी रोटीकी और कभी पतलीकी।

जिसकी इसे भूख लगे, तत्काल उसे बनाओ। थोड़ा भी विलम्ब इसे सह्य नहीं। फिर कुछ सुनता ही नहीं। हाथ खींचेगा, मचलेगा और उठाकर मानेगा।

यह बात तो है कि इसका उदर बहुत छोटा है। यह स्वयं भी तो दुबला-पतला ही है। भूख इसे चाहे जितनी तीव्र लगे, तनिक-सा खाकर ही कह देता है—'बस पेट भर गया।'

कई बार मैं झल्लाती हूँ कि इतना ही भोजन करना था मुझे क्यों तंग किया; किन्तु यह भूखा हो तो इसे टाला या अस्वीकार किया कैसे जा सकता है। यह जब अपने पतले लाल अधर सिकोड़कर कहता है—'बहुत भूखा हूँ।' तो प्राण छटपटा उठते हैं।

मेरे पास ही भूख लगनेपर दौड़ा आता है और प्रायः अकेला आता है। सबको एक साथ भूख लगा करे, यह नियम तो है नहीं। यह संकोची है। मैयासे या और किसीसे कह नहीं पाता कि इसे किस पदार्थकी भूख लगी है। अतः वहाँ मैया जो परस देती है, मुँह जूठा कर लेता है। फिर छोटी बहिनके पास भागता है।

भैयादूजको तो सभी भाइयोंको मैं खिलाती हूँ। सबके भालपर तिलक करती हूँ। मुझे मेरे सब भाई ढेरों उपहार देते हैं; किन्तु यह कन्हाई भैया तो सबसे ही पृथक् है। मैं चाहे दस दिन पहलेसे इसे कहती रहूँ कि भैया-दूजको शीघ्र आ जाय; किन्तु उस दिन सबसे पीछे आता है। इसे भी तो सब बहिनोंके समीप जाना होता है उस दिन।

'तू झटपट तिलक कर और खिला। मुझे बहुत भूख लगी है।' उस दिन भी यह यही कहता है।

'तू सब बहिनोंके यहाँ हो आया। तुझे सबने खिलाया ही होगा।' मुझे उस दिन इसकी भूखपर आश्चर्य होता है।

'तू तो बात करनेमें विलम्ब कर रही है।' यह खीझता है।

'किस पदार्थकी भूख लगी है?' मैं इससे न पूछूँ तो पता कैसे लगे कि यह कौन-सा पदार्थ खाना चाहता है।

'सब पदार्थोंकी।' भैयादूजको प्रायः यह गिनाने लगता है कि इसकी भूख क्या-क्या माँगती है।

'यह अन्नकूट तो मेरे वशका नहीं।' दूसरा क्या कहूँ। यह जब गिनाने लगता है तो पदार्थोंके नाम गिनाता ही चला जाता है। छप्पन भोग तो बहुत थोड़े होते हैं। अम्ल, तिक्त, कटु, कषाय, लवण और मधुर इन छै रसोंमें-से प्रत्येकके चारों प्रकार चर्व्य, लोष्य, लेह्य और पेय भी बनाये जायँ तो कुल दो सौ चौबीस पदार्थ ही होते हैं, यह मुझे एक दिन ऋषभ भैयाने बतलाया है, लेकिन कन्हाई तो नाम गिनाता ही जाता है। इसे अवकाश मिले तो पता नहीं छप्पन सहस्र नाम गिनावे या छप्पन कोटि।

'आजके दिन छोटी बहिनके यहाँ केवल मिष्ठान्न खानेकी विधि है।' मैं इसकी उस अनन्त सूचीको पूरी सुननेका धैर्य कभी नहीं पा सकती। मुझे बीचमें ही इसे रोकना पड़ता है।

'केवल मिष्ठान्न ?' यह मुख बना लेता है। फिर कहता है—'अच्छा, मैं तेरी विधि-भंग नहीं करूँगा। तू थोड़े-से मिष्ठान्न ही झटपट दे दे।' फिर मिष्ठान्नोंके ही नाम गिनाने प्रारम्भ कर देता है। मैंने इसकी मिष्ठान्न सूची भी कभी नहीं सुनी। क्या करूँगी सुनकर ? ऐसे-ऐसे नाम गिनावेगा जो गोपगृहोंमें कभी सुने ही नहीं गये।

'अब त मुख खोल।' मैं झटपट इसे तिलक करके इसके मुखमें अपने हाथसे कुछ दे दूँ, यही उपाय है इसकी सूचीको विरमित करनेका।

यह मेरा भैया इतना भोला, इतना भुलक्कड़ है कि इसे स्मरण ही नहीं रहता कि इसने क्या-क्या माँगा था और उसका कितना क्षुद्र अंश इसके सम्मुख इसकी छोटी बहिन ले आयी है।

'अजया, तू इतना स्वादिष्ट मिष्ठान्न बनाती है ?' यह तो दो चने जितना कोई पदार्थ मुखमें देते ही प्रशंसा करने लगता है। कभी-कभी उठकर नाचने लगता है। जैसे इसे बहुत आनन्द आया हो।

'अब तो पेट भर गया।' दो-चार पदार्थ तनिक-तनिक मुखमें लेगा और जल पीने लगेगा। एक बार मुख हटा लिया तो बस हटा लिया। कितना भी कहो, फिर कुछ नहीं लेगा मुखमें।

वैसे तो प्रतिदिन कुछ-न-कुछ देता ही रहता है; किन्तु भैयादूजको सबके समान कुछ लेकर आया हो, यह पता लगने नहीं देता। ऐसा दिखलावेगा जैसे उस दिन खाली हाथ ही आया था। पता नहीं कैसे, कब उस दिन पहले ही मेरे कक्षमें घुस जाता है और मैं वहाँ जाती हूँ तो पहले ही जा चुका होता है। कक्ष इसके उपहारोंसे ठसा मिलता है।

मेरा यह भैया तो मेरी चिन्ता, मेरे ममत्वसे ही जैसे बना है।

भ्रातृ वर्ग

दाऊ दादा–

व्रजराजकुमार श्रीकृष्ण मेरी आत्मा है। मेरा सर्वस्व है। इस कन्हाईसे और इसीके लिए मेरा जीवन, मेरी सत्ता है। इस लीलामयकी लीला चलती रहे, यही मेरा एकमात्र प्रयोजन है। मेरी सब चेष्टाओंका यही तात्पर्य है।

कृष्णको जानलेना और आकाशको समेटकर अपनी चादरमें बाँध लेना एक जैसी बात है। इस अनन्त, अनन्त गुणार्णवको भला जाना कैसे जा सकता है। यह मेरा अनुज है, अतः मैं इतना समझ लेता हूँ कि यह कब मुझसे क्या अपेक्षा करता है और इसके इङ्गितका अनुसरण ही तो सबकी परम सार्थकता है।

यह मेरा नन्हा सुकुमार, चपल छोटा भाई, मैं इसे देखा करूँ, यह मेरा परमानन्द! जीवमात्रकी कृतार्थता और परमानन्द इस कन्हाईका सान्निध्य, इसका दृष्टिपथमें रहना।

यह पालनेमें पड़ा किलकता रहे या वनमें गोचारण करता घूमे, इसका इङ्गित अनुलंघनीय है। इसकी चेष्टा परम ललित होकर भी अबूझ है।

मैं लगभग वर्ष भर गोकुलमें आकर भी इसकी प्रतीक्षा करता रहा। माँ बहुत चिन्ति थीं और चिन्तित तो थीं मैया व्रजेश्वरी। सबकी चिन्ता— 'यह बालक न रोता, न हँसता। यह बोलने, सरकने या हाथ उठानेकी चेष्टा भी नहीं करता। जहाँ धर दो, वहीं पड़ा रहेगा।'

माँ समझती थीं कि मैं गूँगा-बहिरा हूँ और सम्भवतः अत्यन्त जड़ हूँ। कृष्ण न हो समीप तो जड़ तो सम्पूर्ण सृष्टि है। कन्हाई ही तो चेतन है। इसीका सान्निध्य तो सबमें चेतनाका संचार करता है।

मैं कन्हाईकी प्रतीक्षा कर रहा था। यह न हो तो क्या देखा या सुना जाय। किसके लिए चेष्टाकी जाय। इसके अतिरिक्त जानने-समझने योग्य

भी कहीं कुछ है ? मैंने नेत्र बन्द नहीं रखे; किन्तु मैं देखता भी कुछ नहीं था। कन्हाई न हो तो कहीं कुछ दर्शनीय भी है, यही अज्ञान है। सब दर्शनीय हो जाता है जब उसमें श्याम क्रीड़ा करता हो।

मेरा भाई आया। इसे अनुज रहना है, अतः पीछे आया। मुझसे प्रतीक्षा कराके आया। इसकी प्रतीक्षा करनी ही चाहिये। कृष्णके आगमनकी प्रतीक्षा ही तो सम्पूर्ण साधनाओंका सारांश है।

यह नवनीरद श्याम नयनाभिराम परमानन्द धाम पूर्णकाम केवल ६ दिनका था। अनादि अनन्तकाल इसीमें कल्पित है, इसीका उन्मेषोन्मेष है, पर यह गोकुलमें—देशमें आया तो कालमें ही आ सकता था। तब यह केवल ६ दिनका था।

यह पालनेमें पड़ा कभी कर हिलाता था, कभी चरण। मैं इसका पालना पकड़े खड़ा था और इसके बहुत नन्हे मुखको देख रहा था। अत्यन्त छोटा इसका मुख। यह बार-बार मुख खोलता था और मुझे ही देख-देखकर प्रसन्न हो रहा था, हुलस रहा था।

अचानक इसने पलकें मूँद लीं। ऐसा बन गया जैसे सो गया हो। ज्ञानघन श्रीकृष्णका श्रीअङ्ग, इसमें प्रकृतिका सत्त्वगुण भी नहीं, रजस और तमसकी चर्चा क्या। तब मेरा अनुज इस प्रकार अकस्मात् बिना आलस्यका अभिनय किये निद्राभिनय क्यों करने लगा है, यह जाननेको मैंने इधर-उधर देखा।

हँसी आयी मुझे। वह मूर्खा राक्षसी पूतना इतना सुन्दर वेश बनाकर आयी थी, जैसे वही सिन्धुसुता हो। एक बार तो मनमें आया कि मैं ही उसे एक थप्पड़ धर दूँ; किन्तु मैंने देखा कि मेरे अनुजके अधरोंपर मन्दस्मित है। निद्राका अभिनय करके भी वह संकेत कर रहा है—'दादा, यह स्नेहका अभिनय करने आयी है तो तू क्रोध मत कर। मुझे ही इसका अभिनय कृतार्थ करने दे।'

मैं चुपचाप पालनेके समीपसे हट गया। मेरे अनुजका अनिष्ट कर सके, ऐसी शक्ति तो कहीं किसीमें होनी सम्भव ही नहीं है। मुझे तो चुपचाप

कन्हाईकी क्रीड़ा देखनी थी। क्रीड़ा ही न करनी होती तो क्या नन्दनन्दनकी समीपतामें किसीकी माया टिक सकती है ?

उसने नीलसुन्दर शिशुको अंकमें लिया। मैंने मनमें समझ लिया– इसका कल्याण तो हो गया। अब यह राक्षसी रही नहीं। इसका राक्षसी देह तो केवल कुछ पलका आवरण मात्र है। कृष्ण गोदमें पहुँचा, अब असुरत्व टिकेगा ?

हलाहल विष लिप्त स्तनाग्र दिया श्यामके मुखमें। मुझे कुछ नहीं लगा। विष और अमृतको जिसका संकेत जीवन देता है, विष क्या करनेवाला था वहाँ ?

क्षीरसागरमें मैं भी तो रहता हूँ अपने शेष रूपसे। मेरे सहस्र मुखोंमें विष ही है और वही विष मेरे मुखसे यदा-कदा झरता रहा है तो समुन्द्र-मन्थनके समय हलाहल रूपमें निकला। उसी विषका कोई क्षुद्र रूप यह स्तनोंमें लगाकर आयी है। जो शेष शय्यापर शयन करते हैं, उनपर कभी किंचित प्रभाव डालनेमें शेषकी श्वासका विष समर्थ हुआ ? वे शेषशायी भी जिसके अंशांश हैं, उन्हींको यह इस विषकी अत्यल्प मात्रासे प्रभावित करने आयी है।

अच्छा तो है। अत्यल्प मात्रामें विष पाचक और शक्तिदायी होता है। मेरे अनुजको यह औषधि देने आयी है तो मुझे क्या आपत्ति हो सकती है। मैं देखता रहा कि मेरा लीलामय भाई क्या करता है।

कन्हाईको भी क्या करना था। उस पूतनाने इसे स्तनाग्र दिया तो यह आनन्दसे उसका दूध पीने लगा। अब इतनी क्षुधावर्धक, पाचक औषधि देकर कोई दूध पिलावेगा तो शिशु चिपककर दूध पियेगा ही। असुरत्व तो श्रीकृष्णका स्पर्श करते ही मुमूर्ष हो गया था। पूतनाको मेरे करुणावरुणालय अनुजने अपनी धात्री बनाकर अपने धाम भेज दिया।

मैया व्याकुल हुई, माँ व्याकुल हुई, गोपियाँ व्याकुल हुईं, यह इनका सौभाग्य। श्रीकृष्णके अदर्शनमें व्याकुलता तो जीवका परम सौभाग्य। ऐसी व्याकुलता सदा अभिनन्दनीय है।

मैं समझ गया कि मेरे अनुजकी लीला प्रारम्भ हो गयी। कृष्ण कृपासिन्धु है, यह करता ही वह है जिससे जीवका चित्त इसकी ओर आकर्षित हो। इसकी लीलाकी चर्चा और चिन्तन ही तो संसार सागरमें पड़े प्राणीको इससे उठानेवाला है। अतः यह ऐसी लीला तो करेगा ही जिससे उसकी चर्चा हो, उसका चिन्तन हो। चर्चा और चिन्तन किसीकी सामान्य क्रियाका तो होता नहीं। चर्चा-चिन्तन असामान्य क्रियाका होता है। अतः कृष्णको असामान्य लीला ही करनी थी।

अपने छोटे भाईके साथ लगे रहना था मुझे। यह गोष्ठमें अनेक बछड़ोंकी पूँछ एक साथ पकड़े या गोमय-गोमूत्रमें क्रीड़ा करे। गोपियोंके गृहमें दधिमाण्ड फोड़े अथवा किसीको खिझावे।

मैं चौंका तो था उस दिन प्रातःकाल जब यह भूमिमें पड़े अर्जुन वृक्षकी शाखापर बैठा था। मैं इसे ढूँढ़ता ही आया था; किन्तु भूमिपर रजमें भेड़ियोंके असंख्य पद चिह्न देखकर चौंक गया। मेरे छोटे भाईको इन दुष्टोंने आतंकित किया ? कृष्णचन्द्र इतनी ऊँची शाखापर क्यों बैठा है ?❀

'दादा अपनी कीड़ास्थली तो वृन्दावन है।' मैं समीप जाकर बैठा तो कन्हाई स्पष्ट बोला—'ये गोप गोकुल सहज तो छोड़ेंगे नहीं। गोवर्धन गिरिराज, कालिन्दीका सामीप्य और वृन्दावन मुझे बहुत स्मरण आता है। ये वृक तो मैंने ही उत्पन्न किये हैं।'

'बरसाना स्मरण आना ही चाहिये अब।' मैं हँसा—'उसके समीप ही कहीं अब अपना और अपने गोपोंका आवास बनना चाहिये।'

मैंने व्यंग नहीं किया था। मुझे आश्चर्य ही हुआ था कि कन्हाई इतने समय तक श्रीकीर्तिकुमारीको कैसे विस्मृत किये रह सका। वह भोली बालिका किसीसे कुछ कह नहीं सकती; किन्तु उसके प्राण प्रतीक्षा करते होंगे। कन्हाईसे अधिक आतुर हो उठा मेरा हृदय वहाँ समीप बसनेके लिए।

'तुम्हारे ये वृक पर्याप्त होंगे ?' मैंने गम्भीरतापूर्वक ही कहा—'मैं इनको भी सहयोग दे सकता हूँ।'

❀ यह पूरा चरित 'वृकोपद्रव' अध्यायमें 'नन्दनन्दन'में गया है।

'गोपोंको आतंकित करनेके लिए ये पर्याप्त हैं।' श्यामने मेरी ओर देखा—'स्वजनोंको अधिक भयभीत करना उचित नहीं होगा। कंसके भी अनुचरोंको ये सम्हाल लेंगे।'

जगती ही श्रीकृष्णके सकेत पर चलती है। गोपोंने गोकुल त्यागका निर्णय किया। हम सब नन्दीश्वर गिरिपर आ गये। यहाँ मेरे अनुजकी आनन्द क्रीड़ा उन्मुक्त चल रही है। मुझे तो कुछ करना नहीं है, केवल इस कन्हाईका अनुगमन करना है। इसकी क्रीड़ाका अनुमोदन करते रहना है। यह भी तो मुझसे केवल अनुमोदन ही चाहता है। मेरा यह अत्यन्त विनयशील अनुज, मैं कुछ करूँ—इसे तो सह ही नहीं पाता।

मधुमंगल–

विदूषक हूँ मैं अपने आनन्दकन्द सखाका। कृष्ण तो आनन्दघन है। उसे प्रसन्न करना कोई समस्या नहीं है। अप्रसन्नता, उदासीनता, दुःख-शोक उसके स्मरणसे दूर भागते हैं। उसे कोई आनन्द या प्रसन्नता क्या देगा। वह तो है ही प्रसन्नताकी परम प्रतिष्ठा। उसके शशि मुखपर सदा सुप्रसन्न स्मित रहता है; किन्तु भगवती भागीरथी जलमयी हैं तो क्या उन्हें अर्घ्य देना बन्द किया जा सकता है? उनके ही जलसे तो उन्हें अर्घ्य दिया जायगा। जीवकी सम्पूर्ण सार्थकता ही है श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके सम्पादनका प्रयत्न।

मेरा यह सखा चपल है, लीलामय है, नटखट है। अतः यह कोई भी लोक लीला कभी भी कर सकता है। इस परिपूर्णमें ही तो सब कलाएँ, सब लीलाएँ सार्थक होती हैं। जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी आवेगा कहाँसे?

मैं तो अपने इस सखाका हूँ। इसका विदूषक हूँ और इसके अपने जनोंको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करता रहता हूँ। मैं ब्राह्मण भी हूँ तो इसीको प्रसन्न करनेके लिए और वेदज्ञ, महर्षि, ब्रह्मर्षि आदि आदि जो आपकी समझमें उत्तम उपाधियाँ आवें, वह सब आप मुझे देना चाहें तो अवश्य दीजिये। आपको पुण्य होगा। ब्राह्मणका सम्मान करना पुण्य होता है। वह सब मुझमें सार्थक हैं; क्योंकि मैं व्रजेन्द्रनन्दनका हूँ।

यह नटखट भी मुझे प्रणाम ही करता है। भले पुष्प अर्पित करनेके स्थानपर मेरे सिरपर दूर्वादलकी ही मुट्ठी डालनेको उठावे। अन्ततः दूर्वादल इसे भी तो चढ़ाया ही जाता है।

यह दूर्वादलकी मुट्ठी उठाता है तो मैं कह देता हूँ—'यजमान, तुम बहुत श्रद्धालु हो। गोपकुमारको ऐसे ही गोपूजन एवं गोसेवामें तत्पर रहना चाहिये। मैं मन्त्र पाठ करता हूँ। अपनी कामदा या उसके बछड़े गौरवको अथवा श्रद्धा हो तो अपने वृषभ धर्मको यह तृण अर्पित करो। मुझ ब्राह्मणको गोसेवाके पश्चात् मोदक खिला देना।'

यह कृष्ण कोई आज नटखट नहीं हुआ है। यह तो सदासे नटखट है। इसका नटखटपना ही तो है कि सृष्टिका इतना बड़ा झमेला खड़ा करके इसमें छिप गया है और सब इसे ढूँढ़ते थके जा रहे हैं। सब इस आनन्द-स्वरूपको ही ढूँढ़ रहे हैं। वैसे आप मेरी बात न मानें तो दुःख दादा तो आपके द्वारपर अशान्ति देवीके साथ खड़े ही हैं। उन्हें ढूँढ़ना नहीं पड़ता। वे आपके चीखे-चिल्लाये हटनेवाले भी नहीं हैं। वे दोनों घबड़ाते हैं मेरे इस नटखट सखासे। इसकी छायासे, इसके चिन्तनसे वे दूर भागते हैं। क्योंकि इसका क्या ठिकाना, इसने देवराज इन्द्रको ही अंगूठा दिखा दिया और बूढ़े सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीको भी नहीं छोड़ा। यह परिहासपर उतर आवे तो बड़े-बड़े ऋषियोंको भी नचाकर छोड़ता है।

मैं इसे जन्मसे जानता हूँ। वैसे इसे तो कोई पूरा जान सकता नहीं; किन्तु मैं इसके नटखटपनको जानता हूँ; क्योंकि मैं तो गोकुलमें इसके आगमनकी प्रतीक्षा दाऊदादाके पधारनेसे भी पूर्वसे कर रहा था।

यह मैयाकी गोदमें ठीक किस क्षण आया, किसीको भी इसने पता नहीं लगने दिया। यह ऐसे ही सदा अलक्ष्य आया करता है। आप आये और मैयाकी गोदमें चुपचाप सो रहे। बिचारी मैयाको भी सुला दिया। इस नटखटने ही सुला दिया, नहीं तो सन्तान हो और माता सोती रह जाय, क्या यह बनने योग्य बात है? यही बनने योग्य बात है कि सत्त्वगुणका परमाधिष्ठाता अङ्कमें रहे और तमोगुणकी वृत्ति निद्रा भी बनी रहे?

सबको जगाया तो इस कृष्णने ही। यही सदा सबको—मायाकी मोह निद्रामें सोये सबको जगाता है; किन्तु जगाया कैसे इसने? आप रुदन करने लगे। मैंने तो इसे उस समय रुदन करते देखा है। आप कल्पना भी नहीं कर सकते कि आनन्द घनीभूत होकर मूर्ति बन जाय और तब रुदन करने लगे तो कैसा लगेगा। आनन्दका रुदन—यह रुदन कर रहा और दूसरे सब उसे सुनकर आनन्द मग्न हो रहे। गोप तो नाचने ही लगे थे।

मैंने देखा है इसका वह रुदन। दंत हीन नन्हा-सा मुख खोलकर यह अपनी समझसे चीख-चीखकर रो रहा था। हाथ-पैर हिला रहा था। नेत्र बन्द किये रोता ही जा रहा था।

मैं तो विदूषक हूँ। मैं नाचता था, ताली बजाता था, कूदता था तो स्वाभाविक था। यह तो मैं करता ही रहता हूँ। हँस तो रहा था दाऊ दादा। इतना गम्भीर दाऊ दादा मैयाकी शैय्या पकड़कर खड़ा हो गया था और अपने नटखट छोटे भाईके रुदनको सुन-सुनकर हँस रहा था, हँसता ही जा रहा था। जैसे दोनों भाइयोंमें प्रतिस्पर्धा चल रही है।

इतना तो रो रहा था और मैयाने उठाकर वक्षसे लगाया तो उसका स्तनपान करने में ऐसे जुट गया जैसे कभी इसे दूधके दर्शन ही न हुए हों।

रोया तो यह उस दिन भी और जीभरकर रोया, हिचक-हिचककर रोया, इतने अश्रु बहाकर और नेत्र मल-मलकर रोया कि नेत्रोंमें लगे अञ्जनसे नासिका, कपोल सब रंजित हो गये, जब मैया इसको बाँधने लगी थी।

मैं ब्राह्मण हूँ। मेरी बात आप मान लेंगे तो आपका कल्याण हो जायगा। बिना दक्षिणाकी आशाके ही आपको यह बतला रहा हूँ। अञ्जन फैलनेसे काले रंगे दोनों कपोल-नासिका और करके पृष्ठ भाग कन्हाई ऊखलसे बँधा है। इस बँधे दामोदरका चिन्तन करेंगे तो आपका भव-बन्धन टूट गिरेगा। भगवती मायादेवी भाग खड़ी होंगी आपके समीपसे।

यह आनन्दघन रोता भी है तो डटकर रोता है और इसका रुदन भी आनन्द वितरण करता है। यह इतना रो-धोकर न रोता, अर्जुनके दोनों वृक्ष उसी क्रोधमें न उखाड़ फेंकता तो गोप गोकुल छोड़कर वृन्दावन बसने आते? वृन्दावन तो आनन्दधाम है।

मैंने इस कृष्णका क्रोध भी देखा है। यह क्रोध भी कर सकता है, ऐसा विकट क्रोध, यह मैंने उसी दिन जाना। पूतना, तृणावर्त आये अथवा वत्सासुर, बकासुर आये, इसने फटाफट मार दिया उन्हें। हँसते-हँसते मार दिया। असुरोंको मारनेमें तो इसकी क्रीड़ा ही बनी। इसमें क्रोध भला क्या करता यह।

उस दिन मैंने इसका क्रोध देखा। वह मयदानवका पुत्र व्योमासुर

आ गया वनमें गोप बालक बनकर। मैंने उसे देखते ही जान लिया—'आज इसका कल्याण हो गया।'

देवी योगमाया मुझपर दया रखती हैं। इस ब्राह्मण बालकको वे भ्रान्त नहीं करतीं। अतः किसीकी माया मुझे भ्रान्त नहीं कर पाती। लेकिन मैं कृष्णकी क्रीड़ाका सहायक हूँ, बाधक तो नहीं हूँ। मधुमंगलको पता है कि कब ब्राह्मणको बाचाल बनना चाहिये और कब मौनी बाबा।

वह असुर गोप बालक बनकर हममें मिल गया। उसीने खेल सुझाया। मुझे मेष बनना स्वीकार नहीं और ब्राह्मणकुमार चोर बनना भी कैसे स्वीकार करेगा। मैं चोरका साथी बन सकता हूँ, यदि वह श्रद्धालु हो; किन्तु चोर बनना तो मुझे खेलमें भी स्वीकार नहीं है।

इस गोपालका सखा बना तो इसके साथ खेलमें मेषपाल बनना पड़ा। इतना मैंने मान लिया, यही बहुत हुआ। व्योमासुर सब मेष बने बालकोंको गुफामें छिपा आया। चोर बने बालकोंको भी बन्दी कर आया तो कोई बात नहीं थी; किन्तु मेषपाल बने बालकोंको भी बन्दी बनानेकी कुबुद्धि आ गयी उसमें। वह अकेला ही चोर रहना चाहता होगा। तभी कन्हाईने उसे धरपटका।

अब पूछिये मत कि क्या हुआ। यह व्रजयुवराज कभी अपने अपराधी-पर क्रोध नहीं करता; किन्तु इसके जनोंका कोई अपराध करे—किया था व्योमासुरने। उसने इसके सखाओंको बन्दी किया था। कृष्णको क्रुद्ध होते उस दिन मैंने देखा। दाँतसे अधर दबाये, अरुण नेत्र, हुंकार करता यह बार-बार असुरपर पाद-प्रहार कर रहा था। घूसे थप्पड़ मारता जा रहा था। असुर तो सम्भवतः पहिले ही पाद-प्रहारमें प्राण त्याग गया; किन्तु यह उसके शरीरको पीटे जा रहा था। वह देह फटकर लोथड़ा बन गया और तब भी इसका क्रोध रुकनेका नाम नहीं ले रहा था।

उस दिन मैं भय-स्तब्ध रह गया। मुझसे बोला नहीं जा रहा था। उस दिन कोई लोकपाल भी बोलता तो यह उसे हुंकारसे ही भस्म कर देता। 'अरे, रहने भी दे! मरे लोथड़ेको मारनेसे लाभ?' भद्र बोला था और भद्रकी ओर देखकर तो यह उससे लिपट गया था। यह अपनोंका सर्वथा अपना मेरा सखा। मैं तो इसका हूँ ही।

विशाल—

विधाता अनेक रूपमें प्राणीको वरदान देता है। मुझे उसने वरदानके रूपमें शरीर दिया है। अत्युच्च पुष्ट शरीर उसका वरदान ही है और मेरे लिए तो यह शरीर मेरा विशेष वरदान है। इसीके कारण तो कन्हाई चाहे जब मेरे कन्धोंपर आ बैठता है।

'तू ब्रजेन्द्रनन्दनका अश्व है ?' शैशवमें गोपियाँ पूछती थीं।

'हाँ' मैंने तो बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार कर लिया था। मधुमंगल कहता था कि सब मुझे अश्व कहकर चिढ़ाती थीं; किन्तु मुझे तो इसमें चिढ़ाने जैसी कोई नहीं लगी। मैं सचमुच अश्व होता तो कितना आनन्द आता। कन्हाई मेरी पीठ पर बराबर बैठा करता और मेरे शरीरको मलता, सहलाता भी। मेरी सब चिन्ता उसीको करनी पड़ती, यही अच्छी बात नहीं थी। वह क्या चिन्ता अथवा सेवा करने योग्य है। उसे तो सेवा दी जानी चाहिये। उस सुकुमारकी चिन्ताकी जानी चाहिये। इससे मैं ऐसे ही ठीक हूँ। मेरा यही शरीर अच्छा है।

'मेरा दादा है !' कन्हाईको कभी अच्छा नहीं लगा कि कोई मुझे अश्व कहे। वह सुनते ही अपनी नन्ही मुट्ठी दिखलाने लगता था कहने वालीको।

'तू मेरी पीठपर बैठ !' यह आग्रह तो उससे मैं ही करता था। मैं उसके सम्मुख अश्व जैसा बनकर उससे कहता था। वह मेरी पीठपर बैठ जाता था, तब उसे लेकर मैं पूरे आँगनमें घूमता ही रहता था। मैं वेगसे चलता था तो वह ताली बजाता, हँसता, प्रसन्न होता था।

बहुत वेगसे उसे लेकर चला नहीं जा सकता था। वह तो पीठपर बैठा होकर भी कभी सिर या कन्धे पकड़ता नहीं था। उसे मैं ही सम्हाले रहता था। वह इतना सुकुमार है कि पीठसे वह गिर जाय तो मुझे ही बहुत पीड़ा होगी।

कन्हाई विचित्र है। उसका मुख स्वेद कणोंसे भीग जायगा, अरुण हो जायगा; किन्तु उसे पता ही नहीं लगता कि वह थक गया है।

'मैं थक गया' यह मुझे ही कहना पड़ता था। वह मेरी पीठपर बैठा रहे तो मैं जीवन भर उसे लिये घूमता रहूँगा। मुझे न भूख लगेगी, न प्यास ! थकावट तो होगी ही नहीं। कन्हाई तो एक कमल पुष्प जितना भी भारी नहीं है; किन्तु वह पीठपर अपने पैर फैलाये बैठा रहेगा तो थकेगा नहीं ? उसके पैर पीड़ा नहीं करने लगेंगे ? इसलिए मुझे ही कहना पड़ता था—'मैं थक गया।'

'दादा, तू थक गया ?' मेरे कहते ही वह पीठसे उतर जाया करता था। कभी उसने एक पद भी और चलनेको नहीं कहा। उतरते ही मेरे मुखकी ओर देखता और मेरे हाथ, मेरी भुजाएँ सहलाने, दबाने लगता था।

ममता और स्नेहकी मूर्ति हमारा यह भाई। मैं इसके सुकुमार करोंको हाथमें लेकर सहलाता, कहता—'इतना अधिक नहीं थका हूँ कि मेरी भुजाओंका संवाहन करना पड़े।'

'तू बैठ मेरी पीठपर !' अनेक बार यह मेरे सम्मुख घुटने मोड़कर आग्रह करने लगता था। इसकी समझमें ही कभी नहीं आया कि मुझे पीठपर बैठाकर चलना इसके लिए कितना कठिन है।

'तू छोटा है।' मैंने इसे समझा देनेकी युक्ति पाली थी। 'जैसे तू तोककी पीठपर नहीं बैठ सकता, वैसे ही मैं भी तेरी पीठपर नहीं बैठ सकता।'

'बैठूँ ?' मधुमंगल प्रायः पूछ लेता था; किन्तु वह तो कभी मेरी पीठपर भी नहीं बैठा। उसे बैठनेको कहो तो अँगूठा दिखाकर मटकता है— 'मैं तेरे बहकानेमें नहीं आऊँगा। तू मुझे पीठपर बैठाकर लुढ़का देना चाहता है ?'

कन्हाईने माखन चोरीकी बात सोची तो पहिले मुझसे ही पूछा। मेरे ही घर माखन उसे खाना-लुटाना था तो इसमें चोरी या पूछनेकी क्या बात थी। माखन उसका, उसके ताईका, ताऊका, मेरा। मैं क्यों मना करता ?

किसी दूसरेके भी घरकी बात हो तो हो क्या गया ? अपने गोकुलमें तो सब घर अपने ही थे। बड़े गोप-गोपियाँ क्यों एक घरको ही अपना मानते हैं, मैं कभी समझ नहीं सका, मुझ तो सब घर अपने ही लगते हैं और ऐसा कोई घर गोकुलमें हो कैसे सकता है जो कन्हाईका अपना न हो। व्रजेश्वरी मैया तो सबको कहती है—'नीलमणि तुम्हारा ही है।'

मुझे लिये बिना कन्हाई माखन खाने कभी किसी घर नहीं गया। मेरे बिना उसका काम चलता ही नहीं था। वह तो अब भी नहीं चलता।

माखन या दही कोई नीचे तो रखा रहेगा नहीं। नीचे रहेगा तो बिलैया छोड़ देगी ? रखा तो रहेगा छीकेपर ही। छीका कन्हाईके नन्हें हाथोंसे पकड़में आनेसे रहा। तब विशालके कन्धोंपर ही तो उसे खड़ा होना पड़ेगा।

बहुत ऊँचाईपर छीका हो तो हम सब ऊखल लुढ़का लाते और उसे छीकेके नीचे खड़ा कर देते थे। ऊखलपर पाटा और पाटेपर मैं घुटनों तथा हाथोंके बल हो जाता। मेरी पीठपर कोई बालक खड़ा हो जाय या कन्हाई ही खड़ा हो जाय।

सब कहते हैं कि मेरा शरीर बहुत चिकना है। मेरी पीठपर कितना दही-माखन कन्हाईने गिराया है, कोई सोचता ही नहीं। मेरे सिर, कन्धे, मुख सबको इसने स्निग्ध किया है और अनेक बार अपने करोंसे मेरे अङ्गोंपर फैले उस माखन या दहीको वहीं विनोदमें मला है।

मुझे तो स्मरण नहीं कि इस प्रकार कन्हाईकी दधि-माखनकी लूटमें मैंने कभी अपने हाथों मुखमें दही या माखन डाला हो। मेरे मुखमें तो यह मेरा कृष्ण ही सदा अपने हाथों देता रहा है। मुझे सबसे अधिक खिलाता रहा है।

यह क्रीड़ा बहुत थोड़े दिनों चली। हम सब गोकुलसे वृन्दावन आये और यह क्रीड़ा समाप्त हो गयी; किन्तु एक कीड़ाके समाप्त होनेसे होता क्या है। कृष्ण क्रीड़ा प्रिय है। यह चुपचाप बैठा नहीं रह सकता। यह तो कुछ न कुछ करता ही रहेगा और खेलेगा तो खेलमें इसे विशालकी आवश्यकता पड़ती रहेगी।

'दादा, तू यहाँ खड़ा रहा' पहिले-पहिले इसने वृन्दावनमें मुझे यह भार दिया। यह यमुना पुलिनपर बैठा मग्न था रेणुकाकी एक बड़ी ढेर करके उससे कुछ बनानेमें। सूर्य ऊपर उठ आया।

'उठ यहाँसे !' भद्रने इसे कहा—'छायामें चल !'

भद्र मुझसे छोटा है; किन्तु बुद्धिमान बहुत है। समयपर उसे ही उचित बात सूझती है। हम सबने शैशवमें ही उसे अपना सेनापति अकारण नहीं मान लिया था।

मुझे तो दीखा ही नहीं कि कन्हाईका मुख अरुण हो आया है और उसपर स्वेद कण छोटे मोतियोंके समान झलमलाने लगे हैं। भद्रने कन्हाईसे कहा तब मेरा इस बातकी ओर ध्यान गया। तब तो मुझे भी लगा कि अब रेणुका भी शीतल नहीं रही है।

'क्यों ?' कन्हाईने भद्रसे पूछा। अपनी रेणुका-क्रीड़ा वह छोड़ना नहीं चाहता था। लेकिन भद्रकी बातकी उपेक्षा भी वह कर नहीं पाता है।

'इसलिए कि धूपमें उष्णता आ गयी है।' भद्रने दृढ़ स्वरमें कहा—'अब तुझे धूपमें नहीं खेलने दिया जा सकता। चल, मैं भी छायामें तेरे साथ चल रहा हूँ।'

तभी कन्हाईने मुझे पुकार लिया और ऐसे खड़े होनेको कहा-जिससे वह मेरी छायामें रह सके। मैं खड़ा हो गया तो भद्रकी ओर देखकर बोला—'तुझे छायामें जाना हो तो चला जा !'

मैंने उसी दिनसे अपने लिए नियम बना लिया कि शीतकालके अतिरिक्त कन्हाई धूपमें खेलता हो तो मुझे उसको अपनी छायामें रखना चाहिये। शीतकालमें भी बहुत थोड़ी देर उसे धूपमें रहने दिया जा सकता है।

बड़ा कठिन है यह काम कि मैं कन्हाईको अपनी छायामें रखूँ। यह बहुत चपल है। तनिक देर भी स्थिर नहीं बैठता। कभी इधर हटेगा, कभी उधर। चाहे जब दौड़ेगा किसी ओर अथवा नाचने-कूदने लगेगा।

इसे रोका भी नहीं जा सकता। लेकिन मुझे कोई इसके समीप बने रहनेका एक बहाना तो मिल ही गया है।

'दादा, बैठ!' मैं खड़ा होऊँ तो चाहे जब यह कहींसे दौड़ता आकर मेरे हाथ हिला देता है। उपालम्भके स्वरमें कहता है—'तू तो खड़ा है।'

जैसे मुझे सदा बैठे ही रहना चाहिये। इससे पूछो क्यों? तब सीधी बात नहीं बतावेगा कि इसे मेरे कन्धेपर बैठना है। कहेगा—'तू पता नहीं कबसे खड़ा है। तेरे पैर दुखने होंगे।'

'अच्छा!' इसे खिझानेका मन हो तो मैं कह देता हूँ—'तब मैं लेट जाता हूँ। बैठनेसे अधिक विश्राम लेटनेमें मिलेगा।'

'नहीं; लेट मत।' यह खीझकर मेरा हाथ झकझोरेगा 'तू इतना अधिक तो थका नहीं लगता।'

'लो बठ गया।' दोनों पैर फैलाकर मुझे बैठ जाते देखकर फिर मेरा हाथ झकझोरेगा—'ऐसे नहीं। ठीक बैठ। कितना सुन्दर तो फल देखा है मैंने।'

इसने कोई फल देखा है या पुष्प, कोई किसलय अथवा शाखापर अटका पिच्छ भी हो सकता है। उसे इसे लेना है। अपने हाथसे ही लेना है, अतः मुझे इसको कन्धेपर बैठाकर वहाँ चलना चाहिये जहाँ यह कहे।

यह आवश्यक नहीं है कि वह फल इसको ही खाना हो। वह पुष्प या पिच्छ इसे अपने लिए प्रिय हो। वह इसे किसीके लिए देने योग्य लगा हैं। अधिकांश तो वह फल यह मेरे ही मुखमें दे देता है। पुष्प या पिच्छ मेरे ही केशोंमें सजाने लगता है।

इस व्रजराज कुमारको शैशवसे दूसरोंकी ही चिन्ता सदा रहती है। गोप बालक तो इसके सखा हैं; किन्तु गिलहरीको भी अपने उत्पन्न होने वाले बच्चोंके लिए कोई मृदुलतृण ले जाते देखेगा तो उसे अपना पटुका ही देने लगेगा। इसे तो समझाना पड़ता है कि गिलहरी इतना बड़ा पटुका नहीं ले जा सकती।

'मैं इसके लिए सेमरकी रुई लाता हूँ।' मैं कहूँ या कोई दूसरा सखा कहे, कन्हाईका संतोष नहीं हो सकता जब तक यह स्वयं रुई ढूंढ़कर न ले आवे।

'ले, तो जा!' इसकी बात सब पशु-पक्षी समझ लेते हैं। यह अपने करमें लेकर रुई बढ़ाता है तो गिलहरी हम सबके बीचमें आकर इसके हाथसे रुई ले जाती है और तब यह उसे रुई ले जाते देख देखकर कितना प्रसन्न होता रहता है!

'तू थक गया' चाहे जब इसे यह धुन भी चढ़ती है। मैं थक गया हूँ, यह मुझे पता नहीं है, पता इसे है।

'थक गया है, खूब थक गया है।' मैं कितना भी मना करूँ, यह मानता नहीं। उलटे कहता है—'तू लेट जा, मैं तेरा पाद-संवाहन करूँगा।'

मेरे कठोर पैर और इसके कुसुमकोमलकर; किन्तु दो चार वार यह पिंडलियोंका स्पर्श करके किसी प्रकार मान न जाये तो मुझे उठकर किसी ओर दौड़ जाना पड़ेगा ही। इसके कर क्या पाद-संवाहन योग्य हैं! यह है ही प्रेमकी मूर्ति।

ऋषभ—

विचित्रताएँ विधाताने विश्वमें बहुत बनायी होंगी; किन्तु हमारे कन्हाई जैसा विचित्र उसने भी सुना नहीं होगा। कन्हाई इतना विचित्र है कि कोई सीमा नहीं।

कन्हाई कब क्या करेगा, इसका पता तो कोई क्या रखेगा, इसका रूप, वेश ही पता नहीं लगता कि कब कैसा रहेगा और किससे कैसा व्यवहार करेगा, यह भी कोई ठिकाना नहीं है। ठिकाना तो यह किसीका रहने नहीं देता। यह कुछ करेगा किसीके साथ तो उसका इसपर प्यार उमड़ेगा या क्रोध, इसका भी कुछ ठिकाना नहीं रहता।

मुझे इसके साथ रहनेका अवसर शैशवसे मिला है, यह मेरा छोटा भाई है। जब घुटनों सरकता था, तब भी मैं दिनभर इसके समीप ही रहता था। मैया सवेरे ही मुझे लेकर पहुँच जाती थी व्रजराज सदन और मुझे इसके पास छोड़कर निश्चिन्त हो जाती थी।

तब मैं भी छोटा ही तो था। प्रत्येक दिन पहिले इसे बहुत ध्यानसे देखता था। लगता ही नहीं था कि यह वही व्रजेश्वरी मैयाका शिशु है, जिसके साथ मैं कल दिनभर था। यही दशा अबतक है। प्रातःकाल इसके द्वारतक जाता हूँ बछड़े लेकर और यह जैसे ही दीखता है, इसे अपलक देखने लगता हूँ कि यह मेरा कन्हाई ही तो है।

इसका शरीर, वर्ण, नेत्र, भौंहें, हाथ-पैर, वस्त्र, आभूषण सब वही और जैसे सब नवीन हो गये हैं। जैसे यह प्रतिदिन पटुका परिवर्तित कर लेता है; किन्तु तब भी पीला पटुका ही लेता है, वैसे ही क्या यह सम्पूर्ण परिवर्तित हो जाता है ?

'दादा !' यह देखते ही दौड़ा आता है और कन्धेपर कर रख देता है। नन्हा था तो मैं जैसे ही इसके समीप पहुँचता था, मेरे मुखकी ओर देखता था दो पल एकटक और फिर हुलस कर सरक आता था समीप। तब

भी अपना नन्हा कर उठाकर मुझे स्पर्श करता था। हाथ, पैर, उदर, मुख जो समीप मिल जाय, उसीपर अपना कर रखता था।

तनिक खड़ा होने लगा तो सब खिलौने इसने व्यर्थ कर दिये। पक्षियों और गिलहरी, शशक, बिल्ली जैसे प्राणियोंसे खिलौनेकी भाँति खेलने लगा। तब भी मैं साथ न रहूँ, चार पद भी दूर रहूँ तो पुकारता था, नन्हें कर हिलाकर बुलाता था। इतनेपर न आऊँ तो स्वयं पास आकर हाथ पकड़कर ले जाता था।

मुझे शैशवसे भाग-दौड़,ऊधम और उच्च स्वरसे बोलना प्रिय नहीं है। यह कन्हाई जब गोपियोंको खिझाने लगा, उनके घरोंमें दधि-माखन लुटाने और भाण्ड फोड़ने लगा तो मैं इसे रोकने, समझानेका प्रयत्न करता था। मैं इसे भला कैसे समझाता। यह कभी मेरी पूरी बात तो सुनता ही नहीं। मेरी क्या किसीकी भी पूरी बात नहीं सुनता। इसे तो अपनी ही धुन चढ़ी रहती है। अपनी ही बात कहता जायगा और हाथ पकड़कर खींचेगा।

'तू चल, बड़ा ही आनन्द आवेगा!' ऐसा ही कुछ कहकर जब यह हाथ पकड़कर खींचता है, इसके साथ गये बिना रहा किससे जायगा।

मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैंने कभी किसीके घर भाण्ड नहीं फोड़ा। मैंने स्वयं दही-माखनमें हाथ नहीं डाला; किन्तु मेरे मुखमें यह कन्हाई न डाले, ऐसा तो मैं इसे मना नहीं सकता था। यह भी कैसे बन सकता है कि यह अपने हाथसे मुखमें कुछ देने लगे तो मुख बन्द रखा जा सके।

मैं इतना और कह सकता हूँ कि कन्हाई धूम करनेके लिए, गोपियोंको खिझानेके लिए ही दधि-माखन लुटाता या भाण्ड फोड़ता था। यह ऊधमी तो है; किन्तु स्वयं अपने मुखमें कितना डालता था? यह तो सखाओंको खिलानेमें, कपियोंको लुटानेमें ही व्यस्त रहता था। अपने मुखमें कभी कुछ लेता भी था तो अंगुलीसे उठाकर दो बूँद जितना। कोई दूसरा भी इसके मुखमें देने लगे तो उसके हाथसे मुख लगाकर वही दो बूँद मुखमें लेता था। एक तो वैसे ही इसका नन्हा-सा मुख है, दूसरे पूरा मुख जैसे इसे खोलना ही नहीं आता। मैंने तो सदा इसे तनिक-सा मुख खोलते ही देखा है।

अब यह भी मैं कैसे कह सकता हूँ कि गोपियोंको खिझानेके लिए यह सब करता था। गोपियाँ खीझनेका नाटक तो बहुत करती थीं; किन्तु अनेकोंने अनेक बार मुझसे ही गिड़गिड़ाकर अनुरोध किया—'लाला रे, अपने छोटे भाईको मेरे घर भी आनेको कहना।'

गोपियोंका दोष नहीं है। यह कन्हाई है ही ऐसा कि यह चाहे जितना उत्पात करे, खिझावे; किन्तु इस पर प्यार ही उमड़ता है। मैं ही चाहकर भी इससे कभी रूठ कहाँ सका हूँ।

गोकुलसे हम सब वृन्दावन आये तो यह यमुना जल भरनेको आयी लड़कियोंके घड़े फोड़ने लगा। उनकी कलसियाँ लुढ़का देता था धारामें। इसको तो ऊधम करनेमें आनन्द आता है; किन्तु लड़कियोंको क्या कहूँ। मैंने उनसे कहा—'तुम सब दूसरे घाटपर जल भर लिया करो।'

वे भी कम हठी नहीं हैं। एकने मुझे ही सुना दिया—'हम क्यों जायँ दूसरे घाटपर ? तुमने कोई इस घाटका पट्टा ले लिया है ? हमारे मनमें आवेगा वहाँ जल भरेंगी।'

अब सब वनमें आने लगी हैं दही बेचने। पता नहीं सबोंको वनमें कपियोंको दही बेचना है या भल्लूकोंको। उन्हें वनके पारवाले ग्राम ही जाना है तो वनसे बाहरके मार्ग भी तो हैं; किन्तु मैं उन्हें अब नहीं समझाऊँगा। वे फिर मुझे ही उलटे अँगूठा दिखावेंगी।

अब हमारे सखाओंमें बरसानेके भी बालक हो गये हैं। वे सब अपनी ही बहिनोंको मना नहीं कर पाते तो मैं कैसे मना कर सकता हूँ।

यह श्रीदामा है, यह वैसे तो बात-बातपर कन्हाईसे उलझता है, कभी-कभी तो ऐसे अकारण उलझता है कि मुझे भी इसपर क्रोध आता है; किन्तु कन्हाई तो किसीको भी पटा लेता है। अब इसे ऐसा पटा लिया कि यह भी अपने घर, गाँवकी लड़कियोंकी दही छीनी जाती है, दहेड़ियाँ फोड़ी जाती हैं तो ताली बजा-बजाकर हँसता है। कन्हाई इसे भी किसी फूटी दहेंड़ीमें भरा दही थमा देता है तो मगन होकर भोग लगाने बैठ जाता है।

वैसे तो कन्हाई इसे खिझाता ही रहता है। लेकिन इसके केशोंमें पुष्प भी लगाना चाहे तो यह चौंककर भागता है। पहिलेसे ही चिल्लाता है—'तू मेरे केश खींचेगा, यह मैं जानता हूँ।'

'दादा, तू मत डाँट उसे।' मैं कभी श्रीदामको कुछ कहने लगूँ तो कन्हाई मुझे मना करने दौड़ आता है। 'तू बड़ा है और इसे तो मैं ही ठीक बना दूँगा।'

श्रीदाम झगड़ेगा भी इससे और इसीके साथ लगा रहेगा। मैं भी तो इस कन्हाईसे रूठ नहीं पाता हूँ। मैं इसके ऊधमसे तंग आकर इसीके साथ लगा रहता हूँ।

सच बात तो यह है कि यह मेरा छीका लेले, उसका सब लुटा दे, खाजाय तब तो बहुत अच्छी बात; किन्तु यह नन्हीं चिड़ियासे अधिक तो खा नहीं सकता, छीका लुटा भी दे तो मुझे प्रसन्नता होती है।

यह तो कभी मेरा लकुट उठाकर किसी कपिको पकड़ा देता है और कभी मेरा पटुका किसी वृषभकी सींगमें लपेटकर मुझे ही दिखाता है—'दादा ! देख, उसने पगड़ी बांधी है।'

मुझे झगड़ना आता नहीं। झगड़ मैं किसीसे नहीं सकता, यह तो मेरा छोटा भाई है और बहुत भोला है। तनिक चपल है तो क्या हो गया।

विचित्र तो यह है। कभी ऐसी विचित्र वस्तुएँ लावेगा शृङ्गार करनेको कि हँसते-हँसते लोटपोट होते रहो। कटेरीके पीले फल कुण्डलके साथ लटका लेता है तो एक बात है; किन्तु कपित्थके फल लाता है और मधुमङ्गलको कुण्डलके स्थानपर पहिनाना चाहता है। कभी उसे बड़े-बड़े विल्व फल बाँधकर माला पहिनानेका उपक्रम करेगा।

'ब्राह्मण पवित्र होते हैं। उनको पवित्र माल्य अर्पित करना चाहिये।' पूरा पण्डित बन जायगा। कोई यह तो कह ही नहीं सकता कि विल्व पवित्र नहीं होता।

इसने तो आमलककी माला बनायी और उसे महर्षि शाण्डिल्यको

पहिना आया। महर्षिके अधरोंपर केवल स्मित आया। हम सब तो डर रहे थे कि वे अप्रसन्न होंगे।

यह समझने लगे तो गैयाकी, बछड़ों, कपिकी, मयूरोंकी, गिलहरियोंकी बात भी समझ लेता है। वे क्या चाहती या कहती हैं, यह ठीक जान लेता है। लेकिन उस दिन वे श्वेतश्मश्रु मुनि आये वनमें और कुछ बोलने लगे। यह चुपचाप खड़ा रहा। वे चले गये तो मुझसे पूछने लगा—'दादा, वे मुनि क्या कह रहे थे ?'

मेरी ही समझमें कुछ नहीं आया तो मैं इसे क्या बता देता। मैंने मधुमंगलसे पूछा। मधुमंगल ब्राह्मण है और वह ऋषियोंके साथ बैठकर चाहे जब उनके समान मन्त्र बोलने लगता है। वे मुनि भी कुछ मन्त्र ही बोलते रहे होंगे।

मधुमंगल कन्हाईसे कम नटखट नहीं है। वह भी पूछने पर कदाचित ही सीधी बात करता है। मैंने पूछा तो कहने लगा—'पहिले ब्राह्मणको दक्षिणा दे तब पूछ।'

मैंने यह भी किया। अपने छीकेसे दो मोदक उसे निकालकर दिये; किन्तु नटखट इतना कि मेरे मोदक तो गड़प गया और जो बतलाया, उसका कोई सिर-पैर ही नहीं। उसने बतलाया कि वे मुनि कन्हाईको कहते थे—'तुम बौड़म हो, तुम्हें पूरब-पश्चिमका भी पता नहीं। तुम हौवा हो, तुम्हीं सबको डराते हो। तुम पता नहीं क्या हो।'

कितनी अटपटी बात। हमारा कन्हाई तो इतना चतुर है और भला यह हौवा क्यों होने लगा। मधुमंगलने ही यह सब गढ़ा होगा। यह भी हो सकता है कि उन मुनिने कुछ अटपटी बात ही कही हो। इन जटा-दाढ़ीवाले बाबा लोगोंको अटपटी बात ही सूझती रहती है।

कन्हाई तो सुनकर हँसता रहा। मुझसे बोला—'दादा, तू कहे तो मैं कोई भल्लूक बुला लाऊँ।'

'भल्लूकका क्या करेगा ?' मैं चौंक गया। जानता हूँ कि यह चपल बुलाने लगे तो भल्लूक तो क्या, गगनमें भागते मेघको भी बुला लेगा।

'वह इसकी स्तुति करेगा।' मधुमंगलकी स्तुति भल्लूक करेगा, इसके सम्मुख भलभलायेगा, यह सोचकर मुझे भी हँसी आ गयी। मधुमंगल तो भयसे भाग खड़ा हुआ और दाऊ दादाके समीप जाकर बैठ गया। कन्हाई दाऊ दादाके समीप तो कोई धृष्टता कर नहीं सकता।

लेकिन कुछ ठिकाना नहीं है। यह नटखट भल्लूकको सिखला दे सकता है कि दादाके पास जाकर वह मधुमंगलको अपनी स्तुति सुना आवे।

विचित्र है हमारा कन्हाई और इतना विचित्र होकर भी अत्यन्त प्रिय है। यह जितने ऊधम करता है, वे ऊधम भी प्रिय ही लगते हैं मुझे।

अर्जुन-

अनेक बातें अनावश्यक होती हैं। उनकी ओर ध्यान देनेपर व्यर्थ मन खिन्न होता है। अब यही कितना उपहास्पद बात है कि सखा मुझे बूढ़ा दादा कहते हैं। हम सबमें आयुकी दृष्टिसे मधुमंगल सबसे बड़ा है; किन्तु उसकी बात नहीं की जानी चाहिये। मैया कहती है कि वह योगसिद्ध है। वह अपनी इच्छानुसार बना रहता है। पता नहीं यह कैसे होता है। वैसे भी वह ब्राह्मण है। वह तो हम सबके साथ खेलने ही वनमें आता है। उसके तो एक भी गाय नहीं है। एक बार व्रजेश्वर बाबाने उसे गायें दीं भी तो उन्हें उसी समय उसने महर्षि शाण्डिल्यको सौंप दिया।

हममें—हम गोपालोंमें सबसे बड़ा है दाऊ दादा। मैं उससे पूरे तीन महीने छोटा हूँ, फिर भी सब मुझे ही बूढ़ा कहते हैं। यह कन्हाई ही चपल है और यही सबको उपाधियाँ देता रहता है। इसीने मुझे बूढ़ा दादा कहना प्रारम्भ किया तो सब कहने लगे।

सब मुझे भले बूढ़ा दादा कहते हैं, इससे मैं कुछ बूढ़ा तो हो नहीं गया। इससे तो दो दिन भी मेरी आयु नहीं बढ़ी। ये सब कहकर प्रसन्न होते हैं तो मैं क्यों चिढ़ूँ? क्यों विरोध करूँ? मैया कहती है कि विरोध करनेसे, चिढ़नेसे ये और भी चिढ़ावेंगे।

दौड़ने, धूपने, खेलने-कूदनेमें मेरी रुचि कम है। मुझे यह कन्हाई खेलता अच्छा लगता है। मैं खेलमें लग जाऊँ तो गायें देखनेमें लगना पड़ेगा इसे, यही मैं नहीं चाहता। यह खेलता-कूदता, नाचता-उछलता अच्छा लगता है। मैं इसे तनिक दूरसे प्रसन्न, खेलमें लगा देखता रहूँ, यह मुझे बहुत प्रिय है।

मैं इसकी धूमधाममें भी सम्मिलित नहीं होता। हो सकता है कि मेरी इसी गम्भीरताके कारण ये सब मुझे बूढ़ा कहते हो; किन्तु कन्हाई तो बहुत नटखट है। आज ही आकर पूछने लगा—'बूढ़ा दादा, तू बाबा बनेगा?'

'किसका बाबा ?' बाबा तो किसीका कोई होता है, यह भी इसे पता नहीं। मैंने ही इसे कहा—'तेरा बाबा तो है' दूसरा कोई तेरा बाबा नहीं बनेगा।'

'मेरा नहीं, इस मधुमंगलका।' कन्हाई मधुमंगलको साथ ले आया था।

'बन जाऊँगा।' मधुमंगलके कोई बाबा तो जान नहीं पड़ता। मैंने सोचकर कहा 'किन्तु मैं तो गोप हूँ। तब इसे मेरी सब गायें चरानी पड़ेंगी।'

'तू इन शशकोंका बाबा बन।' मधुमंगल पता नहीं क्यों झल्ला गया। मैं कोई बलपूर्वक तो उसका बाबा बन नहीं रहा था। उसे गायें नहीं चराना तो मैं क्यों उसका बाबा बनूँगा।

'तू बन जा इसका बाबा।' मैंने कन्हाईसे कह तो दिया, पर मुझे बहुत झटपटा लगा। कन्हाई नन्हा-सा तो है, दुबला भी है। इतने बड़े और मोटे पेटके मधुमंगलका बाबा यह कैसे बनेगा ?

'यह लोमड़ीका बाबा बनेगा।' मधुमंगलने जब यह कहा, तब मैंने समझा कि ये सब तो परिहास कर रहे हैं। कन्हाई बहुत नटखट है, सबको चिढ़ा लेता है; किन्तु मुझसे तो यह परिहास कम ही करता है। मुझे चिढ़ाता भी नहीं है।

इस ब्रजयुवराजकी एक ही बात मुझे प्रिय नहीं है। यह चाहे जब खेलना छोड़कर इधर-उधर मुझे देखने लगता है। मैं गायें घेरता हूँ तो कभी-कभी इससे थोड़ी दूर भी जाना पड़ता है। गायें चरते-चरते कुछ दूर भी चली ही जाती हैं। पशु ही हैं, उन्हें कहाँ स्मरण रहता है कि उन्हें दूर नहीं जाना चाहिये। वैसे हमारे सब पशु चरते-चरते बीचमें सिर उठाकर पीछे अथवा समीप देख लेते हैं। उन्हें कन्हाई कुछ दूर दीखे तो चरना छोड़कर भागेंगे और इस कृष्णचन्द्रके पास दौड़ आवेंगे।

सब पशु कन्हाईको ही घेरे रहें, यदि मैं उनको रोकूँ नहीं। उन्हें तृण चरनेका तो स्मरण ही नहीं रहता। कन्हाईको भी तो खेलने-कूदनेको अवकाश मिलना चाहिये। ये पशु तो चाहते हैं कि वह इन्हींको सहलाता रहे।

दूर गये पशुको लौटाने और दौड़ते आते पशुको रोककर फिर चरनेमें लगनेको हाँक देनेका काम अत्यन्त आवश्यक है। मैं नहीं लगूँ इसमें तो दूसरे सखा लगेंगे। कन्हाई बीच-बीचमें मुझे ढूँढ़ता है और तब पास दौड़ा आता है—'बूढ़ा दादा, तू थक गया ! तू बैठ।'

इसका यही हठ मुझे प्रिय नहीं है। यह तो चाहे जब पल्लव बिछाने लगेगा—'इसपर सो जा। मैं तेरा पाद संवाहन करूँगा।'

'तू दाऊ दादाका पाद संवाहन कर !' मुझे इससे किसी प्रकार पिण्ड छुड़ाना पड़ता है। मैं कोई इसके समान सुकुमार हूँ कि थक जाऊँगा ? गोप-बालक गोचारणमें कहीं थका करता है और कहीं उसे पाद संवाहनकी आवश्यकता होती है।

'तुझे पैर दबाना है तो मेरे दबा !' मधुमंगल बिना कहे चाहे जहाँ पसर पड़ता है। यह तो गायें भी नहीं चराता-तब थकता कैसे होगा ? इसे पाद संवाहनकी आवश्यकता नहीं है। होती तो मैं ही इसके पैर दबा देता।

कन्हाई तो किसी भी वृषभको हाथ हिलाकर बुला लेता है। गाय, वृषभ सब उसके संकेतपर दौड़ आते हैं। वह कहता है—'मैं इसे तेरे पैरपर बैठा देता हूँ। तेरा पैर भली प्रकार दब जायगा।'

मुझे भी हँसी आ जाती है। मैं जानता हूँ कि मधुमंगल भाग खड़ा न हो तो कन्हाई सचमुच उसके पैरपर कोई वृषभ या गाय बैठा दे सकता है। यह चपल कहेगा तो वृषभ अवश्य बैठ जायगा। पता नहीं कैसे पशु भी इसकी बात समझते हैं।

यह कन्हाई जो खेल छोड़कर मेरी चिन्ता करता है, वही मुझे अप्रिय है। मैंने इसको कितना कहा, कितना समझाया कि मेरी चिन्ता मत किया कर; किन्तु यह मानता नहीं है।

इसका यह स्वभाव कोई आजका नहीं है। यह शिशु था तब भी बार-बार अपने समीपके सखाओंको देखता था। मैं तब भी चुपचाप बैठा रहता था। मुझे दस-पाँच पद भी दूर बैठा देखता तो घुटनों चलता सरक आता समीप। आकर सटकर बैठ जाता और मेरे शरीरपर, पैरपर, कन्धेपर,

मुखपर अपने नन्हे हाथ रखता। अनेक बार मेरी गोदमें अपना नन्हा सिर रखकर लेट जाता था भूमिमें ही और लेटकर मेरे मुखकी ओर देखता था।

गोष्ठमें इसके साथ जानेपर मेरे अङ्गमें कहीं गोबर लगा दीखता इसे तो यह अपने हाथसे उसे पोंछ देनाका प्रयत्न करता। यह दूसरी बात है कि इसके अपने हाथ गोबर सने होते थे और इसके प्रयत्नमें मेरे शरीरपर गोबर अधिक फैलता ही था। यह तो तब भी समझ नहीं पाता था कि गोबर छूटनेके स्थानपर अधिक क्यों फैल गया है।

बहुत भोला है यह कन्हाई। अब भी अनेक बार समीप आकर अपने धूलि भरे हाथसे मेरे मुखपर आया स्वेद पोंछने लगता है। लेकिन अब मुखपर धूलि लगते देखकर झट सावधान हो जाता है। अपने पटुकेसे उसे स्वच्छ करता है और अपनी असावधानीपर स्वयं हँसता जाता है।

इस कन्हाईको तो कुछ भी स्मरण नहीं रहता। यह चाहे जब हठ करता है मेरा लकुट उठानेका। मेरा भारी लकुट इसके सुकुमार हाथोंसे उठने योग्य है। लेकिन यह मचलेगा—'तू छोड़।'

यह दोनों करोंसे मेरा लकुट उठाकर प्रसन्न होता है। मैं क्यों कहूँ इसे कि इस प्रकार दोनों करोंसे लकुट नहीं उठाया जाता। दोनों करोंसे उठानेपर तो इसका मुख लाल लाल हो जाता है और स्वेदकण झलमलाने लगते हैं, एक करसे यह अपना नन्हा, पतला वेत्र लकुट उठाये रहता है, यही बहुत है।

'मैं गायें चराऊँगा।' यह हठ भी इसे बार-बार सूझती है। समझ ही नहीं पाता कि गाय हों या कपि, मृग हों या बछड़े, किसीको अपनेसे दूर भगा देना इसके वशमें नहीं है। यह तो अपना वेत्र-लकुट उठाकर हाँकना भी चाहेगा तो दूरके पशु भी इसके पास दौड़ आवेंगे। वे भी इसके और इसके लकुटको ही बार-बार सूँघेंगे।

यह जब पशुओंको हटाते, सहलाते थक जाता है और वे इसे एक पद भी चलने नहीं देते, तब कहता है—'बूढ़ा दादा! इन्हें हटा तो सही। ये तो चरने जाते ही नहीं हैं।'

मुझे तो लगता है कि ये कंस मामाके भेजे जो राक्षस आये अपने

व्रजमें, वे भी सोच-समझकर इस कन्हाईसे मरने ही आये थे। अवश्य कंस मामासे उन्होंने गिड़गिड़ाकर प्रार्थनाकी होगी—'हमें अब मरना है। हमें वृन्दावन भेज दो। वहाँ हम उस नन्दनन्दनके छूते ही फट् मर जायँगे। बस वह एक बार हमें छू ले।'

ऐसा ही कुछ नहीं होता तो इतने बुरे-बुरे, काले और बड़े-बड़े दाँतवाले राक्षसोंको कंस मामा क्यों भेजता हमारे यहाँ और वे राक्षस ही क्यों आया करते। एक-दोके मरनेपर तो उन्हें डरना था। वे कन्हाईके ही पास क्यों आते हैं ? क्या यही उन्हें मल्लयुद्ध करने योग्य लगता है ?

कन्हाई मेरा लकुट तो कठिनाईसे उठा पाता है, यह राक्षस कैसे मार दे सकता है ? वे मरने ही आते हैं। यह छूता है तो झटपट मर जाते हैं। पता नहीं राक्षसोंको मरनेकी क्या शीघ्रता पड़ी रहती है।

कन्हाई हमारा इतना सुकुमार है कि खेलनेमें भी थक जाता है। खेलमें भी इसे बचाना ही पड़ता है कि कहीं इसका कोई अवयव दबे नहीं।

वैसे यह डरता नहीं किसीसे भी। यह तो व्याघ्रके भी मुखमें कर डालकर उसकी जीभ सहलाता या दाँत छूता है। डरते हम-सब भी नहीं हैं। गोपकुमार होकर कोई डरेगा तो वनमें गाय कैसे चरावेगा; किन्तु राक्षस इतने कुरूप, इतने भयावने होते हैं कि उनसे डर लगता है। राक्षससे तो बड़े गोप भी डर जाते हैं। यह कन्हाई ही उनसे भी नहीं डरता। यह तो उनके पास भी ऐसे ही दौड़ जाता है, जैसे वे भी कोई वृन्दावनके पशु ही हों।

मैंने कोई राक्षस छूकर नहीं देखा। इतने बुरे लगते हैं राक्षस कि मैं उनमें किसीको कभी नहीं छुऊँगा। छूनेके लिए अपनी गायें हैं, वृषभ हैं, बछड़े हैं। इनको चाहे जितना सहलाओ। अपने इतने सखा हैं और यह कन्हाई है। मैं इसे स्पर्श न भी करना चाहूँ तो यह मानेगा। यह तो चाहे जब कण्ठमें भुजा डालकर लिपट जाता है।

कन्हाई जब कण्ठसे लिपट जाता है—ऐसा सुख कभी कोई और किसी प्रकार नहीं पा सकता; किन्तु कन्हाईको ऐसे लिपटना नहीं चाहिये। उसके अङ्ग कितने कोमल हैं। उसे मेरे कठोर शरीरसे लगकर दुःखता तो होगा

ही, लेकिन वह इसे मानता नहीं है। उसे कितना भी समझाओ, समझता नहीं है। हठी ऐसा है कि मना करो तो और अधिक लिपटता है। इसलिए भी मैं उससे तनिक दूर, तनिक पृथक ही रहना चाहता हूँ।

गायोंको सम्हालने, चराने, रोकनेमें यही एक सुविधा है कि मैं इस सुकुमार छोटे भाईसे तनिक दूर रह सकता हूँ। इतनी दूर रहना चाहता हूँ कि इसे देखता रह सकूँ। इसे क्रीड़ा करते देखते रहना ही मेरा सबसे बड़ा सुख है।

यह कन्हाई ही बीच-बीचमें चौंककर देखता है और देखकर दौड़ा आता है। यह तो इसका भी अवसर नहीं देता कि मैं किसी पशुको रोकनेका बहाना भी कर सकूँ।
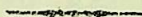
वरूथप—

अकेला वरूथप तो गोचारण करता नहीं, अपने व्रजके सब गोप बालक भी साथ रहें तो भी कोई बाधा नहीं; किन्तु कन्हाईका मैं क्या करूँ ? यह न किसीकी कुछ मानता है और न यही संकेत देता है कि क्या करनेवाला है। कठिनाई और भी है, वह यह कि इसे डाँटा भी नहीं जा सकता। इससे पृथक भी रहना सम्भव नहीं है।

सब गोप-गोपियोंकी, बरसानेकी बालिकाओंकी धारणा है कि गायें किधर जायँगी, यह निर्णय वरूथप करता है। यह धारणा मिथ्या भी नहीं है। निर्णय करता तो मैं ही हूँ; किन्तु महीनेमें दो दिन भी मेरा निर्णय सफल हो पावे तो मैं निर्णय करनेवाला बनूँ।

सबने मान लिया है कि वरूथप बहुत अभिमानी है। यह सीधे मुँह बात ही नहीं करता; किन्तु सीधे मुँह बात करके मैं क्या कहूँ किसीसे ? गोप, गोपियाँ, बालिकाएँ प्रायः प्रतिदिन बहुत आग्रहसे, बहुत निहोरा करके पूछते हैं—'लाला वरूथप, आज गायें किधर जायँगी ?'

मैं यह तो कह नहीं सकता कि—'कन्हाई जिधर ले जायगा, उधर जायँगी।' यह कहूँ तो उसे बाबा, भैया सब डाँटने लगेंगे। यह भी हो सकता है कि उसे गोचारणके लिए वनमें ही न जाने दिया जाय, तब वह उदास हो जायगा।

'मैं वहाँ खेलूँगा।' कन्हाई यही तो सबसे कहता है—'मुझे कहाँ गायोंके पीछे दौड़ना भागना है। दाऊ दादा है, भद्र है, सबसे छोटा तोक भी तो है। गायें तो वरूथप ले जाता है। विशाल, ऋषभ, अर्जुन, मण्डली, दण्डी आदि चराते हैं।'

कन्हाई झूठ कहता है, यह भी कैसे कोई कह देगा। गायें किधर जायँगी, यह निर्णय मेरे ऊपर ही रहता है, यह भी सत्य ही है। गायें हमी

सब चराते हैं; किन्तु कन्हाई जब जिधर चल देता है, गायोंको उधर जानेसे रोका जा सकता है ?

'दादा, हम सब भण्डीर बटके समीप खेलेंगे !' मैंने विपरीत दिशामें गायें ले जानेका भले निर्णय किया हो, जब कन्हाई आकर मेरे कन्धोंपर अपने कर रखकर मेरे मुखकी ओर देखता अनुरोध करता है तो मेरे समीप इसके अतिरिक्त और क्या उपाय रह जाता है कि मैं गायोंको भाण्डीर वटकी ओर चुपचाप हाँक दू ँ। कन्हाईके अनुरोध करनेपर भी कोई अस्वीकार कर सकता है क्या ?

कन्हाईकी बात मान लेनेमें मेरी केवल प्रीति ही नहीं है। प्रीति तो मुझमें है भी या नहीं, पता नहीं; किन्तु मेरी सुविधा है। मेरी विवशता है। गायें कन्हाईके पीछे ही जायँगी, यह निश्चित हैं और सायंकाल जब लौटनेका समय होगा, इन लाख-लाख गायोंको वरूथप घेर लेगा या गोप बालक ? यह तो कन्हाई ही है कि अपना पटुका घुमाकर या वंशी बजाकर गायोंको पुकार लेता है। यह शृङ्ग बजावे तो भी सब दौड़ी आती हैं।

कन्हाई न सम्हाले तो वरूथपसे गायें सम्हलेंगी ? मैं अपनी शक्ति सामर्थ्य जानता हूँ। गोप, गोपियोंके सम्मुख अकड़ तो इसलिए लेता हूँ कि अपनी विवशता बतला नहीं सकता।

इस कन्हाईने वरूथपको बड़ा बना रखा है। यह जिसे बड़ा बनावे, वह वड़ा। यह व्रजराज कुमार और वरूथप एक सामान्य गोपका बालक। कन्हाईके कारण श्रीव्रजेश्वरी मैया, श्रीव्रजराज और बरसानेके अधीश्वरतक वरूथपका निहोरा करते हैं। जैसे वरूथप भी कोई बड़ा अधिकारी हो गया है।

लेकिन हमारा यह कन्हाई है ही ऐसा कि इसके समीप आकर किसीको नहीं लगता कि वह दीन, दरिद्र अथवा किसी प्रकार हीन है। गोप बालकोंमें एक भी नहीं मिलेगा, जो अ नेको छोटा मानता हो। सबसे अबल, सबसे सुकुमार, सबसे भोला यह कन्हाई। यह सबके निहोरे ही करता रहता है।

'मैं नहीं खेलता तेरे साथ।' बालक ही तो हैं हम सब। हममें चाहे

जो रूठ जाता है—'तेरे दस गायें अधिक हो गयीं तो बहुत फूला फिरने लगा तू ? अपनी गायें पृथक कर ले । मैं अपनी गायें लिये जाता हूँ ।'

ऐसा विवाद तो बालक करते ही रहते हैं । यह कन्हाई नटखट है । चाहे जिसे चिढ़ा देता है । खेलमें हारनेपर दाव दिये बिना भाग खड़ा होता है । श्रीदामाको तो खिझाता ही रहता है ।

जिसे खिझावेगा, वह उलटी-सीधी तो इसे सुनावेगा ही; किन्तु मुखसे श्रीदामा या कोई कुछ कहले, सब यह जानते हैं कि अपनी गायें पृथक कर लेनेकी बात ही की जा सकती है । लाठी लेकर गायोंको हाँकने भी लगा जा सकता है; किन्तु गायें तो इसके आस-पास ही बनी रहेंगी । चाहे जिधर हाँको, ये दौड़कर, घूमकर इसके पास आ जायँगी ।

'तू ले जा अपनी गायें !' कन्हाई अकड़ जाय और कह दे तो कोई क्या कर लेगा इसका ? यह क्या जानता नहीं कि गायें अपना-पराया इसके सम्मुख भूल जाती हैं । यह जिस गायको पुकारेगा, वही दौड़ आवेगी । गोपाल तो यही है । हम-सब तो केवल गोप हैं ।

कभी किसीसे तो यह अकड़ा नहीं । किसी सखाको तो इसने विवश नहीं बनाया । यह इतना प्रेममय कि सखाके रूठनेपर अकड़ना जानता ही नहीं । यह तत्काल उसे मनानेमें लग जाता है ।

'तू मुझसे रूठ मत, भले मुझे पीट ले ।' कन्हाई जब किसीके कण्ठमें भुजाएँ डालकर किसीसे कहेगा, कोई रूठा रह सकता है ? यह तो कहता है—'मैं तो तेरे भरोसे, तेरे साथ खेलने ही वनमें आता हूँ । तुम सब ही तो मुझे सम्हालते हो । तुझसे पृथक मैं रह नहीं सकता ।'

बात तो उलटी है । कन्हाईसे पृथक हममें कोई रह सकता है, यही सोचनेकी बात नहीं है । श्रीदामा इतना इससे झगड़ता, उलझता है; किन्तु इससे दो-चार क्षण भी तो पृथक नहीं रह सकता ।

उस दिन वह सखा बहुत रूठ गया । बहुत बिगड़ा था । उसे इस नटखट कन्हाईने खिझाया भी बहुत था । वह जानता था कि गायें तो अपनी वह हाँककर ले नहीं जा सकता । अपना लकुट उठाकर अकेला रोता लौट पड़ा था घर जानेको ।

कन्हाई दौड़कर उससे लिपट गया और इस कमललोचनके नेत्र भर आवें—किसीके बसका है इसके नेत्रोंमें अश्रु देखना। उलटे वही अपने पटुकेसे इसके मुख-नेत्र पोंछने लगा था।

उसी सायं वनसे लौटकर मैं उस सखासे मिला। अकेले मैं उससे वनमें मिलनेका अवसर ही नहीं पासका। वह फिर दिन भर कन्हाईके साथ ही लगा रहा था। मैंने उससे अकेलेमें पूछा—'तू रूठकर घर आ रहा था? घरपर तेरी मैया या बाबा तुझे डाँटते या प्यार करते?'

कन्हाईसे कोई लड़ता भी है, यह हमारे घरोंमें कोई सोच भी नहीं सकता। हम बालक परस्पर भले लड़ झगड़लें; किन्तु हमारे माता-पिताको यह पता लगे तो पिटाई हमारी ही होनी निश्चित है। इसीसे तो मेरा बाबा कहता है—'वरूथप, एक बात गाँठ बाँध लें कि गोपोंमें दो मत नहीं होते। हममें अपना-पराया नहीं चलता। तू किसी भी बालकसे झगड़ेगा तो अपराध तेरा ही माना जायगा। कोई गोप अपने बालकका पक्ष लेनेकी मूर्खता कभी नहीं करता।'

'वरूथप दादा! वह बात फिर मत कह।' वह तो मुझसे लिपटकर फूट-फूटकर रोने ही लगा—'उसे स्मरण आते ही लगता है कि मेरा हृदय फट जायगा।'

उसीने रोते-रोते बतलाया—'क्रोधमें मैं कन्हाईसे झगड़ पड़ा। क्रोधमें ही पता नहीं क्या क्या बक गया और लौट पड़ा। मैं कहाँ जाऊँगा, मुझे कुछ पता नहीं था। मेरी अपनी ही गायें मेरे साथ नहीं लौटनेवाली थीं तो कोई सखा मेरा साथ देगा, यह आशा मैं किस बलपर करता। मेरा सगा भाईतक तो मेरे साथ लौटा नहीं।'

उसने कहा—'मुझे मैया, बाबा या कोई स्मरण नहीं आया। आता भी तो मैं इनमें किसीके पास नहीं आनेवाला था। कन्हाई छूट गया—यह मनमें आते ही लगा कि सब ओर घोर अन्धकार हो गया है। मुझे न वृक्ष दीखते थे, न पथ, न पृथ्वी। मैं चल भी रहा होऊँ तो मुझे पता नहीं। सब घूमता लगता था। जैसे बिना सत्ताका मैं कुछ वायु जैसा बिना सत्ताके भीषण-अदृश्य तत्त्वोंकी भीड़में उलझ गया हूँ। मैं तो गिरने ही वाला था।

कन्हाईने आकर पकड़ न लिया होता तो मैं एकाध पलमें ही गिर जाता और तू क्या समझता है कि गिरकर मैं फिर उठ पाता ? मैं मरकर ही गिरनेवाला था वहाँ ।'

बात केवल उस एक सखाकी नहीं है। हम-सबकी ही यही अवस्था है, मैं जानता हूँ। कन्हाईसे रूठकर नहीं रहा जा सकता और कन्हाई तो किसी सखासे कभी रूठता मुझे दीखा नहीं। यह चिढ़ा ले, खिझाले; किन्तु रूठा नहीं करता। इसे रूठना नहीं आता। यह तो रूठेको मना लिया करता है।

मुझे इसने कभी खिझाया भी नहीं है। मुझे जबसे स्मरण है, तबसे मुझे यही स्मरण है कि यह मेरा सम्मान ही करता रहा है। इसने एक दिन भी ऐसा कुछ नहीं किया कि मुझे लगे कि मैं एक सामान्य गोपकुमार हूँ। अपने ताऊ-चाचाके सब लड़कोंसे अधिक ही यह मुझे मानता है।

यह घुटनों सरकने लगा, तबसे मुझे इसका स्मरण है। व्रजेश्वरी मैया तो देवी हैं। वे सभीका बहुत सम्मान ही करती हैं। मेरी मैया मुझे लेकर उनके यहाँ जाती थी तो वे मेरी मैयाके पैर छूती थीं और मेरे घर चुपचाप उपहार तो पता नहीं कबसे भेजती आ रही हैं।

कन्हाई मुझे देखते ही ऐसा खिल उठता था जैसे इसे बहुत अद्‌भुत कुछ मिल गया हो। सबको छोड़कर मेरे पास घुटनों सरकता दौड़ा आता था। मुझे छोड़ना ही नहीं चाहता। जबतक इसे नींद न आ जाय, मैया मुझे घर नहीं ले जा पाती थी और मुझे ही कहाँ इसके समीपसे हटना प्रिय था। मैया मुझे भी सोतेमें ही उठाकर घर ले आती थी।

कन्हाईको कुछ मिले, पहिले मुझे देना चाहता है। मधुमंगल कई बार कहता भी है—'कनू" तू इतना भी नहीं जानता कि पहिले ब्राह्मणको अर्पित करके तब कोई वस्तु परस्पर बाँटी या खायी जाती है ?'

यह नटखट उसे तो अंगूठा दिखा देता है और हाथका पदार्थ मेरे मुखमें दे देता है। शिशु था तो मेरे पहुँचते ही अपने खिलौने एक-एककर लाकर मुझे दिया करता था। इसे तो बस देना ही देना आता है।

वनमें वह राक्षस बगुला आ गया था। मुझे पीछे बहुत दुःख हुआ। दूसरे सब बालकोंके साथ मैं भी उसे देखकर डर गया और दूर खड़ा रह गया। उसने कन्हाईको निगल लिया तब उसे लाठी भी नहीं मारी जा सकती थी। फिर तो लाठी उठानेका समय ही नहीं मिला। उसे कन्हाईने ही चीर फेंका।

कन्हाई हँस देता है जब मैं कहता हूँ—'अब कोई राक्षस आवे तो तू उसके पास मत जाना। मुझे केवल बतला देना।'

यह नटखट मेरी यह बात मान ले तो राक्षसोंका मैं ही कचमूर कर दिया करूँ; किन्तु यह मानेगा, इसीकी आशा मुझे नहीं है। इसको भी उन्हें मारनेमें आनन्द आता लगता है, अतः मैं इसकी क्रीड़ामें बाधा नहीं दूँगा। मुझे तो यही चाहिये कि हमारा यह ब्रजराजकुमार प्रसन्न रहे।

मण्डली–

अपना भद्रसेन दादा अग्रणी है और उसके संकेतका पालन करते रहो तो कन्हाई अपने सर्वथा अनुकूल। फिर न तो यह ब्रजराजकुमार कभी चिढ़ावेगा और न कोई सेवा अस्वीकार करेगा। यह सीधा-सा उपाय मुझे अच्छा लगता है। भद्रसेन दादा संकेत भी क्या करेगा, उसे अपनी सेवा तो लेनी नहीं रहती। उसका तो गिरा पटुका भी उठाकर उसे दो तो ऐसे देखेगा जैसे कोई बहुत अकरणीय कर दिया तुमने वह तो केवल कन्हाईके लिए कुछ लाने या करनेका संकेत करता है और कन्हाईके लिए कुछ करनेका सौभाग्य तो सब चाहते हैं।

अपनी दुर्बलता मैं जानता हूँ। गोपकुमारकी सावधानी कितनी और उसमें बुद्धि कितनी। बहुत चाहता हूँ कि कन्हाईको कब क्या अच्छा लगेगा, स्वयं समझ लिया करूँ; किन्तु मुझसे इतनी सावधानी रखी कहाँ जा पाती है। यह तो भद्रसेन दादा है कि कन्हाई खेलमें भी लगा हो तो भी समझ जाता है कि उसे प्यास लगी है या वह अलकोंमें सजानेको कोई पुष्प गुच्छ चाहता है।

कन्हाई तो बहुत ही भोला है। नन्हा था तब भी समझ नहीं पाता था कि अङ्गोंमें अङ्गराग लगाया जाता है या कुंकुम अथवा गोबर। यह तो अपने या किसी सखाके कपोल अथवा वक्षपर गोबरकी रेखाएँ खींचने लगता था। किसीकी अलकोंमें धूलि डालता था। मैयाका अलक्तक पा जाता तो उससे अपना पूरा मुख रंग लेता था। रंग तो देता था दाऊ दादा और भद्रसेन दादाका भी मुख।

अलक्तकसे रंगा कन्हाईका लाल लाल मुख—मैया बहुत हँसती और जब कहती थी—'तू कपि हो गया है ?' तब यह भी दोनों कर आगे करके कपिके समान मुख बनाने लगता था।

कन्हाई मेरा छोटा भाई है। वैसे तो हम सब सखा परस्पर भाई ही

हैं; किन्तु भद्रसेन दादा का अनुगमन मुझे शैशवसे प्रिय है। मेरा नाम भी मण्डली भद्र है, पर सब मुझे मण्डली या मण्डल ही कहते हैं। भद्रसेन दादा बहुत छोटेसे मुझपर स्नेह रखता है और उसके साथ लगकर मैं कन्हाईकी समीपता पा जाता हूँ।

कन्हाई तो सबका है। मुझपर बहुत अधिक स्नेह है उसका लेकिन मैं ही बहुत संकोची हूँ। मुझे चुपचाप गायें चराना और भद्रसेन दादा कुछ संकेत करदे तो वह कर देना अच्छा लगता है। बहुत उछल-कूद और चिल्लाना मुझे अच्छा नहीं लगता। किसीको प्रतिद्वन्दिता ही करनी हो तो मेरे साथ लाठी चलाकर देख ले।

'तू बुद्धू है!' भद्रसेन दादा अनेक बार झिड़क देता है। तब झिड़क देता है जब मैं उसका संकेत न समझकर कोई दूसरा ही अटपटा काम करने लगता हूँ; किन्तु मुझे तो भद्रसेन दादाकी झिड़की बहुत प्रिय लगती है। मुझे उसके झिड़कनेका कभी बुरा नहीं लगा।

'तू बुद्धू है!' यह तो भद्रसेन दादा की बड़ी प्रिय झिड़की है। वह तो कन्हाईको भी कह देता है—'क्योंकि तू बुद्धको उत्पन्न हुआ।'

'आ, तू मेरे बराबर हो गया।' मुझे भद्रसेन दादाने झिड़का तो कन्हाई खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने मुझे गले ही लगा लिया—'यह मुझे भी ऐसा ही कहता है। अब हम दोनों बुद्धू मिल जायँगे तो इससे, सबसे बड़े बुद्धिमान हो जायँगे।'

'बुद्धको उत्पन्न होनेसे तू तो बुद्धिमान है।' मैंने कन्हाईको कहा। हमारा ब्रज नवयुवराज बुद्धू तो हो ही नहीं सकता। कन्हाईको तो इतनी युक्तियाँ आती हैं, किसी मुनिको भी नहीं आती होंगी। इससे चाहे जो पूछ लो, सब बात बता देता है।

'मुझे नहीं बनना बुद्धिमान।' कन्हाईने मुँह बना लिया। यह कन्हाई कब क्या पसन्द करेगा—यह केवल भद्र दादा ही ठीक समझ पाता है।

कन्हाई अल्हड़ भी बहुत है और इसे कुछ भी स्मरण नहीं रहता।

यह तो अपना पट्का, अपना लकुट चाहे जहाँ डाल देता है और तब मुझसे ही पूछता है—'तूने मेरा लकुट लिया है ?'

अब इससे पूछो कि मेरा भारी लकुट इससे उठेगा ? यह बिना देखे ही मेरा लकुट उठाने दौड़ता है—'यह रहा मेरा लकुट !'

'तू उसे मत उठा !' मैं रोकूँ नहीं तो यह अपने कोमल कर मोड़ लेगा या उठानेके प्रयत्नमें लकुट पटक लेगा किसीके ऊपर या इसके अपने ऊपर भी तो लकुट गिर सकता है। मुझे इस चपलको सम्हालना रहता है बराबर। मैं मना करता हूँ तो प्राय: मान जाता है; क्योंकि मैं जानता हूँ कि इसे आश्वस्त करना होता है—'मैं तेरा लकुट ढूँढ़ लाता हूँ।'

कन्हाई तो किसीके भी पट्केको उठाकर कन्धेपर रख लेता है। इसे पीत, नील, हरित, श्वेत पट्कोंमें भी भेद नहीं लगता। मेरे ही कन्धेपर दाऊ दादाका पट्का सजाने लगा। मैंने पूछा—'क्या करता है ?'

'तू मेरी प्रशंसा तो करता नहीं।' मुँह बनाकर बोला—'अपना पट्का तू दादाके पास डाल आया था। मैं उठा लाया हूँ और तुझे दे रहा हूँ तो उलटे पूछता है ?'

'यह मेरा पट्का है ? मैं नील पट्का लेता हूँ ?' मैं हँस ही तो सकता था—'तू दाऊ दादाका पट्का उठा लाया।'

'दाऊ दादाका है ?' अब यह पट्का लेकर भागा जायगा। इसे इतना भी स्मरण नहीं रहता कि मेरा पट्का श्वेत है।

'तेरा पट्का कहाँ गया ?' इस समय इसे मेरे पट्केकी धुन है। इसे जब जो धुन चढ़ जाय, उसे तो पूरी करेगा ही। 'कौन ले गया तेरा पट्का ?'

मैं न बतलाऊँ तो यह फिर किसी दूसरेका पट्का उठा लावेगा। किसी गाय, कपि या बछड़ेका नाम ले लूँ तो दौड़ा-दौड़ा उसे ढूँढ़ता फिरेगा और उसीसे पट्का पूछने लगेगा। इसे दौड़ना थकना तो नहीं चाहिये। मैं इसे खिझाता भी नहीं हूँ। मुझे तो यह बहुत सुकुमार, बहुत स्नेहमय लगता

है। किसी सखाके कन्धेपर पटुका न देखकर इतनी चिन्ता दूसरा कोई करेगा ? मैं इसे दिखा देता हूँ कि पटुका मैंने सम्हाल कर शाखापर रखा है।

'तू यहाँ बैठ।' कन्हाई जब किसलय या अपना पटुका ही बिछाकर हाथ पकड़ता है बठानेके लिए तभी मुझे घबड़ाहट होती है। इसका कुछ ठिकाना नहीं कि यह उस समय पूजा करना चाहता है या पाद संवाहन।

'भद्र दादा !' कन्हाईको धुन चढ़े और यह कसकर पकड़ले तो इससे हाथ छुड़ाकर भागना भी कठिन है। यह कर छुड़ानेपर गिर सकता है। पीछे भाग सकता है। ऐसी दशामें भद्र दादाको पुकारना ही एक मात्र छुटकारेका उपाय है।

'इसको जाने दे !' भद्र दादा मेरी कातरता समझता है। वही मुझे ऐसी कठिनाइयोंसे बचाता है। कन्हाईको समझा लेना उसे बहुत अच्छा आता है। वह कह देगा—'इसे तो वह दूर गयी बछड़ी लौटा लाना है ! चल, हम दोनों दाऊ दादाको लावें और यहाँ बैठावें।'

'मण्डल, दौड़ तो झटपट।' भद्र दादा मुझे आदेश देनेमें भला कभी क्यों हिचकेगा—'उस बछड़ीको लौटा ला।'

वह तो यह भी कह दे सकता है—'उस कपि या शशकको भगा दे। देख, वह तोकके पटुकेसे खेलनेमें लगा है। तोकका पटुका ही मलिन बना रहा है।'

ये मृगशावक, शशक, गिलहरियाँ और कपि शिशु बहुत ढ़ीठ हैं। ये सब तो बैठ जाओ तो अङ्कमें ही उछल-कूद करने लगते हैं। पटुका नीचे रखा हो तो गिलहरियाँ उसमें आँखमिचौनी खेलने लगती हैं।

ये सब कभी कन्हाईसे झगड़ लेते हैं। इनमें किसीको भूख लगे तो न वह वृक्षोंके फल खाना चाहता और न किसीके छीकेमें मुख डालता। वह कन्हाईके वस्त्र खींचेगा। इन सबोंको भी हमारे साथ ही कलेऊ करनेकी धुन हो गयी है।

उस दिन हम सब खेलनेमें लगे थे। मेरी ही दृष्टि गयी। मुझे तो

अच्छा लगा कि एक गिलहरी मेरे छीकेमें घुसी। यह तो भद्रसेन दादाने पीछे बतलाया कि वह बहुत भूखी होगी। हम लोगोंके पास पूँछ हिला-हिलाकर देरतक चींचीं करती रही थी। किसीने उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। हम सब उछलने-कूदनेमें लगे थे। एक दूसरेको दौड़ा रहे थे। कोई बैठा भी नहीं था कि वह उसके समीप जाकर उसका वस्त्र खींचकर संकेत कर सके।

मैंने उसे छीकेमें घुसते देखा तो भद्रसेन दादाको दिखलाया। दादाने तो मुखपर तर्जनी रखकर मुझे चुप रहनेका संकेत कर दिया। लेकिन इतनेमें कन्हाईने भी देख लिया। वह भी मेरे साथ सटकर खड़ा होगया। हम तीनों देखने लगे कि वह करती क्या है।

गिलहरी छीकेके भीतर बैठकर भली प्रकार पेट भर सकती थी। वह उसमें-से कुछ अपने बच्चोंके लिए भी ले जा सकती थी। उसने तो यह कुछ नहीं किया। बस एक छोटी पकौड़ी मुखमें उठाकर छीकेसे निकली और दौड़ती हम लोगोंकी ओर ही आने लगी।

'तू इसे खाना चाहती है?' मुझे बहुत दया आयी। बेचारी भूखी है और चोरी भी नहीं करना चाहती। पकौड़ी लेकर दिखाने आ रही है कि वह इसे खाले? मैंने वह तनिक दूर थी तभी कह दिया—'इसे खा ले और जितना चाहे, छीकेमें-से ले ले।'

मेरी बात पता नहीं उसने सुनी या नहीं। सुनी भी हो तो समझनेका प्रयत्न ही नहीं किया। वह तो सीधे आयी और कन्हाईके सामने घासपर पकौड़ी डालकर उसकी कछनीका छोर खींचने लगी। छोर खींचती और पूँछ हिलाकर चींचीं करती।

'तू बैठ जा।' भद्रसेन दादाने कहा। कन्हाईके साथ वह भी बैठ गया और मैं भी।

गिलहरीने झटपट पकौड़ी उठायी और कन्हाईकी गोदमें चढ़ गयी। उसने पकौड़ी कन्हाईकी हथेलीपर धर दी।

'तू खा!' कन्हाई उसके मुखके समीप पकौड़ी ले गया। वह तो मुख हटाकर उछल गयी और और पूँछ पटक-पटककर पूरे जोरसे चींचीं करने लगी।

'यह तुझसे झगड़ने आयी है।' भद्रसेन दादा बहुत शीघ्र इन सबके संकेत समझ लेता है। उसने कहा—'यह कहती है कि तू भूखा है और यह भी भूखी है। अब खेल छोड़कर भोजन कर। यह तेरे बिना अकेली नहीं खायगी।'

बात दादाकी ही ठीक थी। हमने सब सखाओंको पुकार लिया और अपने-अपने छीके उठाये। उस गिलहरीने तो फिर उस पकौड़ीको सूँघा ही नहीं। वह आकर मेरी ही गोदमें बैठ गयी। उसे अब मोदक खण्ड मिलनेवाला था तो पकौड़ी क्यों छूती। भोजनके लिए उसे भी आसन चाहिये। हम सब भले घासपर या रेणुकामें बैठें, वह तो किसीकी गोदको आसन बनाती है।

हमारा कन्हाई इन पशुओं, पक्षियोंका इतना अपना है कि इससे गिलहरी ही नहीं, शशक, मयूर, सारस, हंस, कपि, गायें, बछड़े, मृग आदि सब झगड़ लेते हैं। यह सबको स्नेह देता है, सबका मान रखता है। सबकी रुचि पूरी करता रहता है।

मैं इसके ताऊका पुत्र हूँ। यह मेरा भाई है। मुझसे छोटा है। मैं इसके साथ ही लगा रहता हूँ। बहुत छोटा था तबसे इसके साथ ही रहा हूँ। दिन भर इसके साथ और रात्रिमें भी इसके पास सो जाता था। मैया मुझे सोतेमें उठा ले जाती थी। लेकिन मैं नहीं जान सका कि यह हमारा व्रज नवयुवराज कोई रुचि भी रखता है या नहीं। यह अपनी ओरसे अपने लिए कुछ चाहता मुझे कभी नहीं लगा।

'मैं लूँगा। मुझे यह चाहिये ही।' हमारा कन्हाई ऐसे तो मचलता ही रहता है; किन्तु वह पदार्थ इसे मिलता है तो उसे दूसरेको देने दौड़ता है। इसे तो दूसरेकी रुचि पूरी करनेमें ही आनन्द आता है। दूसरोंकी—पशु-पक्षियोंतककी रुचि रखनेमें ही यह सदा लगा रहता है। दूसरोंकी रुचि रखनेसे ही इसे अवकाश नहीं है।

दण्डी-

वरूथपके साथ लगे रहना है तो दण्ड सुदृढ़ ही रखना पड़ता है और उसे सदा सम्हाले भी रहना पड़ता है। वैसे भी मेरा नाम दण्डभद्र है। भले सब दण्डी कहते हैं; किन्तु मुझे अपनी लाठीपर गौरव है।

हमारी गायें क्या थोड़ी हैं और इन सहस्रश: गायोंको सम्हाले रहना क्या सरल है। किसी-न-किसी दस-बीस गायों, बछड़ियों, वृषभोंको आनन्दमें उछलने-कूदनेकी धुन चढ़ी ही रहती है। जब वह कूदने लगेंगी तो उनके कानमें वायु भी भरेगी ही और जब पशुके कानमें वायु भरती है तो उसे केवल दौड़ना सूझता है। वह इधरसे उधर दौड़ता चला जाता है। दूसरे पशुओंको भी उसकी मस्तीकी छूत लगती है। ऐसी सौ-दोसौ गायें दौड़ने लगती हैं तो उन्हें सम्हालना सरल रहता है ?

वरूथप अकेला तो कुछ कर नहीं सकता। सच बात यह है कि हम सब मिलकर भी गायोंको आनन्दकी मस्तीमें आनेपर सम्हाल नहीं सकते। उन्हें एक ओरसे रोको तो दूसरी ओर भागेंगी। उन्हें भी हमें छकानेमें सम्भवत: आनन्द आता है। उन्हें सम्हाल लेना केवल कन्हाईके वशका है। वह जिस पशुका नाम लेकर पुकार लेगा, वह सीधा उसके पास दौड़ जायगा और उसीको सूंघता खड़ा रहेगा।

यही वरूथपको ठीक नहीं लगता। वह कहता है—'दण्डी, एक भी गाय कन्हाईके पास दौड़ गयी तो सब दौड़ेंगी। फिर सबको वहाँसे हटाना कठिन हो जायगा। ये हमारे व्रज-युवराजको थका देंगी। वह इतना भोला है कि इनपर हाथ फेरते-फेरते उसके हाथ दुखने भी लगें तो उसे पता नहीं लगेगा।'

हम सबकी समस्या यह नहीं है कि कोई गाय दूर चली जायगी या भटककर कहीं वनमें रह जायगी। ऐसा हो भी जाय तो सायंकाल घर लौटते समय जब कन्हाई शृङ्ग फूँकेगा और अपना पटुका चारों ओर घुमावेगा

ऊँचेपर चढ़कर तो कोई पशु कितनी भी दूर हो, पूँछ उठाये पूरे वेगसे दौड़ा आवेगा। समस्या इससे उलटी है। गायें कन्हाईके पास न दौड़ आवें, यह सम्हालते रहना है।

गायें तो अपने चरनेकी भी सुध नहीं रखतीं। कन्हाई तनिक खिलखिलाकर हँसा, उच्चस्वरमें बोला तो चरना छोड़कर सब पशु मुख उठा लेते हैं। कान खड़े कर लेते हैं कि कहीं उनका यह गोपाल उन्हींको तो नहीं बुला रहा है। ऐसे समय हम सबको विशेष सावधान रहना पड़ता है। मैं तत्काल अपना दण्ड उठाकर पशुओंको ललकारता हूँ कि वे चरनेमें लग जायँ। ऐसे समय कोई गाय, बछड़ी या वृषभ पीछे मुड़कर दौड़ लगा दे सकता है और एक बार दौड़ पड़ा तो उसे रोकना बहुत कठिन हो जाता है। फिर कोई एक ही तो दौड़ेगा नहीं। एक दौड़ा तो सब पूरे वनमें दौड़ा-दौड़ मचा देंगे।

गायें पूज्य हैं। इन्हें मारा नहीं जा सकता; किन्तु ये सब हमारे कन्हाईको खेलने भी न दें, उसे घेर लिया करें, यह भी तो इन्हें बार-बार नहीं करने दिया जा सकता। अतः हम सबको लाठी उठाकर इन्हें धमकाना-दौड़ाना तो पड़ता ही है। इन्हें उच्चस्वरसे ललकारते रहना पड़ता है।

हमारे पशु भी वनमें घूमने ही आते हैं। इनका उदर तो वन आनेसे पूर्व ही भर गया होता है। वनमें आकर ये पहिले भरपूर उछले कूदेंगे, यह निश्चित है। उछल-कूदकर थक जायँगे तब खड़े रहेंगे या कहीं भी बैठ जायँगे और रोमन्थन करते रहेंगे। ये रोमन्थन करने लगते हैं तब हम सब निश्चिन्त होकर खेल सकते हैं।

कन्हाईको मना नहीं किया जा सकता। वह समझता ही नहीं कि किसी गायको वह सहलाने लगेगा या पुचकारेगा तो सब उसके पास दौड़ आवेंगी। सब सिर उठाये एक दूसरीसे ठेलमठेल करती चारों ओर ठस जायँगी और उसे हिलनेको भी स्थान नहीं रहने देंगी।

'दण्डी दादा! तू इनको हटा।' जब घिर जायगा तब पुकारेगा। मना करूँ तो सुनता नहीं है। अब सहस्र-सहस्र ठसाठस एकत्र धक्का-धुक्की

करती गायोंके समूहमें भीतर घुस जाना और उन्हें हटाना कोई साधारण काम है। मैं अकेला इसे कैसे कर सकता हूँ ?

हमारे पशुओंमें कोई सींग भी नहीं हिलाता। मैं उन्हें ऐसे समय दण्ड उठाकर धमकाता हूँ तो सब सिर उठाकर मेरा दण्ड ही सूंघने लगती हैं। मुझे सूंघती हैं और अनेक बार सिर दोनों ओर हिलाती उलहाना देती हैं कि उन्हें मैं क्यों हटा रहा हूँ।

गायोंको ठेलठालकर हटाना बहुत कठिन काम है। एकको हटाओ एक स्थानसे तो दूसरी दो वहाँ घुस पड़ती हैं और मुझे भी भीतर ठेल ले जाती हैं। जिसे हटाओ, वह भी तनिक इधर-उधर हिलडुलकर आस-पास ही बनी रहती हैं और ठेलमठेल करती रहती हैं।

'तू अपना दण्ड उठा !' कन्हाई ही कहाँ कम नटखट है। गायें मेरा दण्ड सूंघने लगती हैं तो तालो बजाकर हँसता है। मुझे झल्लाहट भी होती है और हँसी भी आती है। यह अपने तो सब गायोंको बुला लेता है और हँसता है। अब इसे यह भी स्मरण नहीं कि मैं इसीकी पुकारपर इसे इस घेरेसे छुटकारा देनेमें लगा हूँ। मैं हटना चाहूँ तो गायें मुझे कहाँ रोकती हैं; किन्तु इसे तो हिलनेका भी अवकाश नहीं छोड़ा है सबने। इसे इस स्थितिमें तो नहीं छोड़ा जा सकता।

'दण्डी दादा, तू थक गया ?' कन्हाईको कितना भी समझाओ कि गोपकुमार इतने सामान्य कामसे थका नहीं करते, इसकी समझमें कैसे आवे। यह स्वयं तो नवनीत सुकुमार है। तनिक खेलमें लगनेपर, थोड़ा दौड़नेपर पिघलने ही लगता है। इसके शशि मुखपर स्वेदकी बड़ी बूँदें झलमलाते विलम्ब नहीं होता। अतः यह समझता है कि दूसरे भी इसीकी भाँति थक जाते हैं। झट पटुकेसे मुख पोंछने आ जायगा समीप। कमल पत्र लेकर वायु ही करने लगेगा।

'मैं इतनी शीघ्र नहीं थकता।' मैं इसीसे इससे थोड़ी दूर ही रहना चाहता हूँ, जिससे यह मुझे ही सेव्य न बना ले। यह यों किसीकी भी सेवामें जुटनेको उद्यत ही रहता है।

'तू दण्डी है, तेरा दण्ड बहुत सुन्दर है इसलिए?' यह कन्हाई चाहे जब चाहे जैसी उलटी सीधी बातें करने लगता है—'मैं भी दण्डी बन जाऊँगा। इससे भी मोटा दण्ड मेरे लिए ला।'

'ऐसे दण्ड लेनेसे कोई दण्डी नहीं बन जाता।' मैंने समझाया इसे—'दण्ड तो सब गोप बालकोंके पास है। वरूथपका दण्ड ही मुझसे भारी है।'

'तब तू दण्डी कैसे बना?' कन्हाई पूछता ही ऐसे है कि किसीको भी हँसी आवे।

'मुझे ठीक तो पता नहीं है।' मैंने सच्ची बात कही—'सुना है कि मैं छोटा था तो अन्नप्राशनके दिन मैंने सब वस्तुओंमें-से नन्हा दण्ड ही उठाया था। इससे मुझे सब दण्डी कहने लगे।'

'मेरा भी अन्नप्राशन करा। मैं भी दण्ड ही उठाऊँगा।' कन्हाई कुछ समझता ही नहीं। यह तो अपनी धुनकी बात ही करता जायगा।

'अन्नप्राशन कोई इतने बड़े बालकका होता है।' मैंने इसे बतलाया—'अन्नप्राशन तो तेरा भी हुआ ही होगा। जब बालक बहुत छोटा होता है, घुटनों चलता है, तब उसका अन्नप्राशन होता है।'

'तू मुझे बहुत छोटा बना दे। मैं तुझसे छोटा तो हूँ।' कन्हाईको अपनी धुन है—'घुटनों तो देख मैं अब भी चलता हूँ।'

यह कन्हाई भी विचित्र है। झट भूमिपर घुटनोंके बल होकर चलने लगा। मुझे तो बहुत आनन्द आया। ऐसे तो हम-सब जब वृषभ बननेका खेल खेलते हैं, तब चलते ही हैं।

'मुझे छोटा बनाना नहीं आता।' मैंने कहा—छोटा तो मैया बनाती है और अन्नप्राशन भी बाबा कराता है। मैं कैसे अन्नप्राशन करा सकता हूँ।'

कन्हाई कहता है—'मैं आज ही मैयासे कहूँगा कि मुझे छोटा बना दे और बाबासे कहकर मेरा अन्नप्राशन करा। मैं दण्ड उठाकर दण्डी बनूँगा।'

मुझे पता है कि कन्हाई अभी आध घड़ीमें यह सब भूल जायगा।

सायंकालतक उसे कुछ स्मरण नहीं रहना है। स्मरण रहे भी तो मैया भी इसे छोटा कैसे बना देगी। बड़े बालकको तो कोई मैया छोटा नहीं बना पाती।

दण्ड भला कन्हाईसे उठेगा ? यह लकुट उठा लेता है पतला-सा वही बहुत है। इसका दण्डी नाम भी तो नहीं पड़ सकता। मैं पूछता हूँ—'तू तोकदण्डी बनेगा ?'

'तोक दण्डी क्यों ?' यह मेरा मुख देखता है।

'दण्डी तो मैं हूँ। अब तू दण्डी बनेगा तो सब तुझे तोक दण्डी कहेंगे।' मैं समझाता हूँ—'तू कृष्ण है तो सब दूसरे छोटे कृष्णको तोक कृष्ण ही कहते हैं या नहीं ?'

'उसे तो कोई कृष्ण नहीं कहता।' कन्हाई ठीक कहता है। उसे सब तोक ही कहते हैं। इसलिए अब अपनी हठ ढीली करनी पड़ी उसे—'मैं तोक नहीं बनूँगा।'

इसे इस प्रकार कब क्या धुन चढ़ेगी—कोई नहीं बता सकता। कभी छोटा बनना चाहेगा और कभी बड़ा। वह भी तुरन्त। इससे इसे प्रयोजन ही नहीं कि वैसा होना सम्भव भी है या नहीं। यह कभी मचले ही तो इसे समझाना कठिन हो जाता है।

'तू भूखा है।' चाहे जब कुछ लेकर दौड़ा आवेगा। यह तो ठीक घुटनों भी नहीं चल पाता था—तब भी मेरे मुखमें कुछ देना चाहता था। अनेक बार तो खिलौना ही मेरे मुखमें लगाता था। अब यह पूरा छीका ही उठाये न आवे तो कुशल है। हाथमें कुछ लिये आवेगा तो मुख खोलना ही पड़ेगा।

'तू बैठ' यह कभी बैठाना चाहेगा पकड़कर और कभी अपने साथ खेलमें लगनेको बाध्य करेगा। गायें सम्हालने जाने ही देना नहीं चाहता।

'मैं गायोंको बुला लूँगा।' इसका एक ही उत्तर है।

'तब वे सब तुझे हिलने भी नहीं देंगी।' मैं इसे गायें बुलाने नहीं दे सकता। तब तो मेरी कठिनाई बहुत बढ़ जायगी।

'मैं कदम्बपर चढ़ जाऊँ?' इसे युक्ति बनाने बहुत आती है।

'गायें जब वृक्षके चारों ओर घिर आवेंगी और सिर ऊपर करके हुम्मा-हुम्मा करती तुझे पुकारेंगी तो तू ऊपर बैठा रह सकेगा?' मैं जानता हूँ कि यह कर लेना इसके वशका नहीं है। यह तो दौड़ पड़ता है जब दूर खड़ी गाय इसे हुम्मा करके बुलाती है।

इस प्रेमघनसे किसीकी भी उपेक्षा नहीं हो पाती। हम सब तो इसीके हैं; किन्तु हमें इसे सम्हालना भी तो है।

कुंडली—

विशाल और ऋषभ दोनोंका मैं अनुगामी हूँ। क्रीड़ामें विशाल मुझे साथ रखता है और गोचारणमें ऋषभ मुझपर अनुग्रह करता है। क्रीड़ामें जब मन होगा, कन्हाई विशालकी पीठपर या कन्धेपर चढ़ जायगा। इसीसे तो सब बिशाल दादाको कन्हाईका घोड़ा कहते हैं।

अपने नामके अनुरूप ही विशाल दादाका विशाल शरीर है। कन्हाई उसके कन्धेपर बैठे या पीठपर, मुझे विशाल दादा संकेत कर देता है कि मैं उसके पीछे-पीछे ही चलता रहूँ।

कन्हाई बहुत सुकुमार है और बहुत चञ्चल है। वह यह भी नहीं जानता कि विशालके कन्धेपर बैठनेपर सहसा खड़े होनेसे गिरनेका भय है। वह विशालको अपने पैर भी पकड़ने नहीं देता और कन्धेपर बैठे-बैठे कभी ताली बजावेगा, कभी खड़ा हो जायगा, कभी पीछे ही मुड़कर देखने लगेगा।

कन्हाई कभी अपना पटुका गिरा देगा, कभी उससे विशालको पगड़ी बाँधने लगेगा। यह तो विशालका भी पटुका गिरा देता है। इसका लकुट. शृंग या रज्जु कुछ भी गिर सकता है और इसे तो बहुत देरतक उसका स्मरण नहीं आता है। स्मरण आवेगा तो चाहे जिसे कहेगा—'तूने लिया है।'

मुझे विशाल दादाके पीछे साथ-साथ चलकर कन्हाई कुछ गिरा दे तो उसे उठा लेना रहता है और कन्हाईको देखते रहना होता है। यह खड़ा होने लगे या पीछे मुड़कर देखने लगे तो तनिक स्पर्श करके विशाल दादाको मैं सावधान कर देता हूँ।

'तू दौड़ !' कन्हाई तो विशाल दादाको दौड़ा देता है तब भी जब विशाल दादा घुटनोंके बल घोड़ा बना होता है और कन्हाई उसकी पीठपर होता है। कन्हाई तो फिर भी चपलता करेगा ही। वह पीठपर चुपचाप बैठा तो रहता नहीं। ऐसेमें कभी वह गिर भी तो जा सकता है। कितना कोमल

है कन्हाई। वह विशाल दादाकी पीठसे भी गिरे तो कितनी पीड़ा होगी उसे।

विशाल दादा कन्हाईको पीठपर बैठाकर चले तो मैं चपल व्रजराज कुमारको अकेले नहीं सम्हाल सकता। ऐसे समय मुझे दूसरे किसी सखाको भी संकेत करके बुलाना पड़ता है। मैं विशाल दादाके तनिक पीछे दाहिने सटकर चल सकता हूँ। उसके बायीं ओर भी किसीको तो चलना चाहिये।

विशाल दादा खड़े होकर कन्हाईको कन्धेपर लेकर दौड़े भी तो मैं अकेला उसके पीछे-पीछे दौड़नेको पर्याप्त हूँ। तब दादा भी अधिक सावधान रहता है। सावधान तो नहीं रहता अकेला कन्हाई। यह कभी सावधान नहीं रहता।

कन्हाई नटखट भी बहुत है। विशाल दादाके कन्धेपर चढ़ा रहेगा और जानबूझकर अपना श्टंग गिरा देगा। मैं श्टंग उठाने लगूँ तो रज्जु या पटुका गिरा देगा। मुझसे उसी समय शृंग माँगेगा और बार-बार गिरावेगा।

'नहीं देता।' मैं अस्वीकार कर दूँ तो हाथ जोड़ेगा। अनेक प्रकारकी मुखभंगी बनाकर अनुनय करेगा और दे देनेपर अंगूठा दिखावेगा, हँसेगा, वहीं कन्धेपर बैठा-बैठा मटकेगा। इतनेपर भी शृंग तो इसे गिरा ही देना है।

विशाल दादाके कन्धेपर बैठे-बैठे इसे कोई फल दीख जाय, वह इसे प्रिय भी लगे तो तत्काल चाहिये। फल कन्धेपर खड़े होकर इसके हाथ आ जाय तो ठीक, नहीं तो वृक्षपर चढ़नेको उद्यत हो जायगा। तब विशाल दादा झल्लायेगा—'मैं तुझे वृक्षपर नहीं चढ़ने दे सकता। मैं तोड़ लाता हूँ।'

'मैं यहाँ भूमिपर नहीं खड़ा रहूँगा।' यह हाथ-पैर पटकता है, मुँह बनाता है, जैसे सदा इसे दादाके कन्धेपर ही चढ़े रहना है। 'बन्दर आ जायगा। श्रीदाम मुझसे लड़ने आ जायगा।'

अब पूछो कि बन्दर आ जाय तो करेगा क्या? यह स्वयं उसे मुँह चिढ़ावेगा या और कुछ। बन्दरोंके साथ दिन भर उछल-कूद करता है, उनकी पूँछ खींचता है और अब इसे बन्दरसे भय लगता होगा?

श्रीदाम कभी स्वयं तो इससे लड़ता नहीं। यही उसे छेड़कर लड़ता है। लेकिन इसे बहाना करना है तो यह भी कह दे सकता है—'मैं अकेला खड़ा रहूँगा तो गिलहरी आकर मेरे सिरपर ही चढ़ जायगी और मेरे केश खींचेगी।'

'कुण्डली फल तोड़ लावेगा !' विशाल दादा मुझे देखकर संकेत भी कर दे तो मैं वृक्षपर चढ़नेमें तो सबसे कुशल हूँ ही; किन्तु यह कन्हाई इसे स्वीकार करले तब मैं यह करूँ।

'यह वहीं खालेगा।' यह नटखट तो कह देगा—'नहीं भी खायेगा तो सूंघकर जूठा कर देगा।'

यह ऐसा धर्माचार्य है कि हमारे मुखसे निकालकर खा ले तब जूठा नहीं होता और कोई देख भी ले तो आप उसे जूठा कह दे सकते हैं। कह देगा—'तूने देख लिया तो मैं तेरा जूठा नहीं खाता। अब तू ही खा इसे।'

मैं वृक्षपर चढ़ जाऊँ फल तोड़ने तो विशाल दादासे कहेगा—'तू दौड़।'

'कुण्डली फल ले आ रहा है।' विशाल दादा मेरी प्रतीक्षा इसलिए भी करना चाहेगा; क्योंकि कन्हाईको कन्धेपर लेकर दौड़ते समय कोई साथ होना चाहिये।

'वह फल तो खट्टा है।' इस नटखटको कुछ भी कहना है। 'कुण्डलीको उसे खा लेने दे।'

मुझे और विशाल दादाको भी पता है कि ऐसे यह जिस फलके लिए उत्सुक हुआ है, उसे हाथमें लेकर अपने मुखसे नामको भी नहीं लगाता। फल तो उसे मेरे या विशाल दादाके मुखमें ही देना है। इसे स्वयं भी स्वाद लेना हो तो पहिले हममें-से ही किसीके मुखमें लगावेगा—'तू देख खट्टा होगा तो मेरे दाँत खट्टे हो जायँगे।'

कन्हाई विशाल दादाके कन्धेपर खड़ा होकर अपने हाथों फल तोड़ ले तब भी उस फलको दादाके मुखसे लगा देगा—'देख, मीठा है या नहीं।'

यह भी कोई पक्की बात नहीं है। कन्हाईके विषयमें कोई पक्की बात कभी नहीं कही जा सकती। वह फलको उसी समय किसी कपि या गिलहरीकी ओर उछाल दे सकता है। किसी सखा या बहिनके लिए पटुकेमें रख ले सकता है। मुझे ही समीप बुला सकता है। तब यह नटखट अधरपर तर्जनी रखकर संकेत करेगा कि मैं बोलूँ नहीं। विशाल दादाको पता न लगने दूँ। दादा तो इसको लेकर दौड़ रहा है और मैं दौड़ते-दौड़ते इसके हाथका फल मुखमें ले लूँ। हाथमें तो ये देना नहीं चाहता।

गोचारणमें कन्हाईको थकना नहीं चाहिये। गायों, बछड़ियों, वृषभोंको मैं दण्डी, ऋषभ तथा वरूथपके साथ सम्हालता हूँ। वरूथप पुकारे तो मुझे अपना दण्ड लेकर उसके समीप दौड़ जाना ही चाहिये। वह ठीक पहिचानता है कि कौन-सी गायें और बछड़ियाँ अब कन्हाईके समीप दौड़ जानेको कनमनाने लगी हैं। उन्हें अविलम्ब रोकना आवश्यक होता है। अन्यथा वे कन्हाईको घेर लें और इसका खेलना ही कठिन कर दें।

गाय, बछड़ियाँ अथवा वृषभ तो पशु हैं, वे इस नन्दनन्दनके समीप दौड़ आना चाहते हैं, इसे सूँघ लेना चाहते हैं। चाहते हैं कि यह उन्हें सहला दे तो अस्वाभाविक क्या है। सब पशु चाहते हैं कि कोई उन्हें सहलावे। जो सहलाता है, उसीके समीप दौड़ आते हैं। उसीके समीपसे हटना नहीं चाहते।

कन्हाई तो ऐसा है कि यह तनिक दूर चला जाय कोई लता-वृक्ष, पशु-पक्षी आदि देखने या कोई पुष्प, किसलय, गुञ्जा, पिच्छ लेने तो हम सब सखा इससे दूर नहीं रह पाते। सब दौड़ पड़ते हैं और सब चाहते हैं कि हम इसका पहिले स्पर्श कर लें।

इस कन्हाईका स्पर्श कैसा है, कितना आनन्द देता है, इसको कहनेका उपाय नहीं है। कन्हाई इतना मृदुल, इतना आनन्ददायी है कि मैं रात्रिमें अपने घरमें शय्यापर पड़ा-पड़ा इसको छूनेकी बात सोचता हूँ तब भी आनन्दसे मग्न हो जाता हूँ। इसे तो कल्पनासे भी छूना अद्भुत आनन्द देता है। सचमुच छूनेका आनन्द तो छूनेवाला ही जान सकता है। कन्हाई कहता है—'हम सब सखाओंके शरीरसे सुगन्ध आती है।' वह अनेक बार मुझे—मेरी भुजा, कर अथवा केशराशिको सूँघता है। मेरे केशोंमें तो मैया सुगन्धित तैल

डालती है; किन्तु कन्हाई तो भुजा सूँघकर भी कहता है—'कुण्डली, तेरी भुजासे भी भद्र और सुबलके समान नीलकमलकी सुगन्धि आती है।'

मुझे तो ऐसा लगता नहीं है। नीलकमल मैंने खूब सूँघा है। मेरी भुजामें मुझे तो सुगन्धि आती नहीं। भद्र और सुबलकी, श्रीदामकी, विशालकी भुजामें-से कमलकी सुगन्धि आती है। मैंने सूँघकर देख लिया है; किन्तु दाऊदादाकी भुजासे बहुत अच्छी, बहुत दूरसे ही सुगन्धि आती है।

इस कन्हाईको अपना पता ही नहीं रहता। यह तो किसी बछड़ीको सहला लेता है तो उस बछड़ीसे सुगन्धि देरतक आती रहती है। कन्हाईके शरीरसे ऐसी अद्‌भुत सुगन्धि आती है कि वैसी किसी पुष्प या वस्तुमें नहीं आती। इसीसे इसके समीपसे हटनेको जी नहीं करता।

मैंने एक बार भगवती पूर्णमासीको किसीसे कहते सुना—'श्रीब्रजेन्द्रनन्दनके शरीरसे दिव्य अष्टगन्धका सौरभ आता है। नीलकमल, मृगमद, केशर, कर्पूर, गन्धपत्र, गन्धबाला, तुलसी और मलय चन्दनकी मिश्रित सुगन्धि।

मैं तो इन सबमें कुछको जानता भी नहीं। इनके नाम ही मुझे स्मरण रह गये, यही बहुत है; किन्तु कन्हाईके शरीरका सौरभ मुझे पता है।

कन्हाई अपने शरीरके इसी सौरभसे तो कहीं छिप नहीं पाता। लुका-छिपीके खेलमें वह कहीं छिपे, उसके शरीरका सौरभ ही उसके छिपनेका स्थान बता देता है। फिर वह जहाँ छिपेगा, भ्रमर वहीं मँडरायेंगे। मयूर उसीकी ओर देखकरके कारव करेंगे। मृग, शशक, गिलहरियाँ उसी ओर दौड़ जायँगी।

यह सब न भी होता तो कन्हाई इतना भोला है कि इसे छिपना आता ही नहीं है। यह तो छिपनेसे पहिले बता जाता है—'मैं उस कुञ्जमें छिपूँगा।'

कन्हाईको जानबूझकर ही लुका-छिपीमें कोई सखा नहीं ढूँढ़ता। इसे तो श्रीदाम भी नहीं छूना चाहता; क्योंकि इसे स्पर्श करके नेत्र बन्द करनेको हाथ लगाओ तो इसके बड़े-बड़े नेत्र किसीकी हथेलीसे पूरे ढकते नहीं। यह नटखट अपनी ही नहीं; दूसरेकी हथेली भी खिसकाकर देख लेता है और पट्केसे

इसके नेत्र बाँधो तो पटुका हटा लेता है। कोई भी सखा इसके नेत्रोंपर ढीला ही तो पटुका बाँधेगा। पटुका ढीला न रहे तो इसे कष्ट होगा और ऐसा तो गोपकुमारोंमें कोई नहीं है जो इतना निष्ठुर बन सके।

कन्हाई स्वयं मचलता है—'मुझे ढूँढ़ो। मुझे स्पर्श करो।'

इसे यह सर्वथा अच्छा नहीं लगता कि कोई सखा इसको छोड़कर किसी औरको ढूँढ़नेमें लगे और इसे लगा दो ढूँढ़नेपर तो पता नहीं कैसे—सम्भवत: अंगुलियोंके अन्तरसे देखकर सबको झटपट ढूँढ़ लेता है।

इस कन्हाईकी चपलता, इसका स्पर्श, इसका अंग-सौरभ और इसकी क्रीड़ा सब तो बहुत-बहुत आनन्द देती रहती है।

तेजस्वी–

अवश्य मैं आयुमें छोटा हूँ; किन्तु छोटा होना तो कोई दोष नहीं है। अपना भाण्डीर वट बहुत बूढ़ा है। बाबा तो कहता है कि उसे भी स्मरण नहीं कि भाण्डीर वट कबका, कितने दिनोंका है। तब क्या सब भाण्डीर वटको बहुत महान मान लेंगे? लड़कियाँ कभी-कभी उसकी पूजा करती हैं, पर पूजा तो हम सब अपनी गायों, वृषभों और नन्हे बछड़ोंकी भी करते हैं।

छोटा होनेमें तो मुझे लाभ है। दाऊदादा मुझे जितना स्नेह करता है, उतना मैं बड़ा होता तो मुझसे करता? दाऊदादा तो किसी श्मश्रुवाले गोपसे स्नेह नहीं करता। अपने सखाओंमें भी बड़े सखाओंको उसीकी बात माननी पड़ती है। कोई दाऊदादाकी बात नहीं टालता। पर दाऊदादा तो मेरी बात मान लेता है। मैं उसे जब कुछ कहता हूँ, उसे मना नहीं करता।

एक बात ही दाऊदादाने मेरी नहीं मानी। मैंने तो मल्ल चाचासे भी कहा; किन्तु वे भी हँसते हैं। कन्हाई भी मेरी यही बात नहीं मानता। मैं कहता हूँ—'राक्षस सब बुरे होते हैं। इस कन्हाईको तंग करने कोई-न-कोई राक्षस आता ही रहता है। सब अपने लकुट उठाओ और मेरे साथ चलो। सब राक्षसोंको हम मार देंगे।'

राक्षस कितने होंगे? हमारे सब सखाओंसे अधिक नहीं हो सकते। मैंने उनका घर नहीं देखा है, नहीं तो मैं अकेला ही जाकर उनको मार आता। मैं इस वृन्दावनके दूसरे छोरतक जाकर उन्हें ढूँढ़ सकता हूँ; किन्तु दाऊदादा मुझे जाने ही नहीं देता है।

राक्षस सब बुरे होते हैं। देखनेमें भी बुरे-बुरे लगते हैं। बहुत बड़े, लम्बे-चौड़े होते हैं और गुर्राते, चिल्लाते भी बहुत अधिक हैं। लेकिन कन्हाई ही ने तो अबतक यहाँ आये सब राक्षसोंको मारा है। केवल एकको दाऊदादाने मारा। वह भी बिना लकुट उठाये मारा। उसके सिरपर एक घूसा मारा तो उसका सिर फट् हो गया। कन्हाईको तो मैं पटकनी दे लेता हूँ। राक्षस सब

बताशे जैसे होते हैं। बहुत फूले, बहुत बड़े; किन्तु एक घूसा मारो तो फूट जाते हैं।

मैंने कन्हाईसे कहा—'तू मुझे राक्षसोंका घर चलकर दिखा दे। तुममें कोई उन्हें मत मारना। मैं अकेला ही उन सबको मार दूँगा।'

कन्हाई मेरी यह बात नहीं मानता। दाऊ दादा कहता है—'राक्षस आते हैं तो कन्हाई उनको मारनेका खेल खेलता है। कन्हाई दूसरे किसीको तो मार नहीं सकता। तू सब राक्षसोंको मार देगा तो कन्हाई खेलेगा किससे ?'

बात मेरी समझमें कम आती है। क्रोध करना और किसीको मारनेका खेल क्या आवश्यक है ? यह खेल यदि कन्हाई न करे तो ?

यह बात तो ठीक है कि कन्हाई अपने सखाओंमें-से किसीपर क्रोध नहीं कर पाता। बहुत छोटा था मैं, तबसे मैंने देखा है कि कन्हाई बिल्लीपर भी क्रोध नहीं कर सकता। यह तो खेलमें भी किसीको हाथसे धीरेसे भी नहीं मारता। लाठी चलाना इसने केवल एक दिन सीखना चाहा था और जब भद्रने कहा—'मेरी लाठीपर मार' तो लाठी फेंककर रोने ही लगा था। तबसे लाठी चलाना सीखनेके नामसे चिढ़ता है।

कन्हाईको क्या-क्या अच्छा लगेगा, कुछ ठिकाना नहीं है। यह तो अनेक बार पत्ते भी मुखमें डाल लेता है। मैंने ही इसे बिल्वपत्र खाते देखा तो बोला—'मुझे यह एकने दिया है। बड़े प्यारसे दिया है। बहुत अच्छा लगता है।'

प्यारसे पत्ता किसने दिया होगा इसे ? पूछनेपर भी नाम तो बतलाया नहीं इसने। किसीने भी प्यारसे दिया तो यह खाने ही लगा। ऐसे ही इसे क्रोध करना भी अच्छा लगता हो तो क्या ठिकाना।

मैंने ही एक बार फटाफट कई घड़े पटक फोड़े थे। मुझे तो क्रोधमें घड़े फोड़ने अच्छे लगे थे। क्रोध आनेपर कुछ पटकने, फोड़नेकी इच्छा तो सबको होती है। इस कन्हाईको क्रोध करनेकी भी इच्छा हो तो सकती है। क्रोध करेगा तो क्या पटकेगा ? घड़े पटको तो मैया बिगड़ती है। इसलिए

कभी कोई भूला भटका राक्षस इधर आ निकलता है तो कन्हाई अपना क्रोध करने और उठा पटकनेकी भड़ाँस पूरी कर लेता है।

इसीलिए किसी राक्षसके आनेपर कन्हाई हममें किसीको उसके पास नहीं जाने देता। यह उन सबको अपने लिए ही मारनेका खेल खेलनेको सुरक्षित रखना चाहता होगा। इसीलिए दाऊ दादा भी मेरी बात नहीं सुनता कि मैं सब राक्षसोंको मार दूँ।

केवल उस प्रलम्ब राक्षसको दाऊ दादाने मारा था। वह दादाको पीठपर बैठाकर भागा ही जा रहा था तो दादाने उसके सिरपर घूसा धर दिया। दादा तो उसे भी नहीं मार रहा था। मारा तब जब कन्हाईने ही कहा—'दादा, मार दे इसे।'

मल्ल चाचाने कहा था—'राक्षस तो आकाशमें पक्षीके समान चाहे जब उड़ने लगते हैं। तू उन्हें कैसे मारेगा ?'

वह प्रलम्ब सचमुच दादाको पीठपर उठाकर आकाशमें ही उड़ा जा रहा था। मैं राक्षसोंका गाँव किसी प्रकार ढूँढ़ भी लूँ और मुझे लकुट लेकर आता देखकर सब फुर्रसे उड़ जायँ तो ? तब तो मैं उन्हें कहाँ ढूँढूगा ? कन्हाई भी इसीलिए मेरे साथ उन्हें मारने नहीं जाता है। वे स्वयं ही भूल-भटककर आ टपकते हैं तो यह उन्हें मार लेता है।

'कनूँ, तू एक राक्षसको पकड़ ले।' मैंने इससे कहा एक दिन। यह राक्षस पकड़ लेता तो मैं उसकी तोंदमें अँगुली चुभाकर देखता कि उसके भीतर हवा-ही-हवा भरी है या कुछ पानी जैसा भी होता है।

'तू राक्षस पालेगा ?' कन्हाई तो मेरा मुख ही देखने लगा—'इतना बड़ा पिंजरा कहाँसे लावेगा ? वह एक ही बारमें तेरे घरका सब दूध, दही, माखन खालेगा। तू उसे कितना भी सिखावे, वह गुर्राना छोड़कर केवल गाली देना सीख सकता है।'

'मैं उसे क्यों पालूँगा।' यह कन्हाई बोलने लगता है तो बोलता ही चला जाता है। दूसरेकी बात ही नहीं सुनता। हम गोप तो केवल गायें पालते हैं। हम तो पक्षी भी पिंजरेमें बन्द नहीं करते। मयूर, शुक, कपोत

सब बिना पाले ही सदा हम सबके साथ लगे रहते हैं। मुझे पालनेको अब क्या केवल राक्षस ही बच रहे हैं।

कन्हाई बहुत नटखट है। यह तो ताली बजाकर हँसने लगा और सबसे, दाऊ दादातकसे कह आया—'तेजस्वी राक्षस पालना चाहता है।'

सब मुझे ही चिढ़ाने लगे हैं। अब मैं कभी इस कन्हाईसे राक्षस पकड़नेको नहीं कहूँगा।

कन्हाई नटखट है, इसीसे तो मैं दाऊ दादाके पास रहना चाहता हूँ। दाऊ दादा मुझे कभी नहीं चिढ़ाता। खेलमें भी उसीके साथ रहना अच्छा होता है। कन्हाई तो खेलमें सदा हार जाता है और इसके दलके सखाओंको हमें चड्ढी देनी पड़ती है।

कन्हाई हारता भी है और दाव देनेसे भागता भी है। वैसे मुझे भी लगता है कि यह बहुत शीघ्र थक जाता है। मुझसे थोड़ा बड़ा है तो क्या हुआ, मुझसे बहुत दुर्बल है। मुझसे कहीं अधिक सुकुमार है।

श्रीदामाके साथ कन्हाईकी जोड़ी है। श्रीदामाको यह बहुत खिझाता है। श्रीदामा भी हठी है। उसे दाऊ दादा तो कहता ही है, मैं भी कहता हूँ—'कन्हाईके बदले मैं दाव दिये देता हूँ। तुझे चड्ढी ही तो करनी है, मेरी पीठपर कर ले।'

'तू छोटा है।' श्रीदामा तो मेरी बातपर हँसता है। उसे पता नहीं क्यों कन्हाईसे ही झगड़ना रहता है।

'छोटा हूँ तो क्या हो गया।' मैं उसे कहता हूँ तो मानता ही नहीं कि मैं उसे पीठपर बैठाकर उसके घरतक ले जा सकता हूँ।

'मैया रे! तब तो बहिन ऐसी रूठेगी कि मुझसे कभी बोलेगी ही नहीं। मैया मुझे घरमें ही नहीं घुसने देगी और बाबा मुझे मारते-मारते मार भी दे सकता है।' श्रीदामा पता नहीं ऐसा क्यों कहता है। उसकी मैया, बहिन, बाबा सब बहुत अच्छे हैं। मुझे तो बहुत प्यार करते हैं। मैंने तो सुना भी नहीं कि इनमें कोई कभी रूठता भी है या क्रोध भी करता है।

'कन्हाई थक गया है।' मेरी यह बात भी श्रीदामा मानना नहीं चाहता। यद्यपि मैंने देखा है कि यह सुनकर वह दाव लेनेकी अपनी हठ कम कर देता है।

'तू कहता क्यों नहीं कि मैं थक गया हूँ।' श्रीदामा बुद्धू नहीं है तो कन्हाईसे क्यों पूछता है इस प्रकार ?

'तू थक गया हो तो सो जा।' कन्हाई तो ऐसा कहेगा ही। उसे तो अपनी भूखका भी पता नहीं लगता तो थकनेका कैसे पता लगेगा। वह कभी मानता है कि वह थक गया है ? लेकिन वह बहुत अधिक सुकुमार है। सबसे पहिले तो वह थकेगा ही। उसे तो बहानेसे बैठाना पड़ता है।

'तू अब चुपचाप बैठ जा !' कन्हाईसे इस प्रकार तो मैं ही कह सकता हूँ। दाऊ दादा तो उसे कुछ कहता ही नहीं है। लेकिन कन्हाई चुप तो बैठ सकता ही नहीं। उसे चुप बैठना जैसे आता ही नहीं है। मेरी बात मानकर बैठ भी जाय तो बैठे-बैठे या तो मेढककी भाँति कूदने लगेगा या किसीको चिढ़ावेगा।

'तू पहिले मेरे केशोंमें ये पुष्प सजा दे।' कन्हाईको कहो कि उसके केशोंमें पुष्प सजाना है तो वह बैठेगा ही नहीं।

मेरे केशोंमें पुष्प सजानेको, मेरे अङ्गपर धातु चित्र बनानेको, मेरे लिए गुञ्जामाला बनानेको तो वह दूसरे सब खेल छोड़कर बैठ जाया करता है।

कन्हाई बैठ जाय तो भले उसके केशोंमें भी साथ-साथ पुष्प सजाया जाय या उसके अङ्गपर चित्र रचना की जाय। वह तो मेरा केश शृङ्गार करते-करते भी किसीपर पुष्प फेंकेगा, किसी पक्षीको देखने उठ खड़ा होगा या कुछ कहता रहेगा।

मैं वनमें कलेऊ करने दाऊ दादाके पास बैठता हूँ। दाऊ दादाके समीप बैठनेसे कन्हाई भी थोड़ा संकोच करता है। नहीं तो वह सब मीठे पदार्थ मेरे ही मुखमें डालते रहना चाहता है। मैं उसके मुखमें कुछ दूँ तो

दाऊदादाके समीप होनेपर ही कभी पूरा ग्रास मुँहमें लेता है। नहीं तो तनिक-सा लेकर मुख हटा लेना तो इसका स्वभाव है।

मुझे किसीकी किसी काममें ढिलायी अच्छी नहीं लगती। मुझे भद्रकी बात प्रिय है कि खेलो तो डटकर खेलो और विश्राम करना हो तो घासपर सो जाओ। इसलिए कोई गाय हाँकने न उठे तो उसे कहना पड़ता है— 'झटपट उठ, दौड़ जा।'

'तेजस्वी तो सेनापतिके समान आज्ञा देता है।' कन्हाई हँसकर कहता है। कभी-कभी हँसते-हँसते ताली बजाने लगता है।

सेनापति तो हम सब सखाओंका भद्र है; किन्तु वही तो कहता है— 'हमारा छोटा सेनापति तेजस्वी है।'

तब छोटे सेनापतिको ही तो आज्ञा देना चाहिये। यह कन्हाई तो प्रत्येक बातमें हँसता है। यह हँसते हुए बहुत अच्छा लगता है, अतः इसे हँसते तो रहना ही चाहिये।

देवप्रस्थ—

अपने कन्हाईने तो मुझे देवता ही बना रखा है। वह किसलय, पुष्प लेकर दिनमें चाहे जब मुझे सजाने बैठ जाता है और कहता है—'तू देवता है, मैं तेरी पूजा करता हूँ।'

'मैं तो तुझसे बहुत छोटा हूँ।' मेरी इस बातपर हँसता है।

'देवता तो छोटा ही होता है।' कन्हाईकी यह बात ठीक लगती है। बाबाके शालिग्रामजी छोटे-से हैं। मैंने किसीके घर बहुत बड़ा देवता नहीं देखा है।

'वह अपने गिरिराज गोवर्धनका देवता तो खूब बड़ा था।' इस कन्हाईने सबसे गिरिराजकी पूजा करायी तब वह चार हाथका बहुत बड़ा देवता प्रगट हुआ था।

'एकाध बड़ा देवता भी चाहिये काम आनेको।' कन्हाईको बहुत बातें पता हैं। यह कहता है—'काम करना हो तो बड़ा देवता ठीक रहता है। तू देखता नहीं कि छोटे देवता कुछ काम नहीं करते। लेकिन बड़ा देवता होगा तो बहुत भोजन माँगेगा। उस बड़े देवताने कितना सारा भोग लगाया था। इतना भोग रोज-रोज कहाँसे आवेगा। बड़ा देवता एक ही ठीक है और उसकी भी पूजा वर्षमें एक ही दिन होती है। अपने सबके लिए तो छोटे देवता ही ठीक हैं।'

कन्हाई मुझे भी कोई काम नहीं करने देता। मैं पुष्प भी चुनने लगूँ तो कह देता है—'तू देवता है। तू बैठ चुपचाप। मैं तेरे लिए पुष्प चुनकर लाऊँगा।'

'मैं चुपचाप नहीं बैठूँगा। तू मुझे देवता बनाकर आलेमें बैठावेगा? मुझे ऐसा देवता नहीं बनना।' किसीको भी ऐसा देवता बनना अच्छा नहीं लगेगा कि हिले-डुले बिना चुपचाप बैठा रहे। बोले भी नहीं। हमारे घरके देवता तो ऐसे ही बैठे रहते हैं।

'तू देवता तो है; किन्तु मेरा देवता है।' कन्हाई कहता है—'मेरा देवता खेलेगा-कूदेगा, हँसेगा-दौड़ेगा। गुमसुम बैठनेवाला देवता मुझे अच्छा नहीं लगता। मेरा देवता मेरे जैसा रहेगा।'

मैंने भगवती पूर्णमासीसे कहा—'यह कन्हाई मुझे देवता बनाता है।'

मैयासे या बाबासे कहो तो वे हँसते हैं। दूसरे किसीसे कहो तो वे उलटे हाथ जोड़कर सिर झुकाते हैं—'तू हमारा भी देवता। हमको भी आशीर्वाद दे।'

मुझे आशीर्वाद देना तो आता नहीं है। भगवती पूर्णमासी हँसती नहीं हैं। वे किसीकी खिल्ली नहीं उड़ातीं; किन्तु मेरी बात सुनकर वे भी गम्भीर होकर बोलीं—'श्रीव्रजराजकुमार जिसे जो बनावें, उसे वह बनना ही पड़ता है। लेकिन तुम देवता क्यों बनोगे ? तुम तो देवतासे बड़े हो। तुमको देवता बनकर अपने सखासे दूर रहना है ?'

मुझे बहुत बुरा लगा। मैं भगवतीके पाससे भाग आया और अपने घरमें रोता रहा। यह कन्हाई बहुत नटखट है। मैं जानता हूँ कि जीजीको बाबा मैयाने बहुत सजाया, उसकी पूजा भी की और उसे ब्याहकर दूर गाँव भेज दिया। यह कन्हाई भी मुझे दूर गाँव भेजनेवाला तो नहीं है ?

मुझे बहुत क्रोध आया था। मैं मैयासे, बाबासे, किसीसे भी नहीं बोलना चाहता था। कन्हाईने इन सबको मिला लिया होगा। वह किसीको भी अपनी ओर झटसे कर लेता है। मैंने ब्यारू नहीं किया। मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता था। बस रोना-रोना आता था।

मैयाने गोदमें उठाया कन्हाईके पास ले जानेको; किन्तु मैं उसके पास तो जाना ही नहीं चाहता था। मैं छटपटाकर गोदसे उतर गया तो मैया कन्हाईको ही बुला लायी। मैं उससे भी नहीं बोला तो वही मेरे दोनों हाथ पकड़कर बोला—'देव ! तू मुझसे भी रूठ गया है ?'

'मैं देव नहीं रहूँगा। तू मुझे देवता बनाकर, मेरी पूजा करके मुझे दूसरे गाँव भेजना चाहता है।' मैंने कन्हाईसे अपने हाथ छुड़ाने चाहे; किन्तु वह तो छोड़ ही नहीं रहा था।

'किसने कहा कि मैं तुझे दूसरे गाँव भेजना चाहता हूँ ?' कन्हाईने अपने पटुकेसे ही मेरे आँसू पोंछे--'मैं तुझे अपनेसे दूर भेज कैसे सकता हूँ ?'

'भगवती पूर्णमासी कहती हैं।' मैंने अब कन्हाईके मुखकी ओर देखा और देखा तो मुझे रोना ही भूल गया। यह कन्हाई तो रोने-रोनेको हो आया है। इसके कमल नेत्र भर आये हैं। इसे रोना तो नहीं ही चाहिये। मैंने किसी प्रकार ही कहा—'वे कहती हैं कि देवता तुझसे दूर रहते हैं। तेरे पास नहीं आ पाते। मैं········।'

कन्हाई तो मुझे अङ्कमें लिपटाकर हँस पड़ा। अच्छा हुआ कि यह हँस गया। इसके भरे नेत्र देखकर तो मुझे बहुत अधिक दुःख हो रहा था।

'तू पता नहीं किन देवताओंकी बात कर रहा है। वैसा देवता तो मैं अपने गाँवके कुत्ते-बिल्लीको भी नहीं बनने दे सकता।' कन्हाई कह रहा था—'तू तो मेरा छोटा भाई है। तुझे अपनेसे दूर कहीं नहीं भेज सकता। मैं तो तुझे अपना देवता बनाता हूँ और अपने देवताको कोई छोड़ता है ?'

सचमुच अपने देवताको तो कोई छोड़ता नहीं। बाबा चार दिनको भी कहीं जाता है तो अपना देवता अपने साथ लेकर जाता है।

'तू अपने साथ ही रखेगा तो तेरा देवता बन जाऊँगा।' मुझे कन्हाई देवता बनाकर मेरे केशोंमें पुष्प, किसलय ही तो सजावेगा। बहुत हुआ तो मुखमें माखन डालेगा। नटखटपनसे हाथ जोड़ेगा। मुझे यही अच्छा नहीं लगता। इसलिए मैंने कह दिया—'लेकिन मैं तेरा छोटा भाई हूँ। मैं तेरे पैर छुऊँगा। तू मुझे हाथ मत जोड़ा कर।'

'अच्छी बात।' आज तो कन्हाई झटपट मेरी बात मान गया। बोला—'देवताको असन्तुष्ट नहीं किया जाता। देवता जैसे प्रसन्न होगा, वह तो करना ही पड़ेगा।'

'तू बड़ा भाई है तो तू बड़ा देवता है। दाऊदादा भी बड़ा देवता है। मैया भी और बाबा भी।' मेरी समझमें नहीं आता कि मैं देवता हूँ तो ये सब देवता क्यों नहीं हैं।

'हम सब तो गोप हैं।' मैयाने हँसते-हँसते कह दिया। वह ब्यारूकी थाली सजा लायी—'तुम दोनों देवता हो तो पहिले भोग लगाओ।'

कन्हाई तो थालीके पास जमकर बैठ गया। अवश्य मैया इसे बिना ब्यारू किये इसके घरसे बुला लायी है। यह भूखा होगा। लेकिन भूखा हो या प्यासा, मेरे रोनेकी बात सुनकर भागा चला आया है। यह किसी सखाको रोता सुनकर जूठे मुख ही भाग खड़ा होता है।

मुझे तो स्मरण है कि जब हम सब इसके समीप इसके आँगनमें घुटनों चलते-सरकते थे, तब भी यह किसीके रोनेपर खेलना छोड़कर उसीके पास दौड़ जाता था। अपने हाथसे उसके आँसू पोंछता था और अपने सब खिलौने लाकर उसके आगे ढेर कर देता था।

कन्हाई ऐसा है कि कोई कितना भी रोता हो, उसे कुछ भी हुआ हो, यह उसके पास पहुँच जाय तो रोना भूल जाता है। फिर यह भी भूल जाता है कि क्यों रो रहा था। तब तो इसीको देखना रह जाता है।

यह कन्हाई मुझे वनमें अपने सामने बैठा लेता है और मेरा केश शृङ्गार करता है। मुझे तिलक लगाता है। मेरी भुजाओंपर वन धातुओंसे बड़े सुन्दर पुष्प बनाता है। मैं तो केवल इसकी वर्षगाँठपर इसे तिलक लगाता हूँ।

मैयाने मना किया हुआ है कि अँगूठेसे तिलक मत लगाया कर। वह कहती है—'तुम सब चाहे जिसे अँगूठा दिखा देते हो, इसलिए अँगूठा अशुद्ध रहता है।'

मधुमंगल तो अँगूठेसे कन्हाईको तिलक लगाता है और वह तो सबको अँगूठा दिखाता है; किन्तु मैया कहती है कि वह ब्राह्मण है। ब्राह्मणका पूरा हाथ दूसरोंको आशीर्वाद देनेसे पवित्र रहता है।

पता नहीं मधुमंगल किसको आशीर्वाद देता होगा। यह तो सखाओंको आशीर्वाद भी चिढ़ानेके लिए ही देता है। लेकिन इसे कोई प्रणाम भी तो नहीं करता। कन्हाई प्रणाम करता है तो भी चिढ़ानेके लिए करता है। उसे यह आशीर्वाद भी कितना अटपटा देता है—'रीछकी लाली तेरी रानी बने।'

कन्हाईकी रानी रीछकी लाली कैसे बनेगी ? मैंने मैयासे कहा तो मैया हँसती है। मैं तो किसी रीछकी लालीको भाभी नहीं बनाऊँगा। लेकिन कन्हाई तो विचित्र है। मैंने पूछा—'तू रीछकी लालीसे ब्याह करेगा ?'

'कर लूँगा।' यह तो झट तैयार हो गया।

'पानीकी लालीसे ?' मैंने कुछ झल्लाकर ही पूछा। यह किसीसे तो ब्याह करनेको ना करेगा।

'उससे भी कर लूँगा।' यह तो फिर भी ना नहीं करता।

'बन्दरकी लालीसे ?' श्रीदामाने पूछ लिया।

'उससे तू कर लेना।' कन्हाईने मुँह बनाया—'मैं तेरे ब्याहमें चलूँगा।'

'क्यों ?' श्रीदामा चिढ़ गया। उसे ब्याह करनेको बन्दरकी लाली ही मिलेगी।

'देव तो मेरा छोटा भाई है।' कन्हाईने कहा—'यह जिसे भी भाभी बनाना चाहेगा, मैं उससे ब्याह कर लूँगा।'

'मैं कोई बुरी भाभी नहीं लूँगा।' मैंने इससे कह दिया है। यह चाहे जिससे ब्याह करनेको हाँ कर देता है, यह कोई अच्छी बात नहीं है।

कन्हाईको मैं अनामिकासे तिलक करता हूँ। मैया कहती है—'तर्जनी डाँटनेवाली अँगुली है।'

तर्जनी दिखाकर मैया कई बार डाँटती तो है। बीचकी अँगुली भी ठीक नहीं है। मैया ठीक कहती है—'किसी एककी ओर रहना चाहिये। दोनों ओरके बीचमें रहनेवाला किसीका नहीं होता।'

मैं कन्हाईकी ओर ही रहता हूँ और तेजस्वी दाऊदादाकी ओर रहता है। मधुमंगलको कोई अपनी ओर नहीं रखना चाहता। वह कभी दाऊदादाके साथ हो जाता है और कभी कन्हाईके साथ।

छोटी अँगुली अच्छी तो है; किन्तु सबसे छोटी है, सबसे पतली है। उससे काम लेना अच्छा नहीं है। मैं कन्हाईसे छोटा हूँ तो कन्हाई कहाँ मुझे कोई काम करने देता है।

कन्हाईको तिलक करनेमें मुझे बहुत आनन्द आता है। उसके भालपर लाल कुंकुमकी रेखा बड़ी सुन्दर लगती है और उसपर चिपके अक्षत तो और सुन्दर लगते हैं।

मैं तिलक करता हूँ तो कन्हाई तुरत मुझे तिलक लगाता है—'देवता कभी पूजा करदे अपनी तो देवताकी भी तुरन्त पूजा करनी चाहिये।'

मैं देवता किधरसे हूँ। सब गोप सखा तो मेरे ही जैसे हैं; किन्तु कन्हाईको देवता चाहिये और अपने जैसा चलने-दौड़नेवाला देवता चाहिये। वह गुमसुम बैठनेवाला देवता लेना ही नहीं चाहता, इसलिए मुझे ही देवता बना लेता है। वह भले देवता बना ले; किन्तु वह मेरा बड़ा भाई है। मैं उसके साथ ही रहूँगा।

अंशु-

मैं छोटा हूँ और सब कहते हैं कि दुर्बल हूँ। मुझे तो ऐसा लगता नहीं है; किन्तु कन्हाईके समान उछलते-कूदते रहना मुझे अच्छा नहीं लगता। वह तो सबको चिढ़ाता ही रहता है। वह मयूर, मण्डूकको भी चिढ़ाने लगता है। लेकिन मुझे कभी नहीं चिढ़ाता। मुझे तो कोई भी नहीं चिढ़ाता।

मैं दाऊदादाके समीप ही रहता हूँ। दाऊदादा बहुत अच्छा है। वह चुपचाप बैठा रहता है। बहुत कम खेलमें सम्मिलित होता है। किसीको डाँटता या चिढ़ाता नहीं। किसीसे लड़ता नहीं। उससे कौन लड़ेगा ? वह तो सबसे बड़ा है, सबसे बलवान है। वहो किसी वृक्षको पकड़कर उसे ऐसा हिला दे सकता है कि उस वृक्षके सब फल गिर पड़ें।

दाऊदादा ही दो सखा लड़ पड़ें तो उन्हें समझाता है। मुझे तो बहुत स्नेह करता है। मैं भी उसके पास ही बैठा रहता हूँ। मुझे तो कोई नहीं रोकता, जब मनमें आवे खेलमें सम्मिलित हो जाता हूँ और जब मन हुआ दादाके पास जा बैठता हूँ। मुझसे कोई झगड़ता नहीं। मुझे कोई कभी गाय घेरनेको भी नहीं कहता।

कन्हाई बार-बार आकर दादाके पास सटकर बैठ जाता है। यह तो दादाके पास भी मेरे केशोंमें पुष्प सजाने लगता है और कुछ-न-कुछ मेरे मुखमें डालता है। मैं इसके पास रहूँ तो यह मुझे बैठाकर सजाते-सजाते थका देगा और पता नहीं कितना खिलावेगा। इसे तो धुन रहती है—'तू छोटा है, भूख लगी है तुझे। यह थोड़ा-सा खा ले।'

कन्हाई सुनता ही नहीं कि मुझे भूख नहीं लगी है। मैं छोटा हूँ तो मेरा पेट भी तो छोटा है। लेकिन यह मानता नहीं। कहता है—'छोटे बालकको बार-बार भूख लगती है।'

मैं कोई इतना छोटा तो नहीं हूँ। कन्हाई कहता है—'तू इतना दुर्बल है। तेरा पेट तो पीठसे चिपका है। तू अंशु है तो तुझे कोई सूर्यकी किरण जैसा पतला तो नहीं रहना है। थोड़ा खायगा तो मोटा बनेगा।'

मुझे मोटा नहीं बनना है। मधुमंगलकी भाँति मोटा पेट बनाना हो तो कन्हाई अपना बनाता क्यों नहीं। मुझे वैसा पेट नहीं बनाना। मैं दुर्बल तो नहीं हूँ। कन्हाईसे दौड़में मैं आगे ही रहता हूँ। वह मल्लयुद्ध करता है तो वही नीचे गिरता है। सबसे दुर्बल कन्हाई ही है; किन्तु वह मुझसे बड़ा है, इसलिए मेरी बात ही नहीं सुनता। मैं कहता हूँ कि उसे दौड़-दौड़कर थकना नहीं चाहिये। उसे भी दादाके पास बैठना चाहिये।

मैं पुष्प लेने भी उठता हूँ तो कन्हाई दौड़ आता है—'तुझे क्या चाहिये ?'

यह मुझे पिच्छ चुनने भी अकेले नहीं जाने देता। पिच्छ तो मयूर नीचे ही गिराते हैं। पिच्छ उठानेको न वृक्षपर चढ़ना पड़ता और न ऊपरसे उन्हें उतारना पड़ता। पिच्छमें कोई काँटे तो होते नहीं। लेकिन कन्हाई मानता ही नहीं कि मैं अपने आप वृक्षोंके नीचेसे पिच्छ चुन लाऊँगा।

मुझे कोई ऊँचाईपरका पुष्प या फल चाहिये तो मैं दाऊदादासे माँग ले सकता हूँ। दाऊदादा तो किसीको भी मना नहीं करता। मेरा कहा काम तो विशाल, वरूथप भी झट कर देते हैं। भद्र भी कभी मुझे किसी कामको मना नहीं करता। लेकिन कन्हाई सबसे पहिले दौड़ा आता है मेरे उठते ही।

मुझे वृक्षपर तो चढ़ना आता ही नहीं। सिखानेको भी कहता हूँ तो सब मुझे बहुत छोटे पेड़पर ही चढ़ाते हैं। मैं कहता हूँ कि वटपर, पीपलपर, शालपर चढ़ना बतादो तो दाऊदादा भी नहीं सुनता। कन्हाई तो कहता है—'तू वट या पीपलके फल खायगा ? तू कोई गिलहरी है ? शालपर तो मैं भी नहीं चढ़ता। उसमें न फूल होते, न फल।'

'तू तो कदम्बपर चढ़ता है।' यह कन्हाई मानता नहीं कि मैं कदम्बपर चढ़ूँ तो इसके कुण्डलोंके समीप लटकानेको बहुत सुन्दर पुष्प ले आऊँगा।

'तुझे राजकदम्बके खटमिट्ठे फल चाहिये ?' कन्हाई तो समझता है कि मैं अपने लिए ही कुछ लाना चाहता हूँ। 'तुझे कदम्बपर नहीं चढ़ना है। उसके पुष्प और फल मोटी शाखापरसे बहुत कम मिलते हैं। पुष्प और फल तो सबके पतली शाखापर होते हैं।'

'मैं भी तो पतला हूँ। मेरे भारसे क्या शाखा टूटेगी ?' मैं यह पूछता हूँ तो दाऊदादा भी मुस्करा देता है।

'तू शाखापरसे गिर तो सकता है।' कन्हाईको बात करनेमें कोई हरा नहीं सकता। यह कुछ-न-कुछ कारण अपने समर्थनका निकाल ही लेता है—'तू अमरूदपर थोड़ी दूर चढ़ तो लेता है। अमरूदके फल तो तुझे तोड़नेको मिल जाते हैं। बड़े पेड़पर चढ़नेको मैया मना करती है।'

मैया प्रतिदिन मना करती है इस कन्हाईको कि 'वृक्षपर न चढ़े। पानीमें न उतरे। बन्दरोंसे न खेले।' मैया तो पता नहीं कितनी बातें कहती है; किन्तु कन्हाई कोई एक भी बात मानता है ? अब मैं कहूँ तो मुझे मैयाका नाम लेकर डराता है।

दाऊदादा मुझे स्नानके लिए यमुनामें उतरनेसे नहीं रोकता। वह तो मुझे तैरना भी सिखलाता है अपने हाथोंपर लेकर; किन्तु कन्हाई तो शीघ्रता मचाता है—'तोक, अंशु, तेजस्वी, देव ! सब झटपट बाहर निकलो !'

कन्हाईकी बातपर कहीं कोई बाहर निकलता है। हम सब तो उसके ऊपर जल उलीचते हैं। उसपर छींटा डालते हैं। वह भी हमको स्नान करानेमें लग जाता है। निकलना तो पड़ता है जब भद्र पुकारता है। उसकी बात तेजस्वी भी नहीं टाल पाता।

कन्हाई तो मछलीसे भी चिकना और सुकुमार है और पता नहीं क्या बात है कि वह हाथ फैलाता है पानीमें तो उसकी छोटी लाल हथेलीपर बैठनेको मछलियाँ दौड़ पड़ती हैं। वह तो मेरी हथेलीपर भी नन्ही मछली धर देता है; किन्तु मछली भी कन्हाईकी भाँति कुलबुलाती ही रहती है। वह भी चुपचाप नहीं बैठ सकती। हथेलीपर चिकनी, गिलगिली मछली कुलबुलाती है तो हाथ अपने आप हिल जाता है। मछली पानीमें तो गिरेगी ही।

नन्हा-सा मुख खोलकर मछली मेरे पैर या अँगुलीमें लगाती है तो मुझे तो गुदगुदी लगती है। कन्हाई कहता है—'मछली काटती नहीं। मछलीके दाँत नहीं होते।' लेकिन कन्हाई तो कुत्ते, व्याघ्र किसीके मुखमें अँगुली या हाथ डाल देता है। उसे तो कोई काटता ही नहीं लगता। मैं तो बन्दरकी भी पूँछ नहीं खींचता हूँ।

कन्हाई मेरी पीठ मलने आ जाता है स्नानके समय तो मुझे बहुत अच्छा भी लगता है और बुरा भी लगता है। वह छूता है तो बहुत अच्छा लगता है। लेकिन उसके हाथ कितने कोमल हैं। तनिक देरमें उसके हाथ लाल-लाल हो जाते हैं। उसे थकना तो नहीं चाहिये। मैं उसकी पीठ मलने लगता हूँ तो बड़े सखा मुझे झटपट हटा देते हैं। मैं क्या इतने थोड़े परिश्रमसे थकता हूँ ?

कन्हाईको पता नहीं क्या-क्या आता है। वह कभी मेरे लिए पत्ते या पुष्पको नौका बना लाता है और कभी पत्तेका पंखा। उस पंखेको लेकर दौडो तो वह भरपूर नाचता रहता है।

मुझे तो कन्हाई बड़े प्यारसे नाचना सिखलाता है। भद्र हँसता है—'नाचना तो लड़कियोंका काम है।'

भद्रको नाचना नहीं आता, इसीलिए ऐसा कहता है। मैंने तो बाबाको, ताऊको भी नाचते देखा है। कोई उत्सव आता है तो सब नाचते हैं। भद्र तो लाठी चलाना सिखानेकी बात करता है; किन्तु मुझसे तो लाठी उठती नहीं। भद्रका तो लकुट भी मोटा और भारी है। मैं तो वेत्र लकुट भी नहीं ले आता। कन्हाई ही तो कहता है—'तू लकुट लेकर क्या करेगा ? तुझे कोई गायें हाँकनी हैं।'

कन्हाईकी एक ही बात ठीक नहीं है। यह मुझे कहता है—'तू पतले वेत्र जैसा तो स्वयं है। वेत्र लकुट तू उठावेगा कैसे ?'

मैंने तो इसका ही वेत्र लकुट उठाकर इसे दिखा दिया। तबसे इसने अपना वह लकुट मुझे ही दे दिया है। मैं उसे लाना ही भूल जाता हूँ। कोई मुझे लकुट साथ लानेका स्मरण भी नहीं दिलाता।

कन्हाईको अपनी वस्तुएँ किसीको भी दे देनेमें कभी दो क्षण भी नहीं लगते। वह तो अपनी मणिमाला प्रायः मेरे गलेमें डाल देता है। अपने कुण्डल मुझे पहिनाकर कभी पाससे और कभी तनिक दूर खड़ा होकर देखता है।

कन्हाईने केवल अपनी वंशी किसीको नहीं दी। उसकी वंशीको लेकर भी कोई क्या करेगा ? उसके जैसी वंशी तो किसीको बजानी नहीं आती। उसकी वंशीमें कोई दूसरा फूँक मारे तो वंशी ऐसे बोलेगी जैसे चीख मारती हो।

कन्हाई तो सबको वंशी बजाना सिखलाता है। मुझे तो उसने एक छोटी वंशी दी भी है। मुझे वह मेरे पीछे खड़े होकर वंशी बजाना सिखलाता है। मैं थोड़ी-थोड़ी बजा तो लेता हूँ। वह कहता है- 'अब तू बहुत अच्छी ध्वनि निकालने लगा है।' लेकिन मुझे बजानेमें उतना आनन्द नहीं आता। वंशी तो कन्हाई ही बजाता है तो आनन्द आता है।

मैं गा सकता हूँ। चाचासे मैंने दोनों कानोंमें अँगुली डालकर गाना सीखा है; किन्तु कन्हाई तो सब भुलवा देता है। यह कहता है—'तू गा, मैं वंशी बजाता हूँ।' यह वंशी बजाने लगता है तो मुझे गाना भूल जाता है। कानमें-से अँगुली निकली और गाना भूला। कन्हाई वंशी बजावे तो कानमें अँगुली रह ही नहीं पाती।

गाना कानसे अँगुली निकालनेपर क्यों भूलता है? कन्हाई कहता है—'कानमें अँगुली डालकर गानेको भीतर न बन्द रखो तो वह कानसे भाग जाता है।'

कन्हाई तो गाता है और कानमें अँगुली भी नहीं डालता। इसका गाना इसके कानसे क्यों नहीं भागता? मैं पूछता हूँ तो हँसता है। कहता है—'मेरे केश तुझसे अधिक घुँघराले हैं। ये कानको बन्द रखते हैं।'

कन्हाईके केश जितने घुँघराले, कोमल केश तो किसीके भी नहीं हैं। मेरे केश तो सुनहले हैं और कम घुँघराले हैं। ये कानपर छाये तो रहते हैं; किन्तु कानको बन्द नहीं रख सकते।

कन्हाई मयूरोंके साथ नाचने लगता है तो मयूर नाचना भूलकर उसीको देखते, पंख फैलाये खड़े रह जाते हैं। मैं भी कन्हाईसे ऐसा नृत्य सीखूँगा। कन्हाई अवश्य मुझे सिखा देगा। वह तो मुझे कभी मना नहीं करता। मना तो वह किसीको भी नहीं करता; किन्तु मधुमंगल तो नाचनेके नामसे ही चिढ़ता है। भद्रको भी नाचना स्वीकार नहीं। श्रीदामा कन्हाईसे झगड़ता ही रहता है, अतः मैंने ही कन्हाईको मना कर दिया—'इस श्रीदामाको वंशी बजाना या नाचना मत सिखाना।'

मैं भले दाऊदादाके समीप बैठता हूँ; किन्तु कन्हाई तो तनिक-तनिक देरमें दौड़ आता है और मुझसे सटकर ही बैठता है।

तोककृष्ण–

व्रजमें मुझे तो कभी कोई चिढ़ाता भी नहीं और मेरे लिए कोई काम भी नहीं है। मैं वनमें जाता हूँ कन्हाईके साथ खेलने। न जाऊँ तो घरमें बैठा-बैठा क्या करूँ। कभी मुझे नहीं जानेको मिलता तो बहुत बुरा लगता है। यह जन्म नक्षत्र भी आया ही रहता है। जन्म नक्षत्र आता है तो मुझे मैया वनमें जाने नहीं देती। पता नहीं मेरा जन्म नक्षत्र मैया अपने आप क्यों नहीं मना लेती। उसे कन्हाईका ही बना दो तो क्या बिगड़ेगा। कन्हाईका जन्म नक्षत्र तो आता ही है। एक मेरा भी उसीको क्यों नहीं दिया जा सकता।

कन्हाईका जन्म नक्षत्र आता है तो मैं उसके साथ ही रहता हूँ। उसके बिना तो मुझे वन अच्छा नहीं लगता; किन्तु मेरे जन्म नक्षत्रके दिनको भी वह ले ले तो उसे वनमें जानेको ही नहीं मिलेगा। सब उसीको अपना-अपना जन्म नक्षत्र दे देंगे। किसी-न-किसीका जन्म नक्षत्र तो प्रतिदिन ही पड़ता है।

मुझे एक दिन वनमें जानेको नहीं मिलता तो वह दिन बिताना कठिन हो जाता है। कन्हाई सब दिन कैसे रह सकेगा वन गये बिना। मैं तो अपने जन्म नक्षत्रके दिन भी उसे नहीं रोकता।

सभी सखा तो कहते हैं कि कन्हाई वन नहीं जाता तो गायोंको वनमें ले जाना बहुत कठिन होता है। उस दिन तो बड़े गोपोंको भी गायोंको वनतक पहुंचाने जाना पड़ता है। गायें वनमें भी दौड़ती फिरती हैं और सायंकाल उन्हें इकट्ठी करना बहुत कठिन होता है। बहुत-सी तो मध्याह्नके थोड़े ही पीछे भाग आती हैं गोष्ठमें।

कन्हाईके जन्म नक्षत्रके दिन उसके बदले मैंने गायोंको हाँककर ले जाना चाहा था। गायें तो विचित्र हैं, वे तो मेरे हाँके चलती ही नहीं थीं। सब कन्हाईके भवनद्वारकी ओर ही भागती थीं।

गोपियाँ और बड़े गोप भी कहते हैं कि मैं ठीक कन्हाई जैसा हूँ। मुझे कन्हाई अपना ही पटुका देता है। मैं तो उसीकी कछनी भी बाँधता हूँ।

पीछेसे अनेक बार गोपियाँ और बड़े गोप भी मुझे 'श्यामसुन्दर' कहकर पुकारते हैं। लेकिन ये गायें तो तनिक भी धोखेमें नहीं आतीं। ये तो मुझे सूँघने भी पास नहीं दौड़तीं।

मेरे हाँके गायें नहीं चलतीं तो मैं ही क्यों इनके पीछे हैरान होऊँ ? कन्हाईके जन्म नक्षत्रके दिन मैं भी वन नहीं जाता। कन्हाई ही तो कहता है—'तोक, तू मेरे पास रहता है तो मेरा मन लगा रहता है। तू भी वनमें चला जाय तो मैं अकेले क्या करूँगा ?'

लेकिन कन्हाई तो कभी अकेला नहीं रहता। वह वन नहीं जाता तो न कपि जाते, न मयूर जाते। पक्षी और शशक भी नहीं जाते। ये सब तो कन्हाईके पास ही रहते हैं और कन्हाई इनसे खेल भी सकता है।

ये शशक, मयूर, पक्षी भी मैं वन नहीं जाता तो मेरे पास नहीं रुकते। इन्हें भी भ्रम नहीं होता कि मैं कन्हाई हूँ, तब गोपियोंको क्यों हो जाता है ? गोप मुझे दूरसे श्यामसुन्दर कहकर क्यों बुलाते हैं ?

कन्हाई कहता है—'तू श्यामसुन्दर तो है। तू मेरे समान श्याम है और तेरा नाम भी तो कृष्ण है।'

मेरा नाम तोककृष्ण है। कृष्ण तो कन्हाई है। मैं तो उससे छोटा हूँ। सखाओंमें सबसे छोटा हूँ मैं। छोटा होना बहुत अच्छा है। मुझे छोटा होनेसे कोई कुछ काम नहीं बतलाता। कोई मुझसे झगड़ता नहीं।

मैं तो अब भी किसी घरमें चला जाता हूँ। पता नहीं ये बड़े लोग क्यों एक घरको ही अपना मानकर अड़े रहते हैं। भूख लगे या खेलनेका मन हो तो जो घर पास हो, उसीमें चले जाओ।

'तू क्यों आया यहाँ ?' गोपियाँ दूर हों तो डाँटती-चिल्लाती हैं। मुझे तो बहुत आनन्द आता है।

'आया, भूख लगी है। माखन खाने आया।' मुझे डर क्या कि सच्ची बात न कहूँ।

'लाला रे, मैंने तो समझा था कि तेरा बड़ा भाई है।' मैं जानता हूँ कि गोपी मुझे कन्हाई समझकर डाँटने लगी है। मुझे देखकर तो कहेगी—'तू दही, माखन जो मनमें आवे खा ले। बैठ, मैं तुझे निकालकर देती हूँ।'

'मैं अपने आप निक लूँगा।' यह कहनेपर भी मुझे कोई नहीं रोकती। भाण्ड बड़ा हुआ या छीकेपर हुआ तो मैं लकुट मारकर फोड़ नहीं दूँ तो मेरे छोटे हाथमें नवनीत या दही कैसे आवेगा ?

'लाला ! भाण्ड मत फोड़ना।' बहुत हुआ तो गोपी पहिले ही गिड़गिड़ायेगी—'तू कहे वह भाण्ड मैं उतारकर तेरे सामने धर दूँ।'

'मैं फोड़ूँगा, तुझे क्या ?' मेरा मन भड़ाम् ही करनेका हो तो भी कोई मुझे डाँटती नहीं।

'अच्छा फोड़ ले।' गोपी तो कहती हैं—'लेकिन अपने बड़े भाईको भी ले आना। मैं बहुत मीठा दही जमाकर रखूँगी। ढेर सारा मीठा नवनीत निकालूँगी।'

अब तो वनमें बरसानेकी लड़कियाँ दही बेचने निकलती हैं तो आती हैं। मैंने कन्हाईसे कहा—'तू इनका दही क्यों छीनता है। तू कहे उतनी दहेंड़ियाँ मैं इनसे ला देता हूँ।'

मुझे तो ये अपनी ओरसे ही दही देती हैं। मैं दीख जाऊँ तो दूरसे ही हाथ हिलाकर बुलाती हैं। मुझे कहती हैं—'लालजी, तुम दहेंड़ीमें ही भोग लगाओ।'

मैंने तो बरसानेकी सब लड़कियोंको भाभी बना लिया है। सबको भाभी कहता हूँ। मुझसे तो उनमें कोई चिढ़ती नहीं।

कन्हाई कहता है—'हम कोई भिखारी हैं कि माँगकर दान लेंगे। हम तो छीनकर लेंगे।'

इसमें भीख या दानकी बात तो मुझे लगती नहीं। लेकिन कन्हाईको छीननेमें आनन्द आता है तो भी कोई बुरी बात नहीं लगती मुझे। वह कहता

है कि वह इन सबसे ब्याह कर लेगा। तभी तो मैंने इन्हें भाभी बना लिया है। तब अपनी ही वस्तु चाहे माँगकर ले लो या छीनकर लो।

कन्हाई तो छीनता भी है मेरे ही लिए। वह अपने मुखमें तो बहुत तनिक-सा डालता है। मेरे मुखमें ही बार-बार देता है। मुझे भी उसके अङ्गोंपर दही या नवनीत मलनेमें पूरा आनन्द आता है। मैं तो उसके मुखपर, पेटपर भी नवनीत मल देता हूँ। दही लगा देनेपर उसका श्वेत मुख बहुत अद्भुत लगता है। बरसानेकी मेरी सब भाभियाँ थोड़ी दूर जाकर इकट्ठी खड़ी होकर देख-देखकर हँसती रहती हैं।

मेरे मुखपर कन्हाई भले दही या नवनीत सना अपना हाथ भूलसे रख दे, मेरे उदर या पीठपर तो कोई नहीं मलता। मैं तो दाऊदादाके भो उदरपर दही मल आता हूँ। दाऊदादा तो किसीको नहीं डाँटता। वह तो धीरे-से केवल मुस्करा देता है।

बड़े गोप सदा उलटी बात ही करते हैं। सब कहते हैं कि भोजन करके स्नान नहीं करना चाहिये। दही-माखन हमारी भाँति तो कभी खाते नहीं। हमारी भाँति खायँ, एक दूसरेपर फेंकें और एक दूसरेका पेट उज्ज्वल बनावें तब पता लगे कि भोजनके पश्चात् स्नान करना चाहिये या नहीं। ऐसे बिना स्नान किये सो जायँ तो उनका उदर श्वान, बिल्ली या बन्दर नहीं चाटेगा? उसपर तो ढेर सारी चींटियाँ चढ़ेगी और मजेसे घुड़दौड़ करेंगी।

हम-सब तो दही-माखनकी लूट करके, उसे सार्थक करके स्नान करते हैं। भली प्रकार जल उछालकर स्नान करते हैं। मेरा मुख, पीठ तो प्रायः कन्हाई ही धोता है और अपने पटुकेसे ही मुझे पोंछता है। मैं उसकी कछनी-पटुका ही तो पहिनता हूँ। मैया छाकके साथ हम सबके वस्त्र भेजती है। मैया मना भी करती है प्रतिदिन कि हम सब जलमें न उतरें, स्नान न करें और प्रतिदिन वस्त्र भी भेजती है। हम सब स्नान न करें तो वस्त्रोंका क्या होगा?

कन्हाई तो कभी भी अपना पटुका या स्नान करके छोड़ी गीली कछनी किसी हिरनके कन्धेपर रखने लगता है। हिरन उसे लेकर कूद जाता है, दूर ले जाता है तो मुझे आनन्द आता है। मयूरोंको पटुका ओढ़ना अच्छा नहीं लगता। मैं जब उनमें किसीको पटुका देने लगता हूँ, वे उड़ भागते हैं।

कन्हाईका गीला पटुका तो कई बार कपियोंके बच्चे उठाकर उसमें सिर छिपाने लगते हैं; किन्तु किसी कपि-शिशुको पगड़ी बाँधने नहीं आती। पगडी बाँधने तो मुझे भी नहीं आती। मेरे सिरपर पगड़ी तो कन्हाई ही बाँधता है। मैंने कहा कि वह कपिके सिरपर भी पगड़ी बाँध दे; किन्तु वह कपि तो कूदकर वृक्षकी ऊपरकी शाखापर जा बैठा। वृक्षपर चढ़कर कन्हाई कैसे पगड़ी बाँधता उसे।

कन्हाई तो मेरा बहुत अच्छा दादा है। मैं कुछ भी कहूँ, उसीको मान लेता है। मेरी माँ कहती है—'नीलमणिने तोकको सिर चढ़ा रखा है।'

मैं सिरपर तो किसीके भी नहीं चढ़ता। पता नहीं मेरी माँको यह भ्रम कैसे हो गया है। कन्हाईका सिर इतना बड़ा भी होता तो मैं सिरपर कैसे चढ़ता? सिरपर चढूँगा तो गिर पड़ूँगा। मैं तो विशालके, ऋषभके कन्धेपर चढ़ता हूँ। कन्हाई मुझसे बड़ा तो है; किन्तु इतना तो दुबला है। उसके कन्धेपर भी मैं कभी नहीं चढ़ता।

कन्हाई तो मुझसे पहिले थक जाता है। उसे पता भी नहीं लगता कि वह थक गया है। भद्र ही समझता है कि कब कन्हाई थक गया; किन्तु वह लेटता तो तब है जब मैं उसे वायु करनेके लिए कमलपत्र तोड़ लाता हूँ।

कन्हाई सुबल या भद्रके अङ्कमें सिर रखकर कदम्ब अथवा मौलिश्रीके नीचे पल्लव तल्पपर सो जाय तो उसे वायु करनेमें मुझे बहुत आनन्द आता है; किन्तु कभी वह मुझे थोड़ी देर वायु नहीं करने देता। मुझ तो तनिक देरमें हाथ पकड़कर अपने समीप लिटा लेता है।

'वायु हंस और मयूरोंको करने दे।' कन्हाई मुझे रोक देता है और मैं उसके पास लेट जाता हूँ तो हम दोनोंके दोनों ओर, सिरके पास और पैरके पास भी मयूर, हंस, सारस आकर अपने बड़े-बड़े पंख हिलाकर वायु करने लगते हैं। सारस तो बहुत वेगसे पंख हिलाता है।

वायु तो कपोत भी करते हैं। वे हम दोनोंके ऊपर इधर-से-उधर उड़ते ही रहते हैं। कन्हाई तो लेटे-लेटे इन सबोंसे बातें भी करता जाता है।

उसे इनकी बात समझमें पता नहीं कैसे आती है। वह तो शुकोंकी टें-टें भी समझता है।

मैं तो छोटा हूँ। मुझे पक्षियोंकी, कपियोंकी, मृगोंकी, गायोंकी बात समझना नहीं आता। मुझे समझकर करना भी क्या है। मेरा भैया यह कन्हाई सबकी भाषा समझता तो है। यह उनकी बात अनेक बार मुझे बतला देता है।

कन्हाई पता नहीं कितनी बातें जानता है। केवल इसे लाठी चलाना और मल्लयुद्ध करना नहीं आता। मल्लयुद्धमें तो मैं भी इसे पटकनी दे लेता हूँ और लाठी सीखना ही नहीं चाहता है।

श्रीदाम—

विडम्बना मेरी, मेरे स्वभावकी कि जो मुझे अपने प्राणोंसे बहुत अधिक प्रिय है, उसी कन्हाईके साथ मैं झगड़ पड़ता हूँ। उसीको खिझाता रहता हूँ। उसी परम सुकुमारको मैं थका देता हूँ।

कभी किसीने यह दोष मुझे नहीं लगाया था कि मैं चिड़चिड़ा अथवा असहिष्णु हूँ। मुझे अभिमानी भी कभी नहीं कहा गया। बरसानेमें तो सभी सदासे कहते रहे हैं—'लाला श्रीदामा बहुत विनम्र, बहुत उदार है।' सेवकोंके बालक भी मुझे सखा ही लगते हैं और उनके प्रति भी मैं कभी असहिष्णु नहीं हुआ। यह अभी मेरे स्वभावको क्या हो गया है ? वह भी और किसी बालकके प्रति नहीं, श्यामसुन्दरके प्रति ही मैं क्यों असहिष्णु हो जाता हूँ ?

'श्रीव्रजेन्द्रनन्दन हमारे सम्मान्य हैं।' मेरे बाबाने उस पहिले ही दिन, जब गोकुलसे वहाँके सब लोग नन्दीश्वरके समीप आये थे, मुझे स्वागतके लिए जाते समय साथ ले जाते समझाया था—'बालकोंमें मित्रता शीघ्र हो जाती है। तुम उनसे सख्य बना लोगे तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। लेकिन खेलमें भी यह मत भूलना कि हम सबको भूलकर भी उनकी कोई अवमानना नहीं करनी है।'

'मैं उनका भरपूर सम्मान करूँगा।' मैंने बाबाको वचन दिया था और मैं तो अब भी प्रतिदिन प्रातः वन जाते समय अपने इस वचनको बार-बार मनमें दुहराता हूँ। लेकिन श्यामके सम्मुख आते ही मुझे पता नहीं क्या हो जाता है। मुझे अपने किसी वचनका स्मरण ही नहीं रहता।

उस दिन पहिले मिला वह व्रजसुन्दर। देखते ही दौड़ा आया मेरे पास और सख्य तो उसने मुझसे स्थापित किया। आया और हाथ पकड़कर पूछने ही लगा—'तू कौन है ? ये बाबा आये हैं, उनका तू लाला है ? अब प्रतिदिन आवेगा ? प्रतिदिन यहाँ आया कर। हम सब साथ खेलेंगे। मेरे सब सखा बहुत अच्छे हैं। तेरे कितने सखा हैं ? तू सबको ले आया कर।'

वह तो जाने कितनी बातें कहता ही चला गया। मेरी तो उस दिन स्थिति ही विचित्र हो गयी। वह मेरा हाथ पकड़े बोलता जा रहा था और मैं उसे देख रहा था। उसकी किसी बातका उत्तर मुझसे दिया नहीं गया। उस दिन तो मुझे अपना हीं पता नहीं था। वही जहाँ-जहाँ ले गया, मैं उसके साथ गया। वह जो कराता गया, मैं करता गया।

अच्छा हुआ कि बाबाने बतला दिया था—'उन लोगोंसे कुछ लेना नहीं। हम उन्हें दे सकते हैं, उनसे ले नहीं सकते।'

वह तो अपने कण्ठकी मणिमाला ही मेरे गलेमें डालनेको उतारने लगा था। मैं बोल तो तब भी नहीं सका; किन्तु मैंने अपने हाथसे उसका हाथ पकड़कर रोक दिया उसे। उसने भी मुझे विवश नहीं किया।

मैं जानता हूँ कि बहिन उसपर प्राण देती है। बाबाने मुझे बतला दिया है कि बहिनकी उससे सगाई हो गयी है। तब हम उससे कुछ ले कैसे सकते हैं। लेकिन उसे कुछ मैं कभी दे भी नहीं सका। वह तो अपने छीकेके पदार्थ, अपने आभूषण ही दूसरोंको बाँटता रहता है।

श्यामसुन्दरसे संकोच नहीं चल सकता। मेरा वह संकोच पहिले दिन ही चला गया। दूसरे दिनसे तो वह मुझे खिझाने भी लगा। अब भी वनमें मुझें चिढ़ानेके लिए मेरा छीका छिपा देता है या लेकर ऐसे सबके मध्य बैठता है जैसे वह उसीका छीका हो। मुझें दिखा-दिखाकर उसके पदार्थ सबको बाँटता है। नटखट इतना कि मुझसे ही पूछता है—'तुझे भूख लगी है ? भूख लगी हो तो एक तो नहीं, पर आधी मठरी मैं तुझे दे सकता हूँ।'

मेरे लिए तो मैया सुबलके छीकेको ही बहुत भर देती है। बहिन मेरा छीका क़िसके लिए बड़ी सावधानीसे भरती है स्वय अपने बनाये पदार्थोंसे, मैं क्या जानता नहीं हूँ। लेकिन श्याम चुपचाप मेरा छीका लेता भी तो नहीं। वह तो मुझे अँगूठा दिखलाता है, मटकता है। मेरे छीकेके ही पदार्थ मुझे देनेको ललचाता है और फिर किसी और को दे देता है या अपने मुखमें डाल लेता है।

सुबल तो सीधा है। अच्छा ही है कि वह श्यामसे लगा हो रहता है। वह अपना छीका स्वयं उसके सामने धर देता है। श्याम मेरे छीकेके मोदक

मुखमें भी लेता है और मुँह भी बनाता जाता है—'बासी हैं। मीठे भी नहीं हैं। तू अपने मुँहका स्वाद मत बिगाड़। इन्हें मैं ही खा लेता हूँ।'

'बासी हैं, मीठे नहीं हैं तो तू रहने दे।' मुझे झल्लाहट तो आवेगी ही। बहिनके बनाये पदार्थ कोई बुरे बतलावे तो मुझे बुरा नहीं लगेगा ?

'नहीं, इनको तुझे नहीं खाने दिया जा सकता।' सब उसके साथ हँसते हैं तो मुझे और झल्लाहट आती है। कहता है—'इसे तो मैं कपिको भी नहीं दे सकता। उसे कोई रुग्ण बनाना है। इसे तो मैं और मधुमंगल ही पचावेंगे। तुम बरसानेके सब बालक तो दुर्बल हो।'

'तू बड़ा बलवान बन गया है ?' मैं श्यामकी यही बात सह नहीं सकता। यह सबसे दुर्बल है। तनिक दौड़नेमें तो इसका मुख लाल हो जाता है। इसके मुखपर स्वेद आते विलम्ब ही नहीं होता और मुझे दुर्बल कहता है।

'तू मधुमंगलसे माँग तो वह तुझे अपना प्रसाद दे देगा।' यह तो चिढ़ाता ही जाता है—'मोदक प्रसाद दे तो उसे खाकर तू थोड़ा तगड़ा बनेगा। फिर भी मैं तुझे पटकनी दे लूँगा। अभी तो तू भूखा है।'

'ब्राह्मणका प्रसाद पवित्र होता है।' मधुमंगल तो सबको चिढ़ा देता है—'बिना सेवा किये प्रसाद नहीं प्राप्त होता। मोदकका नैवेद्य लगाओ तो प्रसादमें मैं टेंटी दे सकता हूँ।'

'तुझे भोग ही मैं टेंटीका लगाऊँगा।' मधुमंगल ब्राह्मण तो है ही। श्यामसुन्दर भी उसे चिढ़ाता है। कच्ची टेंटी दिखलाता है देनेको और उसके सम्मुखकी पत्तलसे मोदक उठा भी लेता है। यह तो मैं भी कर लेता हूँ; किन्तु सुबलको संकेत कर देता हूँ कि मधुमंगल मुझसे कुछ कहने लगे तो उसकी पत्तलमें ढेरसे मोदक चुपचाप रख दिया करे। मधुमंगलको मोदक प्रिय हैं तो मोदक ही खाय वह।

मुझे पता है कि बाबाको कोई कहदे कि मैं श्यामसुन्दरसे झगड़ता हूँ तो वे पता नहीं मुझे घरमें पैर भी रखने देंगे या नहीं। बहिन सुन ले तो वह मुझसे कभी बोलेगी ही नहीं; किन्तु मैं करूँ भी क्या, यह नन्दनन्दन तो मुझे

चिढ़ाता ही रहता है। यह चाहे जब मेरी किसी वस्तुको, गाय या वृषभको ही अपनी बताने लगता है।

यह खिझाता है, तंग करता है, लड़ता है; किन्तु मैं इसके बिना रह भी नहीं पाता। सायं वनसे गायोंके साथ लौटनेपर बरसानेमें रुकते नहीं बनता। हम सब इसके साथ दूरतक आते हैं और लौटते समय जब यह अङ्कमाल देता है, बड़ी कठिनाईसे मैं अपनेको रोनेसे रोक पाता हूँ। प्रात: बहुत शीघ्र नींद टूटती है। जी छटपटाता रहता है कि कब श्यामका शृङ्गनाद सुनायी पड़े और हम दौड़ पड़ें इससे मिलने।

श्यामसुन्दर मुझे खिझा भले लेता है; किन्तु प्रतिदिन सुबलसे शामको निहोरे करता है—'श्रीदामा मुझसे लड़ा या मुझे खिझाता है, यह किसीसे कहना नहीं। हम सब तो सखा हैं। परस्पर खेलते हैं, हँसते हैं, कभी झगड़ भी लेते हैं; किन्तु दूसरे किसीसे यह सब कहना बुरी बात है। अपनी बहिनसे भी तू यह चर्चा मत करना।'

यह कन्हाई कितना स्नेहमय है, सोचा भी नहीं जा सकता। किसी सखाके शरीरपर तनिक रेखा भी बन जाय खेलमें या पुष्पचयन करनेमें कंटक अथवा नख लग जाय तो इससे उसे छिपाया नहीं जा सकता। इसकी दृष्टि सीधे वहीं पड़ेगी। इसके कमललोचन भर आते हैं। यह अपने नन्हें मुखसे फूंक मारता है बार-बार। अपने करसे सहलाता है और फिर कोई पुष्प या पत्ता ढूँढ़ता है लगानेके लिए।

'तू वैद्यराज बन गया है ?' इसे शशकके अङ्गपर मैंने पत्तेका रस लगाते देखा। थोड़े रोम ही निकले होंगे शशकके। उसके कोई आघात नहीं दीखता था; किन्तु श्याम तो उसे गोदमें ही लिये बैठा था।

'हाँ, मैं तो तेरी नाक बहुत चिपटी बना दे सकता हूँ। उस मोटे कपिकी नाक जैसी।' यह नटखट कभी सीधे बोलता ही नहीं—'तू चाहे तो मैं तेरी नाक इतनी लम्बी भी कर दे सकता हूँ कि वह पैरसे नीचेतक लटकने लगे।'

'चल, इतनी लम्बी तो किसीकी नाक सुनी भी नहीं जाती।' मैं श्यामकी डींगपर हँसने लगा। यह ऐसी बेसिरपैरकी बातें बहुत करता है।

'होती है, तूने हाथीकी नाक देखी नहीं।' कन्हाईको पता नहीं कितनी बातें स्मरण रहती हैं। मैं कहने जा रहा था कि वह तो हाथीकी सूँड़ होती है; किन्तु स्मरण आ गया कि हाथीकी नाक तो उसकी सूँड़ ही होती है।

'तू नाक चपटी या लम्वी कैसे करेगा ?' मैंने पूछ लिया—'हाथी तो पशु है। मनुष्यकी नाक उतनी लम्बी नहीं हो सकती।'

'चपटी करानी हो तुझे तो तनिक जोरसे दवानी पड़ेगी। दबाकर पत्ती लगाकर बाँध दूँगा।' यह्र तो पूरा वैद्यराज ही बन गया--'लम्बी करनी हो तो यही पत्ती लगा देता हूँ; किन्तु मेरे खींचनेसे काम नहीं चलेगा। दाऊदादाको बुलाना पड़ेगा।'

'दादा ! दादा !' यह नटखट तो दादाको ही पुकारने लगा। यह तो अच्छा है कि दादा इसके पुकारनेपर दौड़ा नहीं आता। यह तो पुकारता ही रहता है दादाको। दादा चुपचाप बैठा इसकी ओर देख लेता है।

'तू दादाको क्यों बुला रहा है ?' मैं खीझ गया।

'तेरी नाक खींचनेको।' यह तो पत्ता लिये मेरे पास ही आ गया—'ला, तेरी नाकमें इसका रस लगा दूँ।'

'तू अपनी नाकमें लगा।' इसे न रोकूँ तो मेरी नाकमें रस लगाकर हरी बना देगा नाकको और खींचने ही लगेगा। पता नहीं नाक लम्बी होगी या नहीं; किन्तु मुझे नाक लम्बी नहीं च.हिये। 'मेरी नाक जैसी है, ठीक है।'

'ठीक तो है।' यह नटखट फिर भी चिढ़ाता है—'सुबलसे अपनी नाक सटाकर देख ले। छोटी होगी तो मैं लम्बी बना दूँगा।'

नाक कोई सटाकर मापता होगा ? मैं तो इस कन्हाईकी नाकसे भी अपनी नाक सटाकर मापनेको प्रस्तुत नहीं हूँ। नाक सटायी भी कैसे जायगी ? इससे सटकर खड़े होने जाओ तो इसका ठिकाना नहीं कि नाकमें अपनी पतली अँगुली डालेगा या केशोंमें अपने कुण्डल उलझा देगा।

वैसे कन्हाईको मापकर देखनेकी धुन है। भद्रको चाहे जब कह देता है—'मैं तुझसे बड़ा हूँ। आ, मापकर देखले।'

भद्रसे आयुमें तो छोटा है ही, ऊँचाईमें भी छोटा है; किन्तु सटकर खड़े होनेपर पैरकी एड़ियाँ ऊँची करता है। कूदता है। मुझसे तो मेरे हाथकी अँगुली मापता है। पूरी हथेली मेरी हथेलीसे सटा लेता है, फिर अँगुली बड़ी दिखानेको अपनी हथेली ऊपर सरकाता है।

कन्हाई सुकुमार है। खेलमें शीघ्र थक जाता है। अतः यह थक जाय तो इसे दाव देनेको बाध्य नहीं करना चाहिये, यह मैं समझता हूँ; किन्तु यह तो मटकता है। अँगूठा दिखाता है। चिढ़ाता है—'नहीं देता दाव। तू क्या कर लेगा?'

मुझे खिझानेमें इसे आनन्द आता होगा? इसे आनन्द आता हो तो मेरा खीझना ठीक है। इसे आनन्द न आता तो यह खिझाता क्यों? मैं तो इसे अपने प्राणोंसे कहीं अधिक प्यार करता हूँ।

सुबल–

श्रीव्रजराजकुमार मेरा अपना है, इससे बड़ी गौरवकी बात तो मुझे दूसरी लगती नहीं है। वह मेरा सखा है, सम्बन्धी है, सर्वस्व है और मुझसे स्नेह करता है, बहुत मानता है मुझे। मेरे दाहिने कन्धेपर अपनी वामभुजा रखकर जब खड़ा होता या चलता है, मुझे लगता है कि—लेकिन तब मुझे कुछ भी कहाँ लगता है। तब मुझे अपना पता ही कहाँ होता है। तब तो मेरे भीतर भी कन्हाई ही जैसे बैठा रहता है।

सचमुच क्या ऐसा हो सकता है कि मेरे भीतर केवल कन्हाई ही रहे, मैं न रह जाऊँ? कितना अच्छा होता यह; किन्तु भगवती पूर्णमासीको किसीसे कहते मैंने सुना—'श्रीव्रजेन्द्रनन्दनमें प्रेम हो तो उनसे अभिन्नता हो जाती है।' मुझमें प्रेम तो है नहीं। प्रेम क्या होता है? कैसे होता है?

मेरी बहिन राधाके लिए लड़कियोंको मैंने कहते सुना है—'स्वामिनी प्रेमसे ही बनी हैं। वे जिसपर कृपा करती हैं, उसे श्यामसुन्दरमें प्रेम दे देती हैं।'

मेरी बहिनमें प्रेम होगा, तभी तो वह कन्हाईसे मिलनेको छटपटाती ही रहती है। मैं सायं घर लौटता हूँ तो मुझे सखियोंके साथ घेरकर बिठा लेती है और कन्हाई दिन भर क्या-क्या करता रहा, पूछा करती है। लेकिन मेरी यह बहिन तो बहुत सीधी है, बहुत भोली है। यह तो सभीपर कृपा ही करती है। इसे तो कभी किसीपर रुष्ट होते मैंने देखा नहीं है।

मेरी बहिन बेचारीको तो कन्हाईसे मिलनेका बड़ी कठिनाईसे अवसर मिलता है। जाने कितने बहाने बनाने पड़ते हैं और इसे बहाने भी बनाने नहीं आते। दही बेचने जानेका बहाना भी कोई बहाना है। आधी घड़ी भी नहीं मिलती वहाँ वनमें टिकनेको। मैंने इससे कहा भी कि वनमें कुन्जोंमें लुका-छिपी खेलने या झूला झूलने आया कर तो बात इसकी समझमें ही नहीं आती। लड़कियोंकी बात मैं समझता भी नहीं हूँ। बहिन तो बिल्लीसे भी डर जाती है, वनमें कपि हैं और सिंह भी हैं।

मैं तो इस बहिनको देखकर ही व्याकुल होता हूँ। यह मुझे बहुत छोटेपनसे दया करने योग्य लगती है। इतनी दुबली-पतली और दुर्बल है कि वनतक पहुँचती कैसे है, पता नहीं। मैं दिन भर कन्हाईके साथ रहता हूँ। उसके साथ खेलता-खाता हूँ और ये सब लड़कियाँ दिन भर घरमें घुटती ही तो रहती हैं। इन सबपर तो दया ही की जा सकती है, ये क्या दया करेंगी ? करेंगी भी कैसे ? इन्हें तो वनमें भी चाहे जब जानेकी सुविधा नहीं है।

बहिनके लिए तो मैं ही कन्हाईकी वनमाला, उसकी अलकोंमें लगे पुष्प ले आता हूँ। बहिनको वह वनमाला बहुत प्रिय है। यह उसीको गलेमें दिन भर डाले रहती है और मुझे तो कन्हाईसे कहना भी नहीं पड़ता। वह अपने गलेकी वनमाला मिलते ही मेरे गलेमें डाल देता है। अपने केशोंमें-से पुष्प निकालकर मेरा केश-शृङ्गार करता है। बहिन और इसकी सखियाँ जब मैं सायंकाल लौटता हूँ, मेरे शरीरपरके सब पुष्प, पुष्पाभरण, किसलय, गुंजामाला और पिच्छ बाँट लेती हैं। सायंकाल लौटकर मुझे इन पुष्पादिको उतारना ही तो रहता है। कोई माला पहिने, पुष्प सजाये शयन तो करेगा नहीं।

मेरा पटुका और कछनी भी प्रतिदिन ये लड़कियाँ नवीन कर देती हैं। कन्हाई मेरे पटुकेमें चाहे जब हाथ पोंछ देता है। वह भोजन करते-करते भी हाथ मेरे पटुकेमें पोंछ लेता है। मेरे पटुकेमें, कछनीमें उसके हाथका लगा दही, नवनीत या कोई भी पदार्थ धब्बे बना देता है। बहिन ठीक ही कहती हैं कि मेरे वस्त्र दूसरी बार पहिनने योग्य नहीं रह जाते; किन्तु उन वस्त्रोंका ये लड़कियाँ क्या करती होंगी ? ये तो सब उन्हें बड़े आग्रहसे लेती हैं।

'तू यह मेरा मैला पटुका क्यों ओढ़े है ?' मैंने बहिनसे एक दिन पूछा था। कन्हाईने इन सबोंका दही छीनकर खाया, लुटाया और मेरे पटुकेमें दही सने हाथ बार-बार पोंछता रहा। दही खाकर हाथ-मुँह वह धोता पीछे है, पहिले मेरे पटुकेमें पोंछ देता है। उस दिन तो पटुका बहुत सन गया था। बहिनके लिए नवीन वस्त्रोंका क्या अभाव हो गया है कि वह मेरा उतना दही सना मैला पटुका ओढ़े घूम रही थी ?

'तेरा पटुका मुझे बहुत प्यारा लगता है।' बहिनने कह दिया और पता नहीं क्यों उसका मुख अत्यन्त लाल हो गया। वह मेरे समीपसे भाग गयी।

'तू पीली कछनी क्यों नहीं पहिनता ?' एक दिन मुझसे छोटी बहिन अनंग मंजरीने पूछा। मैं तो उसे हिरण्या कहता हूँ। वह मृगीकी भाँति फुदकती ही रहती है।

'क्यों, तू अब कछनी बाँधा करेगी ?' मैं इसे कभी-कभी चिढ़ा देता हूँ। यह भी तो मुझे चिढ़ाती है। यह कहती है—'मैं अपने सखाओंके वस्त्राभरण माँग लाता हूँ।' माँग भी लाऊँ तो अपने सखाओंसे ही तो माँगता है। वैसे हम सब तो परस्पर अपने पटुके, आभूषण परिवर्तित करते ही रहते हैं। कन्हाईसे मेरी कछनी या पटुका नहीं परिवर्तित हो सकता। वह पीली कछनी और पटुका लेता है। मुझे बहिनके समान नीले वर्णका पटुका, कछनी प्रिय है। तभी तो बहिन मेरा उतारा पटुका ओढ़ लेती है।

मेरा पटुका अनेक बार भद्रसे बदल जाता है। वह दाऊदादा जैसा पटुका लेता है। दाऊदादासे अपना पटुका वह बदलता ही रहता है। लेकिन कछनी वह कन्हाई जैसी पीली बाँधता है। मैं जिस दिन भद्रसे पटुका बदल लाता हूँ, सायंकाल लौटते ही यह हिरण्या मेरा पटुका झपट लेती है। इसे कैसे पता लगता है कि पटुका मेरा नहीं है। इसीलिए यह पीली कछनीकी बात करती होगी। पीली कछनी पहनूँ तो वह भी बदलती रह सकती है।

'तुझे कन्हाईकी कछनी चाहिए ?' मैंने चिढ़ानेके लिए ही पूछा। जानता हूँ कि यह कन्हाईकी पहिनी वस्तुएँ लेती नहीं है। यह तो उसे अपनी बड़ी बहिनका स्वत्व मानती है।

'मुझे किसीकी कछनी-पटुका नहीं चाहिए। तू ही दूसरोंके उतारे वस्त्र पहिनाकर।' हिरण्या चिढ़कर बोली—'मैंने तो इसलिए कहा कि तू पीली कछनी और पटुकेमें बहुत गोरा दीखेगा।'

'तब तू पीली साड़ी पहिनकर तितली क्यों नहीं बनती।' मैंने भी चिढ़ा दिया—'तू तो हरी साड़ी पहिनकर हरीमिर्च बनी रहती है।'

'मैं कोई अपने लिए कहती हूँ।' यह छोटी बहिन तो रूठकर चली गयी। मैं जानता हूँ कि मैं पीली कछनी बाँधूँ तो वह कन्हाईसे परिवर्तित हो जा सकती है। वनमें स्नानके पश्चात् हम सब अपनी कछनियाँ सूखने डालते हैं तो उठाते समय मेरी कछनी अनेक बार दाऊदादासे बदल जाती है। इन लड़कियोंको मैं दाऊके कोई वस्त्र या आभूषण पहिन आऊँ, यह बुरा लगता है। क्यों बुरा लगता है? इसमें इनका तो कुछ बिगड़ता नहीं।

मैया तो इन लड़कियोंसे भी अधिक अप्रसन्न होती है। वह कहती है—'नन्दगाँवके किसीकी कोई वस्तु मत लिया कर। तेरी कोई वस्तु वे ले लें तो दे दिया कर; किन्तु उनकी वस्तु बदलेमें मत लिया कर।'

यह तो बहिन मेरे आभूषण आदि सायंकाल ले लेती है और मैयासे बतलाती नहीं कि मैं कन्हाईसे यह सब बदल आया हूँ। मैयाको पता लगे तो वह मुझे बहुत डाँटेगी और मैं कन्हाईको मना नहीं कर सकता। उसे तो मेरे साथ अपने आभूषण बदल लेनेकी धुन है। अपने सब आभूषण मुझे पहिनाकर देखता है, ऐसे देखता है जैसे मुझे कभी देखा ही न हो। मेरे आभूषण स्वयं बड़े चावसे पहिनता है।

कन्हाई यह सब कुछ अभी नहीं करने लगा है। वह सबके साथ जब गोकुलसे यहाँ नन्दीश्वरपर रहने आया था, मैं भी गया था अपने बाबाके साथ उन लोगोंके पास। मुझे बहुत कुतूहल था कि व्रजराज नन्दबाबा कैसे होंगे। उनका कुमार कैसा होगा और उनके साथके बालक कैसे होंगे।

मुझे तो सबसे पहिले भद्र मिला था। उसने मिलते ही मेरा हाथ पकड़ा और बोला—'चल, तुझे दाऊदादासे मिलादूँ और कन्हाईसे भी। तू अब मेरे सखाओंके दलमें आ गया।'

भद्र विचित्र है। उसने न मेरा नाम पूछा, न गाँव। मैं उसके दलमें आना स्वीकार करूँ, यह भी उसने अपेक्षा नहीं की। यह तो मुझे पीछे पता लगा कि वह सब बालकोंके दलका यूथप है और किसीसे नाम, गाँव या उसके बाबाका नाम वह कम ही पूछता है। वह तो सबको आज्ञा ही देता है। किसीकी स्वीकृति मिले, इसकी चिन्ता ही नहीं करता।

दाऊदादाको मैंने प्रणाम किया तो उन्होंने गले लगा लिया। वे बोले—'अबसे तू भी हमारा हो गया।'

दाऊदादाने भी मुझसे नाम नहीं पूछा। नाम तो मेंने ही बतलाया। मैंने ही बतलाया कि मैं श्रीदामका छोटा भाई हूँ। मैंने तो यह भी बतलाया कि मेरी दो बहिनें हैं। छोटी हिरण्या बहुत चंचल है और राधा बहिन तो मेरे जैसे ही है। उसमें और मुझमें लोगोंको पहिचानेमें भी भ्रम होता है।

भद्रने उसी समय मुझे हाथ पकड़कर वहाँसे चलनेको कहा और कन्हाईको पुकारा। कन्हाई तो मेरे श्रीदाम दादाका हाथ पकड़े उसीसे पता नहीं क्या-क्या बातें कर रहा था।

'इसे पकड़।' भद्रने कहा—'कनूँ, यह इस श्रीदामका छोटा भाई है और कहता है कि इसकी बहिन राधा ठीक इसीके जैसी है।'

'यह ठीक उसीके जैसा है।' श्रीदाम दादाने इतना ही कहा।

'तू अबतक कहाँ था?' कन्हाई तो दोनों भुजाएँ मेरे कण्ठमें डालकर लिपट ही गया। बड़ी देरतक मुझे गले लगाये रहा। फिर उसने अपने गलेकी वनमाला मुझे पहिनादी और मेरे कुण्डल उतारकर अपने कानोंके कुण्डल मुझे पहिना दिये। मेरे कुण्डल उसने अपने कानोंमें पहिन लिये।

अपने कुण्डल मुझे पहिनाकर मुझे ऐसे देखता रहा कि मैं भाग ही जाता यदि भद्र मेरा हाथ न पकड़े होता। मुझे तो बहुत लज्जा आ रही थी।

'तूने उसके कुण्डल क्यों लिये?' लौटते समय श्रीदाम दादाने मुझे डाँटा था—'बाबाने कहा है कि उन लोगोंकी कोई वस्तु हमें नहीं लेना चाहिये।'

'उसने मेरे कुण्डल ले लिये और अपने पहिना दिये।' मुझे लगता नहीं था कि इसमें कोई दोष हुआ।

'यह तो मेरे सामने ही हुआ।' श्रीदामने कहा—'उन्हें कुण्डल दे देनेमें दोष नहीं था; किन्तु उनका लेना·······।'

'तूने भी तो मना नहीं किया।' मैंने कह दिया--"मुझसे तो मना किया नहीं जाता था। मैं उसे कभी मना नहीं कर पाऊँगा। वह तो कह दे कि

'तू मेरे घर मेरा सेवक बनकर रहे' तो भी मैं उसे मना नहीं कर पाऊँगा। तू मना कर पावेगा ?"

श्रीदाम दादा चुप हो गया। वह फिर नहीं बोला। मैं जानता हूँ कि श्यामने इसके कानोंमें कुण्डल डाले होते तो यह भी उसे मना नहीं कर पाता।

'तू ये कुण्डल कहाँसे लाया ?' मैं घर आया तो बहिनने देखते ही मेरा हाथ पकड़ा और मुझे एक ओर ले गयी। उसने पहिले तो मेरे गलेसे वनमाला निकालकर अपने गलेमें डाली और फिर मेरे कानोंकी ओर देखने लगी— 'बड़े सुन्दर हैं।'

'तुझे अच्छे लगते हैं ?' मैंने कुण्डल निकालते हुए ही उससे पूछा। उसने तो उत्तर देनेके स्थानपर अपने कानोंके कुण्डल उतार दिये और अपना कान मेरे सामने कर दिया। बहिनने बहुत दिनोंतक वे कुण्डल कानोंसे नहीं उतारे।

कन्हाई तो तबसे प्रायः प्रतिदिन मुझसे आभूषण बदल लेता है। वह मेरा है, मेरा अपना। दाऊदादा जिसे अपना कह देता है, कन्हाई उसका हो जाता है। कन्हाई तो उसका हो जाता है, जिसे भद्र अपना कह देता है। भद्र और दाऊदादा दोनोंने मिलते ही मुझे अपना बना लिया था।

कन्हाईको छोड़कर मुझे रात्रिमें घर आना पड़ता है। इसलिए आना पड़ता है कि बहिन मेरा मार्ग देखती झरोखेपर ही बैठी रहती है। मैं उसका उदास मुख नहीं देख सकता। कन्हाईका भी उदास मुख मुझसे नहीं देखा जायगा। मैं तो इन्हीं दोनोंका हूँ।

भद्रसेन—

वरूथप, विशाल, ऋषभ, अर्जुन जैसे सखा मुझसे बड़े हैं। लेकिन हम सबमें आयुका इतना कम अन्तर है कि छोटा-बड़ा कुछ पता नहीं लगता। मैया कहती है कि दाऊदादा सबसे बड़ा है और मैं उससे दो महीने छोटा हूँ। इस दो महीनेके बीचमें ही विशाल, वरूथप, अर्जुन, ऋषभ आदि सब हुए हैं। दिनोंका ही अन्तर है, महीनोंका नहीं और मुझसे दस महीने छोटा कन्हाई ही अपनेको मुझसे छोटा नहीं मानता तो हम सबमें छोटे-बड़ेका क्या पता लगना है।

बड़ा तो दाऊदादा है। बाबा कहता है कि वह राजकुमार है। हम सखाओंका तो वह राजा है ही। लेकिन वह चुपचाप बैठा रहता है। वरूथपको गायोंकी ही चिन्ता रहती है। विशाल, ऋषभ और अर्जुन बहुत सीधे हैं। इसलिए सखाओंकी चिन्ता मुझे करनी पड़ती है। सबसे अधिक चिन्ता करनी पड़ती है कन्हाई की।

हमारा कन्हाई इतना भोला है कि कब वह थक गया और कब भूखा है, इसका उसे पता ही नहीं लगता। बहुत ही चपल है और हठी भी कम नहीं है। दौड़ता रहेगा, कूदता रहेगा मृगोंके साथ, नाचता रहेगा मयूरोंको चिढ़ाते और कोयलके साथ कू-कू करता रहेगा। उसे पता ही नहीं रहेगा कि उसका मुख आतपसे लाल हो गया है। स्वेद झलमला आया है। पैर तप्त रेणुकापर दौड़नेसे बहुत अरुण हो गये हैं। मना करो तो और हठ करके वही करेगा। इतना सुकुमार है कि इसका ध्यान न रखो तो दूसरे दिन वनमें आने ही योग्य नहीं रहेगा।

कन्हाई तो हम सबका प्राण है। इसके पैर दुखेंगे, यह सोचकर ही जी व्याकुल हो जाता है। लेकिन इसे तब रोक लेना सरल नहीं है जब यह किसी धुनमें लगा हो और यह तो धुनमें ही लगा रहता है। दौड़ने, खेलने, गायोंको सहलानेकी धुन इसे चढ़ी ही रहती है।

इस व्रजसुन्दरको किसीका थोड़ा भी दुःख सहन नहीं है। इसीलिए मैं इसे विश्राम भी दे पाता हूँ और आहार लेनेको भी बैठा पाता हूँ। मुझे कहना पड़ता है—'मैं थक गया अथवा मुझे तो बहुत भूख लगी है।'

यह इतना स्नेहमय है कि मेरी थकावट अथवा क्षुधाकी उपेक्षा नहीं कर सकता। यह भी जानता है कि यह खेलमें लगा रहेगा तो मैं अकेले न विश्राम कर सकता, न कुछ खा ही सकता हूँ।

अपने सबसे छोटे भाई, मेरे सहोदर अनुज तोककी बात यह टाल नहीं पाता। इसलिए मुझे अनेक बार तोकको ही समझाकर सन्तुष्ट करना पड़ता है। तोक ही इसे हाथ पकड़कर कह सकता है—'कनूँ! तू थक गया है। भद्र और सुबलने तमालके नीचे किसलय बिछाकर उसपर पुष्पोंकी पंखड़ियाँ भी बिछा दी हैं। तू चल, उसपर लेट जा। मैं तुझे वायु करूँगा। देख, मेरे लिए भद्र ये कमलपत्र तोड़ लाया है।'

कन्हाई तोकको मना नहीं कर पाता। तोक हाथ पकड़े तो यह भले बहुत थोड़े क्षणको लेटे, लेटना तो इसे पड़ता ही है।

यह कन्हाई तो बहुत नन्हा था तबसे मेरे बिना नहीं रहता था। रानी माँ कहती हैं कि कन्हाई रात्रिमें भी जागता तो अपनी शय्यापर बल और भद्रको टटोलता था। दोनोंमें कोई न हो तो रोने लगता था। दोनोंके मध्यमें ही शान्तिसे सोता था। इसलिए भद्रको इसके समीप ही रात्रिमें भी रखना पड़ता था।

मुझे स्मरण है, यह जब मैयासे झगड़ रहा था। मैया कहती थी—'अब तू अपनी छोटी शय्यापर पृथक सो। दाऊ और भद्र बाबाके समीप सोवेंगे।'

'मैं भी बाबाके समीप सोऊँगा।' कन्हाईने मुँह बना लिया—'यहाँ मुझे हाऊसे कौन बचावेगा ?'

'मैं तेरे पास ही रहूँगी।' मैयाने कहा।

'नहीं, तू सो जायेगी।' कन्हाईने नहीं ही माना कि मैया उसकी रक्षा कर सकती है।

'तू चल !' इसकी यह हठ तो तबसे है, जब यह ठीक बोल भी नहीं पाता था। भवनकी देहरी भी पार करना हो तो मुझे बुलाता, मेरा हाथ खींचता था। दाऊदादा न भी हो तो भी चल देता था; किन्तु मेरे बिना तो देहरीसे बाहर पैर ही नहीं रखता था।

अब भी मेरा जन्म नक्षत्र आता है तो उस दिन वनमें नहीं आता। मैंने कहा भी कि—'तू क्यों यहाँ दिन भर बैठा रहेगा। तू गायोंके साथ जा।'

'वहाँ वनमें मुझे कौन बचावेगा ?' यह कभी-कभी अटपटी बातें करने लगता है। कहता है—'तू रहता है तो तेरे डरसे बन्दर, रीछ कोई मुझे नहीं काटते। तू नहीं रहेगा तो मुझे तो मयूर भी चोंच मार देगा। मुझसे तो कोई डरते नहीं। सब तुझसे ही डरते हैं।'

'दाऊदादा तो तेरे साथ रहेगा।' मैंने कह देखा है—'दूसरे सब सखा रहेंगे। तू जायगा तो तोक भी जायगा। तू नहीं जायगा तो तोक नहीं जायगा।'

'दाऊदादा तो कुंजमें चुपचाप बैठ जायगा। वह तो पुकारनेपर भी नहीं बोलता है।' कन्हाई अड़ा रहा—'सब सखा खेलनेमें या गायें घेरनेमें लग जाते हैं। कोई मुझे नहीं सम्हालता। तू नहीं रहेगा तो मैं डरसे ही खेल नहीं सकूँगा। श्रीदामा तो मुझे तंग कर लेगा। मैं यहीं तेरे पास तोकके साथ खेलता रहूँगा।'

यह बात इसकी ठीक है कि दाऊदादा कहीं भी चुपचाप बैठ जाता है। सखाओंको भी गायें सम्हालनी रहती हैं। खेलमें लगनेपर उनका ध्यान इसकी ओर नहीं भी रह सकता है।

यह नटखट है। श्रीदामाको चिढ़ाये बिना मानेगा नहीं और दोनों झगड़ पड़ेंगे तो दूसरा इन्हें कोई सम्हाल नहीं पाता। दाऊदादा समीप हो तो सम्हाल लेता है; किन्तु वह समीप हो तो कन्हाई ही कम ऊधम करता है। दाऊदादा कहीं तनिक दूर हो तभी इसे ऊधम सूझता है।

मुझे भी स्वीकार नहीं है कि कन्हाई मैं न जाऊँ तब वनमें जाय। मुझे तो यह भी स्वीकार नहीं कि वनमें यह थोड़े क्षणोंको भी मुझसे दूर चला

जाय। इसका क्या ठिकाना कि कब वृक्षपर चढ़ने लगेगा या किसी पशुके मुखमें हाथ डालेगा। यह मृगकी पीठपर भी बैठ सकता है। वह गवय तो इसे लेकर भाग ही खड़ा हुआ था। उसे तो मैंने ललकारा तब रुका। कन्हाईको किसी पशुकी पीठपर जमकर बैठना नहीं आता और वनपशु कोई प्रशिक्षित गज या अश्व तो हैं नहीं। वे तो चौकड़ी भरते दौड़ेंगे। कन्हाई तो यह भी स्मरण नहीं रख सकता कि जलमें उतरनेपर कमल वनके मध्य नहीं जाना चाहिये। कमलनालका स्पर्श त्वचाको छील देता है।

मैया प्रतिदिन प्रातः गोचारणको जाते समय जाने कितनी चेतावनियाँ दिया करती है; किन्तु कन्हाईको क्या उनमें-से एक भी स्मरण रहती है। यह सबकी बातको हाँ कर देता है; किन्तु यह तो दो-चार क्षणमें भूल जाता है। ठीक उसके विपरीत करने लगता है। पूछो तो कहेगा—'अरे, मैं तो भूल ही गया।'

यह तो अपने भूलनेपर भी ताली बजाकर हँसता है। अब इसे सदा सब समय साथ रहकर सम्हाला न जाय, तो पता नहीं कब क्या कर ले। मैं वन न जाऊँ और यह चला जाय तो मैं तो इसकी चिन्ता करते-करते ही अधमरा हो जाऊँगा।

कन्हाईका स्वभाव भी विचित्र है। बठे-बैठे, खाते-खाते या खेलते-खेलते ही इसे कुछ दूसरी बात सूझेगी और उठकर दौड़ पड़ेगा। पूछो तो भी कुछ बतलावेगा नहीं। उलटे हाथ हिलावेगा या कह देगा—'अभी आता हूँ।'

इसके अभीका कोई भरोसा नहीं है। यह अभी कहकर एक ओर जाय और किसी बछड़ी या कपिके साथ खेलने लगे तो भूल ही जायगा कि भोजनके मध्यसे भाग आया है और सब सखा इसकी प्रतीक्षा करते बैठे हैं। अतः मुझे तो इसके साथ दौड़ना पड़ता है। इसे अकेले कहीं जाने नहीं दिया जा सकता।

मैं तनिक चूक गया उस दिन। यह कन्दुक खेलते श्रीदामासे उलझ पड़ा और उसका कन्दुक ह्रदमें फेंककर कदम्बपर ही चढ़ गया। श्रीदामा बहुत रुष्ट था। मैं कदम्बपर चढ़ता तो कन्हाई और ऊपर जाता। मैं इसे किसी प्रकार समझाकर उतारना चाहता था; किन्तु तबतक तो यह उस ह्रदमें कूद ही पडा था।

उसी दिन मैंने अपने कान पकड़े। इस चपलपर बराबर सतर्क दृष्टि रखनी पड़ती है। इसके साथ ही लगे रहना पड़ता है। इसे सम्हाले रहना कोई सरल काम नहीं है और इसे सम्हालना तो अत्यन्त आवश्यक है। इसे किसी सङ्कटमें नहीं पड़ना चाहिये। कोई नन्ही आशङ्काके लिए भी अवसर नहीं होना चाहिये।

पता नहीं बड़े गोप-गोपियाँ राक्षसोंसे इतना क्यों डरते हैं। राक्षस तो देखनेमें डरावने और खोखले होते हैं। उन्हें तो कन्हाई खेल-खेलमें मार देता है। मुझे लगता कि राक्षस इसे तनिक खरोंच भी ले सकते हैं तो कन्हाईको कभी उनके पास जाने देता? मैं ही उनका कचूमर बना डालता। पर यह प्रसन्न होता है उन्हें मारनेमें और उनको मारना तो बताशा फोड़ने-जैसा है।

कन्हाई जैसे खेलते-खेलते भागकर दाऊदादाके पास जाकर उनसे सटकर बैठ जाता है और उनसे ढेर सारी बातें कहता रहता है, फिर बीचमें ही भाग लेता है; वैसे ही यह बीच-बीचमें दौड़ा आता है और मुझसे लिपट जाता है। इसे पता नहीं कितनी बातें सदा कहनी रहती हैं। कभी अपनी बात पूरी नहीं कर पाता। बीचमें ही कुछ दूसरा स्मरण आवेगा और उसके लिए दौड़ जायगा।

'तू इसकी पत्तल बनादे!' यह तो कभी कमलदलकी पत्तल बनानेको कहेगा, कभी पाटलदलकी या किसी बहुत ही छोटे पत्रकी। 'तू इसको दूध देनेको कह!' कभी छोटी बछड़ी या बछड़ेसे ही दूध पाना चाहेगा। कब क्या करनेको कहेगा, कुछ ठिकाना नहीं है।

'आज तो छाक अबतक नहीं आयी।' किसी दिन वनमें जानेके आधी घड़ीपर ही कहेगा—'तू इस कपिको मैयाके पास भेज झटपट।'

कन्हाईकी किसी बातका खण्डन मुझे कभी आवश्यक नहीं लगता। यह तो अपनी बात स्वयं क्षण भरमें भूल जाता है: इसलिए मैं बन्दरको मैयाके पास जानेको कह भी दूँ तो क्या बिगड़ता है। बन्दरको तनिक दौड़ा दिया—बस।

कन्हाईकी बातें सुन लेता हूँ। यह जैसे प्रसन्न हो, वैसा कह देता हूँ; किन्तु इसकी सम्हाल रखना मुख्य है। इसके साथ लगे रहना, इसे देखते रहना ही मेरा जीवन है।

उपसंहार–

श्रीव्रजराजकुमारके असंख्य स्वजन हैं। उनमें-से प्रत्येककी अपनी भावना है श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके प्रति और कन्हाई तो भावमय है। जिसकी जैसी भावना है इसके प्रति, उसके लिए वैसा ही इसका स्वरूप, रूप और व्यवहार। इस सबका चिन्तन अनन्त कालतक भी कोई अन्त:करण करता रहे, तब भी क्या इस चिन्तनका ओर-छोर मिलना है ?

वस्तुत: तो कन्हाई ही है। यह अद्वितीय होनेपर भी लीलामय है। अत: असंख्य रूपोंमें अनादि कालसे लीला कर रहा है। अपने ही विविध रूपोंके साथ विचित्र-विचित्र क्रीड़ाएँ करते रहनेके कारण ही तो यह निर्विशेष निखिल विशेषैकधाम है।

अन्त:करणकी सफलता, सार्थकता, कृतार्थता ही कन्हाई और इसके स्वजनोंका चिन्तन करनेमें है। लेकिन अन्त:करण असीम, असीम शक्ति हुआ नहीं करता। जैसे अन्त:करण संस्कारशून्य नहीं होता, वैसे ही उसमें अनन्त संस्कार ग्रहण करके उनको सुरक्षित रखनेकी शक्ति भी नहीं होती। उसकी सीमा है। किसीकी सीमा अधिक और किसीकी कम। मैं जानता हूँ कि मेरी सीमा, मेरे अन्त:करणकी सीमा अत्यल्प है।

मैं यह भी जानता हूँ कि किसी भी दूसरेके अन्त:करणसे तादात्म्य स्थापित कर लेना केवल अतिशय विशुद्ध अन्त:करण महत्पुरुषोंके लिए ही शक्य है। अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्रपर ही कोई रंग अपनी छटा ठीक प्रकट कर सकता है। वस्त्रमें थोड़ा भी मैलापन होगा तो वह रंगमें अपना मैलापन भी अवश्य सम्मिलित कर देगा। अन्त:करण अपने संस्कार और अहंकारसे कलुषित हुआ जिससे तादात्म्य होना चाहेगा, उसीमें अपने ही भावोंका आरोप करेगा।

मुझे इस सम्बन्धमें कोई भ्रम नहीं है कि मेरा अन्त:करण निर्मल नहीं है। मुझमें प्रबल अहंकार है और वह सर्वथा शुद्ध नही है। यह तो कन्हाईका

ही पक्षपात है मेरे साथ कि इसने मेरे अहंकारमें भी अपना सौरभ सम्मिलित कर दिया है। मैं मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके वंशमें उत्पन्न हुआ, अतः वे चाहें तो भी यह अस्वीकार नहीं कर सकते कि मैं उनका वंशज हूँ। वे संकोचीनाथ तो किसीको भी अस्वीकार करना जानते ही नहीं। जीवका ही दुर्भाग्य कि उनको अपना नहीं कह पाता। इसके अतिरिक्त देह मिला भगवान विश्वनाथके पावन क्षेत्रमें। किसी भी सत्पुरुषके घरमें उसकी इच्छाके विपरीत भी कोई कुतिया बच्चे दे देती है तो वह सत्पुरुष उन पिल्लोंको अपना मान लेता है। अवढरदानी आशुतोष भोलेबाबा तो भूत-प्रेत-पिशाच, डाकिनी-शाकिनी वर्गको भी अपनाये रहते हैं।

यही अहङ्कार रहता तो वह धन्य था। लेकिन मेरे कलुष बहुत हैं। यह भी है, कन्हाईका ही पक्षपात है यह। यह भी इसीका पक्षपात है कि इसकी, इसके जनोंकी कुछ लीला, उनके कुछ भाव यह मेरे द्वारा व्यक्त करता रहा है। उसमें कितना मेरे अन्तःकरणका मालिन्य मिल जाता है, कैसे जान सकता हूँ।

नन्दनन्दनमें दास्यका परिपाक नहीं हो पाता। यह चपल ऐसा है कि इसकी सेवा करने जाओ तो यह आपकी ही सेवा करने लगेगा। सेवा करता ही यही है। सबकी सेवा यही तो कर रहा है। लेकिन हाथ जोड़कर स्तुति करनेवालोंके समीपसे या तो भाग खड़ा होता है अथवा उनकी स्वयं स्तुति करने लगेगा।

आप जानते हो कि कन्हाई स्तुति करे तो क्या करेगा ? छोटे-से भोले व्रजराजकुमारको वेद-मन्त्र अथवा भारी-भरकम लच्छेदार भाषाके श्लोक आते होंगे, यह आप आशा नहीं कर सकते। यह तो बहुत जल्दी-जल्दी अपने वृषभोंके, बछड़ोंके, गायों-बछड़ियोंके, सखाओंके अथवा जो भी नाम इसे स्मरण आते जायँगे, बोलता जायगा। आप क्या कहना चाहते हो कि केवल नाम लेना स्तुति नहीं है ? आपको भी तो कुछ सहस्रनामोंका नाम पता होगा। भले आपको उसमें-से कोई कण्ठस्थ न हो।

आवश्यक नहीं है कि कन्हाई नाम ही गिनाता जाय। यह—'भम्मू, झट्टू, खल्ले, गल्ले' कुछ भी बोलता जा सकता है। इसीलिए तो गोपाल

सहस्रनाममें इसे भी 'मिली हिली गोली गोलाल गुग्गली' कहा गया है। वैसे विद्वानोंका कहना है—**'न स शब्दो न यः शिवः।'**

वह शब्द सम्भव ही नहीं है जिसका अर्थ भगवान न हो सकता हो। अतः आप विद्वान हो तो कन्हाई जो ऊटपटाँग बोलता जाय, उसका अर्थ करके उसे अपनी स्तुतिपरक समझते जाओ। आप विद्वान नहीं हो बहुत बड़े, तो मानलो कि यह नन्हा गोपकिशोर अपनी समझके अनुसार आपका स्तवन कर रहा है।

एक बात पक्की है, यदि कन्हाई इस प्रकार अपने ढङ्गसे आपकी स्तुति ही करने लगा तो थकना आपको ही पड़ेगा। यह बोलता जायगा, बोलता जायगा। जितनी देरमें आप चार शब्द बोलोगे, उतनी देरमें तो यह चौदह शब्द बोल लेगा। स्तुति करनेमें आप इससे पार नहीं पा सकते।

कन्हाईमें परिपाक प्राप्त करता है माधुर्य, वात्सल्य और सख्य। माधुर्य रसराज है—महाभावका अवतरण माधुर्यमें ही शक्य है। विश्वस्रष्टाकी सम्पूर्ण सृष्टिमें अनादिकालसे अनन्तकालतक वरण करने योग्य एकमात्र कन्हाई ही है। इसे छोड़कर दूसरा कोई वर होने योग्य नहीं; किन्तु सर्वोत्तम वस्तु अथवा भावका अधिकारी भी सर्वोत्तम होना चाहिये। अपनेमें मैं इतनी धृष्टता भी नहीं पाता कि ऐसी अनधिकारकी बात सोचूँ। वैसे भी अनधिकारी जब उत्तम भावको अपनाता है तो विकृत ही करता है। बन्दरको आप बहुमूल्य रत्न दे दोगे तो वह क्या आभूषण बनाकर पहिने रहेगा? उसने उसे कहीं निगल लिया तो मरेगा या बच जायगा?

कन्हाई भोला है, सुकुमार है। वात्सल्यका तो यह परमपात्र है। स्नेह दिया जाना चाहिये इसे। सम्हाल तो इसीकी की जानी चाहिये; क्योंकि इसे स्वयं अपनी सम्हाल न रखने आती, न उसकी सुधि रहती। यह तो दूसरोंकी ही सम्हालमें, दूसरोंको ही आनन्द देनेमें अपनेको भूला रहता है। लेकिन वात्सल्य देनेके लिए भी क्षमता तथा वैभव अपेक्षित है। मैं तो अपने पास आये अतिथिको भी जलके अतिरिक्त कुछ दे नहीं पाता और जल भी उसके माँगनेपर; क्योंकि केवल जलके लिए पूछना तो अच्छा नहीं लगता।

सख्य ऐसा रस है कि इसमें वात्सल्य और दास्य दोनोंका एक छोटी सीमातक अन्तर्भाव हो जाता है। लेकिन कन्हाई दे तब इसका सख्य मिलता

है। वैसे कन्हाई तो सबको सखा बनानेको सदा समुत्सुक रहता है; किन्तु लोगोंको अपनी हीनता ही नहीं छोड़ती। स्वयं ही अपने सङ्कोच, दैन्यको जकड़े-पकड़े रहते हैं। अन्यथा कन्हाईके साथ सङ्कोच……!

सख्य आदान-प्रदानका रस है। कन्हाई स्नेह तो देता ही रहता है, इसे स्नेह दिया जाना चाहिये। यह कहाँ देखता है कि इसे एक कोमल किसलय दिया गया या एक गुंजा। यह तो उसे ऐसे लेता है, लेकर नाचता है, जैसे इसे महामूल्यवान कोई रत्न मिल गया। इसे न मिले ऐसा तो रत्न भी कहीं कोई नहीं है। व्रजेन्द्रनन्दन तो महामूल्यवान रत्नोंको भी कंकड़ियोंकी भाँति खेलने-फेंकने योग्य ही मानता है। इस प्रेमघनका रत्न तो है प्रेम। यह प्रेमका देवता प्रेमके पुष्पसे पूजित होता है।

प्रेम पानेका उपाय नहीं होता। प्रेम किया नहीं जाता, होता है। कन्हाईके अपने स्वजन कृपा करें तब इस मैया यशोदाके लाड़लेमें प्रीति होती है। यह प्रीति कोई पुरुषार्थ नहीं है। यह तो परमपुरुषार्थ मोक्षका भी मण्डन है। उसे भी मधुरतम बनानेवाला रस है।

कन्हाईके स्वजन इसके सम्बन्धमें क्या-क्या सोचते हैं, कैसे कहा जा सकता है। वे कोई दो-चार बातें सोचते हैं। वे तो सोचते ही रहते हैं और कन्हाईके ही विषयमें सोचते रहते हैं। दूसरा कुछ सोचनेका विषय भी हो सकता है, यह वे जानते ही नहीं। उनकी चिन्तनधारा तो सदा-सदाके लिए इस श्यामसिन्धुके उन्मुख है।

उनकी चिन्तनधाराका कोई सीकर पड़ जाय अन्तःकरणमें तो यह निर्मल हो जाय। इसलिए यह प्रयास चाहे जितना अल्प है और इसमें मेरे कालुष्यकी मलिनता चाहे जितनी है, इससे कन्हाईके अपनोंका आनन्द बढ़ेगा ही। लालटेनका शीशा मैला भी हो तो भी थोड़ा प्रकाश तो देता ही है। अतः आप इसीको अपनाकर ओम् कहो।

श्रीकृष्ण—सन्देश

[आध्यात्मिक मासिक पत्र]

श्रीकृष्ण-सन्देश का वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होता है।

'श्रीकृष्ण-सन्देश' प्रतिमास लगभग ७२ पृष्ठ पाठ्य-सामग्री देता है।

वार्षिक शुल्क	१५ रुपये।
आजीवन शुल्क	१५१ रुपये।

सम्भव हो तो आजीवन ग्राहक बनें।

व्यवस्थापक— श्रीकृष्ण-सन्देश
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान
मथुरा-२८१००१

"यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य पर उपलब्ध किये गये कागज पर मुद्रित-प्रकाशित है।"